परीक्षाएँ

लेखक
वेदराम शर्मा
एम० ए०, एम० एड०, साहित्यरत्न
व्याख्याता
धर्म समाज प्रशिक्षण महाविद्यालय, अलीगढ़।

[१९४४ का शिक्षा-अधिनियम (बटलर ऐक्ट), आङ्गल शिक्षा-प्रणाली, नागरिक-शास्त्र की पाठ-योजनाएँ, इत्यादि के लेखक एवं हमारे शिक्षा-प्रतिवेदन *(Reports On Indian Education)* के सह-लेखक]

प्रकाशक
कल्पना प्रकाशन
अलीगढ़

प्रथम संस्करण १००० | १९५९ | मूल्य रु० ३·५०

निवेदन

भारत की वर्तमान परीक्षा-प्रणाली अत्यन्त सदोष है; उसमें अविलम्ब सुधार किया जाना चाहिए—ये हैं वे शब्द जो उस प्रत्येक भारतीय के मुख से निकलेंगे जिसका शिक्षा से थोड़ा भी सम्बन्ध होगा। परन्तु क्या किया जाए ?—सम्भवतः इस प्रश्न का उत्तर समस्त समालोचक न दे सकेंगे। परीक्षाओं की अनिवार्यता एवं महत्व को दृष्टि में रखते हुए प्रस्तुत पुस्तक का उद्देश्य इसी महत्वपूर्ण प्रश्न का उत्तर देना है। मुझे विश्वास है कि इस दृष्टिकोण से यह पुस्तक अध्यापकों, छात्रों, जनकों, नेताओं, सुधारकों, शिक्षाविदों, इत्यादि के लिये समान रूप से उपयोगी सिद्ध होगी।

इस पुस्तक को लिखते समय मैंने अनेक पुस्तकों से सहायता ली है। एतदर्थ मैं उनके लेखकों का अत्यन्त आभारी हूँ। समझ में नहीं आता कि मैं शिक्षा-विभाग, मुस्लिम विश्व-विद्यालय, अलीगढ़ के प्राचार्य एवं अध्यक्ष प्रोफेसर डॉ० ए० मुजीब साहब, एम० एस-सी०, एम० एड०, पी० एच० डी० (कोलम्बिया) के प्रति अपनी कृतज्ञता किन शब्दों में प्रकट करूँ, जिन्होंने मेरे अध्ययन को सुगम बनाने के लिये ग्रीष्मा-वकाश में भी विभागीय-पुस्तकालय को मेरे लिये खुला रखने की विशेष कृपा की। वह मेरे गुरु हैं। उन्होंने मेरे लिये क्या नहीं किया; वह मेरे लिये क्या नहीं कर सकते ? सचमुच उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के लिये मेरे पास शब्द नहीं हैं। बस मैं उनकी महानता एवं सहृदयता के समक्ष नतमस्तक हूँ।

साथ ही, विभागीय-पुस्तकालय के पुस्तकालयाध्यक्ष श्री मोहम्मद ऐनुद्दीन साहब बी० कॉम०, सी० एल० एस-सी० को धन्यवाद देना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ जो अध्ययन-कार्य में मेरी सहायता करने के लिये डॉक्टर साहब से भी आगे निकल गये और पुस्तकालय की कुञ्जियाँ दे कर मुझे पुस्तकालय का स्वामी ही बना दिया !

मैं अपने प्रशिक्षण महाविद्यालय के प्राचार्य एवं अध्यक्ष श्रद्धेय श्री वंश गोपाल झिंगरन एम० एस-सी०, बी० एड०, ऑनर्स (एडिनबर्ग) के प्रति कृतज्ञता प्रदर्शित करना अपना विशेष कर्तव्य समझता हूँ। वस्तुतः इस पुस्तक को लिखने की प्रेरणा मुझे श्रद्धेय श्री झिंगरन साहब से ही मिली थी। यदि वह कृपापूर्वक मुझे अन्तर्सेवा-प्रशिक्षण के छात्राध्यापकों को "शिक्षण-सिद्धान्त एवं मापन" प्रश्नपत्र पर व्याख्यान देने के लिये अवसर न देते तो सम्भवतः यह पुस्तक अभी अस्तित्व में न आयी होती। धर्म समाज प्रशिक्षण महाविद्यालय में पाँच वर्ष की अवधि में यह मेरी पाँचवीं पुस्तक है। इसी से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि श्रद्धेय झिंगरन साहब अपने सहयोगियों को कितनी सुविधा एवं स्वतन्त्रता प्रदान करते हैं।

अन्त में, अपने प्रिय वाचकों से मेरा निवेदन है कि वे इस पुस्तक को अधिकाधिक उपयोगी बनाने के लिये अपने महत्वपूर्ण सुझावों से मुझे अनुग्रहीत करना न भूलें।

अलीगढ़
१४ अगस्त, १९५९

वेदराम शर्मा

विषय-सूची

चतुर्थ अध्याय—वैषयिक-परीक्षा

पञ्चम अध्याय—प्रमापीकृत-परीक्षा

षष्ठ अध्याय—निष्पन्न-परीक्षा

सप्तम अध्याय—नैदानिक-परीक्षा

दशम अध्याय—पूर्वज्ञापक-परीक्षा

एकादश अध्याय—सञ्चयी-अभिलेख

निर्दिष्ट पुस्तकों की संख्या-योजना

इस पुस्तक में निर्दिष्ट प्रत्येक पुस्तक के लिये एक संख्या निश्चित की गयी है। संख्याओं की योजना निम्नलिखित है :

1. Encyclopedia Of Educational Research, Monroe, W. S., Macmillan, 1952.
2. Dictionary of Education, Good, C. V., Mc-Graw-Hill, 1945.
3. A Dictionary of Psychology, Drever, James, Penguin Books, 1952.
4. Encyclopedia of Modern ducation, Rivlin, H. N., The Philosophical Library, 1943.
5. Teaching the Social Studies in Secondary Schools, Bining, Arthur C. and David, H., McGraw-Hill, 1941.
6. Constructing Tests and Grading, Rinsland, H. D., Harrap, 1938.
7. The Measurement of Abilities, Vernon, P. E., U. L. P. Ltd., London, 1953.
8. How To Pass A Written Examination, Mckown, H. C., McGraw-Hill, 1943.
9. Measurement In To-day's Schools, Ross, C. C., Prentice-Hall, 1949.
10. The Use And Interpretation of Educational Tests, Greene, H. A. and Jorgensen A., N., Longmans, 1929.
11. Aptitudes and Aptitude Testing, Bingham, Walter Van Dyke, Harper, 1937.
12. Classroom Tests, Russell, Charles, Ginn And Company, 1926.
13. Judging Student Progress, Thomas, R. M., Longmans, 1955.

14. Measurement and Evaluation in the Elementary School, Greene, H. A., Jorgensen, A. N., Gerberich, J. R., Longmans, 1956.
15. Educational Psychology, Pintner, R. and others, B and N, 1953.
16. Tests And Measurements In Industrial Education, Newkirk, L. V. and Greene, H. A., John Wiley And Sons, 1949.
17. Psychological Testing, Mursell, J. L., Longmans, 1949.
18. Mental Tests, Freeman, F. N. Houghton Mifflin Company, 1939.
19. Educational Psychology, Gates, Arthur I., and others, Macmillan, 1950.
20. General And Social Psychology, Thouless, R. H., U. T. P., London, 1951.
21. How to Make Achievement Tests, Travers, Robert M. W. Odyssey, 1950.
22. The Measuremenr of Intelligence, Terman, Lewis M., London, Harrap.
23. Measuring Intelligence, Terman, L. M., and Merrill, M. A., Harrap, 1948.
24. Measurement and Evaluation in Psychology and Education, Thorndike, R. L. and Hagen, E. 1957.
25. Educational Measurement, Travers, Robert M. W. Mackillan, 1955.
26. Cumulative Records, Fleming, C. M., U. O. L. P., 1945.
27. Diagnostic And Remedial Teaching, Brueckner L. J., and Melby, E. O., Houghton Mifflin Co., 1931.

अशुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
सर्वत्र		निम्नलिखित शीर्षक-योजना को अन्तिम समझा जाए **१–भारतीय परीक्षा-प्रणाली** *(१) भारतीय परीक्षा-प्रणाली* (क) भारतीय परीक्षा-प्रणाली—	
६८	१५	७—उपसंहार	३—उपसंहार
७७	९	रेखा पर	गोलाभिवार ( ) में
७७	१०	खींची गयी है	दिया गया है।
८९	१	७—परीक्षा	६—परीक्षा
९८	१	८—वैषयिक	७—वैषयिक
१००	१५	१०—उपसंहार	९—उपसंहार
१२४	१७	६—प्रमापीकृत	७—प्रमापीकृत ....
१२६	२१	७—प्रमापीकृत	८—प्रमापीकृत ....
१२८	१४	८—उपसंहार	९—उपसंहार
२०८	२५	*Book No. 22.*	*Book No. 24.*

प्रथम अध्याय

परीक्षा का अर्थ, उत्पत्ति एवं विकास, उद्देश्य तथा वर्गीकरण

१—परीक्षा का अर्थ

सामान्य व्यक्ति साधारणतः परीक्षा शब्द का जो अर्थ करते हैं वह आधुनिक शिक्षाविदों एवं मनोवैज्ञानिकों के अर्थ से सर्वथा भिन्न होता है। आधुनिक शिक्षाविद् एवं मनोवैज्ञानिक परीक्षण (*Examination*) के अतिरिक्त परीक्षिका (*Test*), मापन (*Measurement*), तथा अर्हापण (*Evaluation*) इत्यादि शब्दों का भी प्रयोग करते हैं जिनके दो ही उद्देश्य होते हैं: (i) छात्रों की प्रगति का मूल्याङ्कन करना तथा (ii) सीखने के लिये छात्रों का अभिरोचन (*Motivation*) करना। अतः परीक्षा के सम्पूर्ण अर्थ को समझने के लिये परीक्षण, परीक्षिका, मापन तथा अर्हापण के अर्थ तथा अन्तर को समझना अत्यन्त आवश्यक है।

(क) परीक्षण (*Examination*)

एक स्थूल अर्थ में परीक्षाओं में मौखिक परीक्षणों, वैषयिक परीक्षिकाओं (*Objective Tests*), तथा प्रमापीकृत परी-

क्षिकाओं (*Standardized Tests*) का समावेश होता है।※ परन्तु आजकल एक सङ्कीर्ण अर्थ में "परीक्षण" शब्द परीक्षा के प्राचीन काल से चले आने वाले अर्थ को निर्दिष्ट करता है और इसका प्रयोग प्रायः निबन्ध-प्रारूप परीक्षण (*Essay-Type Examination*) के लिये किया जाता है। सामान्यतः परीक्षण शब्द के दो अर्थ होते हैं : (१) छात्र की योग्यता (*Ability*), प्राप्ति (*Achievement*) अथवा स्थिति के एक मूल्याङ्कन के अर्थ में, तथा (२) एक ऐसा मूल्याङ्कन करने में प्रयुक्त साधन के अर्थ में।卐

(ख) परीक्षिका (*Test*)

सामान्यतः परीक्षण (*Examination*) तथा परीक्षिका (*Test*) में कोई अन्तर नहीं है और इन शब्दों का प्रयोग अन्तर्निमेय रूप में किया जा सकता है (इस पुस्तक में परीक्षा, परीक्षण तथा परीक्षिका शब्दों का प्रयोग अन्तर्निमेय रूप में ही किया गया है)। फिर भी आधुनिक शिक्षाविद् एवं मनोवैज्ञानिक परीक्षण की अपेक्षा परीक्षिका शब्द का प्रयोग करना अधिक उपयुक्त समझते हैं। इस प्रकार आजकल "परीक्षण" शब्द प्राचीन निबन्ध-प्रारूप परीक्षाओं

※ *"In a broad sense examinations include oral examinations, conventional (essay) written examinations or tests, objective examinations, and standardized tests".*

--Book No. 1, P. 407

卐 *"(1) an appraisal of ability, achievement or present status in any respect; (2) the instrument used in making such an appraisal."* *--Book No. 2, P. 157*

को तथा "परीक्षिका" शब्द नवीन वैषयिक परीक्षणों को निर्दिष्ट करता है और इसी आधार पर दोनों शब्दों के प्रयोग में अन्तर हो जाता है। सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक जेम्स ड्रिवर (*James Drever*) ने परीक्षिका को "परीक्षण का एक प्रमापीकृत प्ररूप (*Standardized Type*)" कह कर परीक्षण के प्राचीन प्ररूप से पृथक् सिद्ध करने का प्रयत्न किया है।卐 चार्टर वी० गुड (*Charter V. Good*) ने परीक्षिका शब्द का अर्थ इस प्रकार से किया है : "एक परीक्षण अथवा कूटप्रश्न; योग्यता, प्राप्ति, अभिरुचि, इत्यादि का निर्धारण करने के लिये युक्ति अथवा प्रक्रिया का कोई प्रकार।"❀

(ग) मापन (*Measurement*)

१ —मापन का अर्थ—सामान्यतः मापन शब्द का प्रयोग व्यक्तियों की प्राप्ति (*Achievement*), बुद्धि, अभियोग्यता (*Aptitude*), व्यक्तित्व, इत्यादि के परीक्षण के लिये किया जाता है। इस प्रकार का परीक्षण प्रायः लिखित परीक्षिका (*Test*) द्वारा किया जाता है। परीक्षण (*Examination*) तथा मापन में मुख्य अन्तर यह होता है कि परीक्षण प्राचीन

卐 *"a standardized type of examination, given to a group or individuals; it may be qualitative or quantitative, i. e. determine presence or absence of a particular capacity, knowledge, or skill, or determine the degree in which such is present,......"* —*Book No. 3, P. 291.*

❀ *"....(2) an examination or quiz; any kind of device or procedure for measuring ability, achievement, interest etc;......"* –*Book No. 2, P. 414.*

निबन्ध-प्ररूप परीक्षणों को निर्दिष्ट करता है किन्तु मापन वैषयिक परीक्षिकाओं (*Objective Tests*) के अधिक निकट होता है। परन्तु मापन वैषयिक परीक्षिकाओं से सर्वथा सीमित नहीं होता।卐

२—मापन के प्ररूप—मापन दो प्रकार का होता है: (i) प्रत्यक्ष मापन तथा (ii) अप्रत्यक्ष मापन। मापन उस समय प्रत्यक्ष हो सकता है जब वह योग्यता अथवा लक्षण (*Trait*) के कार्य की मांग करता हो, अथवा जो मापित वस्तु के साथ इकाई की प्रत्यक्ष तुलना द्वारा आया हो। शक्ति, वेग, ऊंचाई, तथा भार का शारीरिक माप प्रत्यक्ष मापन का उदाहरण है। जब एक लक्षण अथवा योग्यता का अस्तित्व अन्य लक्षण अथवा योग्यता के मापन से अनुमित (*Inferred*) होता है तब उसे अप्रत्यक्ष मापन कहा जाता है उदाहरणार्थ, ताप का माप। इसी प्रकार बुद्धि-परीक्षा प्रत्यक्षतः छात्र द्वारा वास्तव में सीखी गयी वस्तु के द्वारा अप्रत्यक्षतः उसकी सीखने की क्षमता को मापना चाहती है।

३—मापन के कार्य—रिवलिन के मतानुसार मापन के कार्य तीन प्रकार के होते हैं; (i) प्रशासनात्मक कार्य, (ii) शिक्षण-

---

卐"......(2) *the term commonly applied to testing (achievement, intelligence. aptitude, personality, etc.) of persons through the giving of some form of test (usually written); the term suggests, but is not strictly limited to, objective tests"...; (3) the result obtained by measurement."*

—Book No, 2, P. 255,

कार्य, तथा (iii) अन्वेषण-कार्य।❀ मापन के प्रशासनात्मक कार्यों में छात्रों के वर्गीकरण तथा संपारण (*Promotion*), व्यावसायिक तथा शैक्षणिक मार्गप्रदर्शन और पाठशाला-कार्यक्रम के विभिन्न पक्षों के मूल्याङ्कन का समावेश होता है। इसके अतिरिक्त वह लोक-सम्पर्क के दृष्टिकोण से भी अत्यन्त उपयोगी होता है। शिक्षण की दृष्टि से मापन शैक्षणिक निदान (*Diagnosis*) तथा प्रत्युपाय-शिक्षण (*Remedial Instruction*) में सहायता करता है क्योंकि अध्यापक छात्रों की दुर्बलताओं का स्थिति-निश्चयन करने के लिये मापन की प्रविधियों (*Techniques*) पर भी निर्भर रहते हैं, सीखने का अभिरोचन (*Motivation*) करता है और सीखी हुई राशि तथा प्रयुक्त अध्ययन-प्रक्रिया को प्रभावित करता है। अन्वेषण के दृष्टिकोण से, शैक्षणिक अन्वेषण संपरीक्षात्मक (*Experimental*) एवं नियन्त्रक (*Control*) समूहों की आदि-स्थिति के निर्धारण के लिये और की गयी तुलनात्मक प्रगति को स्थापित करने के लिये मापन पर आश्रित होता है।

४—मापन के साधन

आजकल प्रमापीकृत परीक्षिकाएँ (*Standardized Tests*), अप्रमापीकृत परीक्षिकाएँ (*Non-Standardized Tests*) तथा निबन्ध-परीक्षण (*Essay Examinations*) मापन के अत्यन्त महत्वपूर्ण साधन माने जाते हैं। मापन के अन्य साधनों में से प्रश्नावलियों (*Questionnaires*), वर्ग-श्रेणियों

❀ *"Three functions of measurement may be differentiated; namely, the administrative, instructional and research".* —*Book No. 4, P. 480.*

(*Rating Scales*), समक्षकारों (*Interviews*) इत्यादि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

(घ) अर्हापण (*Evaluation*)

१—अर्हापण का अर्थ—परीक्षण, परीक्षिका तथा मापन की अपेक्षा अर्हापण एक नवीन पारिभाषिक शब्द है। अर्हापण शब्द मापन के एक अधिक व्यापक संबोध (*Concept*) को निर्देशित करता है। इस प्रकार अर्हापण में प्राचीन परीक्षणों तथा परीक्षिकाओं की अपेक्षा अधिक व्यापकता होती है।卐 रिवलिन (*Rivlin*) के मतानुसार अर्हापण शब्द का प्रयोग उन अनेक अनौपचारिक स्थितियों को निर्दिष्ट करता है जिनमें एक अथवा अधिक व्यक्ति यह विचार करते हैं कि किसी विशेष अनुभव से क्या मूल्य प्राप्त हुआ है❀ मोनरो ने सैद्धान्तिक एवं कार्यात्मक आधार पर मापन तथा अर्हापण में दो भेद किये हैं: (*i*) मापन में विषयवस्तु की प्राप्ति के एकल पक्षों पर बल दिया जाता है किन्तु अर्हापण में व्यक्तित्व के परिवर्तनों तथा एक शैक्षणिक कार्यक्रम के मुख्य उद्देश्यों पर। इनमें केवल विषयवस्तु की प्राप्ति का ही समावेश

卐 *"Evaluation is relatively new technical term, introduced to designate a more comprehensive concept of measurement than is implied in conventional tests and examinations."* —*Book No. 1, P. 403.*

❀ *"The term evaluation frequently is used to refer to a great many informal situations in which one or more persons consider what value has followed from some particular experience."* —*Book No. 4, P. 285.*

नहीं होता, अपितु अभिवृत्तियों (*Attitudes*), अभिरुचियों (*Interests*), आदर्शों, विचार के मार्गों, कार्य-स्वभावों (*Work Habits*), तथा वैयक्तिक एवं सामाजिक अनुकूलता (*Adaptability*) का भी समावेश होता है। रिवलिन के शब्दों में मापन बालक के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का मूल्याङ्कन करने का प्रयत्न करता है और शिक्षण के अल्प मूर्त (*Less Tangible* परिणामों यथा, अभिवृत्तियाँ, रसग्रहण (*Appreciation*), अभिरुचियाँ, आदर्श, दृष्टिकोण इत्यादि, पर बल देता है❀, इस प्रकार मापन की अपेक्षा अर्हापण का क्षेत्र अधिक व्यापक होता है, तथा (*ii*) कार्यात्मक दृष्टिकोण से अर्हापण एक पाठ्यक्रम के मुख्य उद्देश्यों के विस्तार की पहिचान तथा संविन्यसन (*Formulation*) करता है, छात्र-व्यवहार के शब्दों में उन उद्देश्यों की परिभाषा करता है, तथा छात्र-व्यवहार की निर्दिष्ट प्रावस्थाओं (*Specified Phases*) के मूल्याङ्कन के लिये मान्य, विश्वसनीय एवं व्यावहारिक साधनों का चुनाव अथवा निर्माण करता है और व्यवहार-परिवर्तनों के विभिन्न देशनाओं (*Indexes*) का एक व्यक्ति अथवा शैक्षणिक स्थिति की एक समावेशी छवि (*Inclusive Portrait*) में एकीकरण एवं निर्वचन (*Interpretation*)

❀ *"Recently the term evaluation has been used to suggest a more comprehensive concept of measuremet which attempts to appraise the whole personality of the child and emphasizes the less tangible outcomes of instruction, such as attitudes, appreciations, interests, ideals, and points of view".* —*Book No. 4, P.481.*

करता है।卐 साधारणतः मापन तथा अर्हापण शब्दों का प्रयोग अन्तर्निमेय (*Interchangeable*) रूप में किया जा सकता है।❀

२—पाठ्यक्रम-निर्माण तथा अर्हापण—पाठ्यक्रम-निर्माण तथा अर्हापण शैक्षणिक उपक्रम के अभिन्न अङ्ग होते हैं। वस्तुतः व्यापक अर्हापण उस मात्रा का साक्ष्य (*Evidence*) प्रदान करता है जिस तक पाठ्यक्रम के महत्वपूर्ण उद्देश्यों की प्राप्ति

卐 *"...that the emphasis in measurement is upon single aspects of subject-matter achievement or specific skills and abilities, but that the emphasis in evaluation is upon broad personality changes and major objectives of an educational program. These include not only subject-matter achievement but also attitudes, interests, ideals, ways of thinking, work habits, and personal and social adaptability. From the point of view of its functions evaluation involves the identification and formulation of a comprehensive range of the major objectives of a curriculum, their definition in terms of pupil behaviour, and the selection or construction of valid, reliable, and practical instruments for appraising the specified phases of pupil behaviour...... In addition, evaluation includes integrating and interpreting the various indexes of behaviour changes into an inclusive portrait of an individual or of an educational situation."*

—*Book No. 1, PP. 403-4.*

❀ *"......(in recent years the term "evaluation" has been employed to represent a somewhat broader type of quantitative representation, concerned more with qualitative elements; the two terms, however, are often used interchangeably);......"*　　*Book No. 2, P. 255.*

की जा रही है। यह साध्य पाठ्यक्रम में नवीन रीतियों की ओर ले जा सकता है और इस प्रकार नवीन रीतियों द्वारा मूल्याङ्कित होने के लिये नवीन उद्देश्य प्रदान कर सकता है। अतः अर्हापण को पाठशाला के सेवि-वर्ग तथा परीक्षण-प्रविधिज्ञ दोनों के सहयोग की आवश्यकता होती है। अभिनव वर्षों में एक शैक्षणिक कार्यक्रम अथवा पाठ्यक्रम के लिये अर्हापण के रूप में अनेक परिवर्तन किये गये हैं। वस्तुतः, अर्हापण के प्रयोजनों के लिये पहले तो पाठ्यक्रम-विश्लेषण-रीति, परिषत्-रीति (*Conference Method*) तथा प्रश्नावलि एवं समक्षकार रीतियों (*Questionnaire and Interview Methods*) के द्वारा पाठ्यक्रम के उद्देश्यों की परिभाषा की जाती है, फिर वे उद्देश्य प्रश्नावलियों, परीक्षिकाओं (*Tests*), वर्ग-श्रेणियों (*Rating Methods*), अभिलेखों (*Records*), तथा समक्षकारों द्वारा अर्हापणात्मक सामग्री का संग्रह करने के लिये आधार प्रदान करते हैं। संक्षेप में, अर्हापण पाठ्यक्रम के उद्देश्यों पर आधारित होता है तथा पाठ्यक्रम के उद्देश्य अर्हापण पर।

३—अर्हापण तथा शिक्षा: अर्हापण के कार्य—अर्हापण तथा शिक्षा में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। शिक्षा के क्षेत्र में अर्हापण के छः मुख्य कार्य होते हैं: (i) अर्हापण-कार्यक्रम छात्रों के क्रमस्थापन, वर्ग-बन्धन एवं संपारण (*Promotion*) के लिये, मातापिता को सूचना देने के लिये, तथा पाठशाला-निधियों के व्ययों से अवगत होने के लिये एक आधार प्रदान करता है, (ii) वह प्रत्येक छात्र का बुद्धिपूर्वक मार्गप्रदर्शन करने के लिये, समुदाय के भीतर शैक्षणिक क्रियाओं के विकास में मातापिता के सहयोग से कार्य करने के लिये, तथा

इस आधारभूत दर्शन का विश्लेषण एवं सुधार करने के लिये एक साधन प्रदान करता है जिसके आधार पर पाठशाला कार्य करती है, (iii) वह उस मात्रा का प्राक्कलन (*Estimate*) करने में सहायता करता है जिस तक एक पाठशाला अथवा श्रेणी (*Class*) एक पाठ्यक्रम के कार्यक्रम में अभिव्यक्त अथवा ध्वनित उद्देश्यों को प्राप्त कर रही है, (iv) वह प्रत्येक बालक का एक शैक्षणिक निदान प्रदान करता है, (v) संघटित किया जाने पर वह छात्र की प्राप्ति (*Achievement*) की एक छवि प्रदान करता है, और (vi) वह पाठ्यक्रम की रीतियों एवं सामग्रियों को निर्धारित करने के लिये महाविद्यालयों, उच्च-पाठशालाओं, तथा प्रारम्भिक पाठशालाओं को साधन प्रदान करता है। अङ्कनी-तथा-पत्र परीक्षिकाएँ (*Pencil-and-Paper Tests*) एवं नियन्त्रित-अवलोकन प्रविधियाँ ऐसे ही साधनों के उदाहरण हैं।

४—अर्हापण के साधन—अर्हापण के साधनों का निर्माण करते समय अनुसंधाताओं (*Investigators*) को तीन पदों का अनुसरण करना होता है : प्रथमतः, वे छात्र द्वारा निर्मित वस्तुओं अथवा उससे सम्बन्धित सूचनाओं, अभिलेखों, आलेखों (*Notes*) अथवा ध्वनिलिख अभिलेखनों (*Phonograph Recordings*) की सहायता से छात्र-व्यवहार का प्रत्यक्ष अध्ययन करते हैं; द्वितीयतः, वे उन रीतियों को पहिचानने के उद्देश्य से, जो एक ऐसा देशना (*Index*) प्रदान करती हैं जो छात्र के प्रत्यक्ष एवं अवलोक्य व्यवहार अथवा उत्पादनों के साथ अत्यन्त सहसम्बद्ध होता है, मापन की ऐसी अप्रत्यक्ष एवं संक्षिप्त रीतियों के साथ प्रयोग करते हैं जैसे

वर्ग-श्रेणियाँ, परीक्षिकाएँ, प्रश्नावलियाँ, तथा तृतीयतः, वे अर्हापण की महत्वपूर्ण संक्षिप्त रीतियों की मान्यता (*Validity*), विश्वसनीयता, एवं व्यवहार्यता (*Practicability*) में सुधार करते हैं। अर्हापण के साधनों में विचार के विभिन्न पक्षों [अर्थात् सामग्री का निर्वचन (*Interpretation*), सिद्धान्तों का अधिमूल्यन (*Appreciation*), तर्कशुद्ध तर्क, प्रमाण की प्रकृति], सामाजिक हृषता (*Social Sensitivity*) [अर्थात् सामाजिक मूल्यों का प्रयोग, सामाजिक तथ्यों एवं सामान्यानुमानों (*Generalizations*) का सामाजिक समस्याओं में प्रयोग], सामाजिक अभिवृत्तियों (*Attitudes*), सामाजिक एवं आर्थिक विश्वासों, अधिमूल्यन के पक्षों, अभिरुचियों, वैयक्तिक एवं सामाजिक समायोजन (*Adjustment*), तथा अभिलेख के रूपों का समावेश होता है। अभिरुचि तालिका (*Interest Inventory*), विचार परीक्षिकाएँ, व्यापक प्रश्नावलियाँ, समक्षकार (*Interviews*), अभिलेख, परीक्षिकाएं एवं परीक्षण (*Tests and Examinations*), अनुवर्ती अध्ययन (*Follow-up Studies*) इत्यादि अर्हापण के साधनों के मुख्य उदाहरण हैं।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि आधुनिक शिक्षाविद् एवं मनोवैज्ञानिक परीक्षा (*Examination*) शब्द को भय एवं घृणा की दृष्टि से देखते हैं और उसे एक सङ्कीर्ण अर्थ में प्राचीन लिखित निबन्ध-प्ररूप परीक्षाओं तक सीमित करके नवीनता एवं व्यापकता के आधार पर परीक्षिका, मापन तथा अर्हापण शब्दों के प्रयोग को महत्व देते हैं। परीक्षा शब्द के प्रति उनका विरोधी दृष्टिकोण होने के अनेक कारण हैं जिनकी चर्चा करना इस अध्याय का उद्देश्य नहीं है (द्वितीय

अध्याय में उन कारणों का विस्तारपूर्वक उल्लेख किया गया है), किन्तु उनके इस दृष्टिकोण को समुचित नहीं कहा जा सकता। वास्तव में परीक्षण, परीक्षिका, मापन तथा अर्हापण व्यक्तियों की प्रगति को मापने की ही युक्तियाँ, साधन, अथवा प्रक्रियाएँ होती हैं और नाम-परिवर्तन से उनके महत्व, कार्य तथा रूप में कोई अन्तर नहीं आ जाता और न ही उनके दोष दूर हो जाते हैं। मेरा विचार है कि हमें परीक्षा शब्द से संबद्ध दोषों के कारण परीक्षा शब्द का ही त्याग कर देने की आवश्यकता नहीं है। हमें तो संबद्ध दोषों को दूर करके उसके रूप में वाञ्छनीय सुधार तथा परिवर्तन करने का प्रयत्न करना चाहिए। इससे परीक्षा शब्द में ही नवीनता आ जाएगी। जहाँ तक व्यापकता के प्रश्न से सम्बन्ध है, यदि एक स्थूल अर्थ में परीक्षा शब्द का प्रयोग किया जाएगा तो उसमें जितनी व्यापकता प्रतीत होगी उतनी परीक्षिका, मापन तथा अर्हापण में भी नहीं हो सकती।

२—परीक्षा की उत्पत्ति एवं विकास

(क) अनौपचारिक परीक्षा की उत्पत्ति

अस्तित्व की दृष्टि से परीक्षाएँ उतनी ही प्राचीन हैं जितना मानव-जीवन। मनुष्य के बौद्धिक विकास के साथ परीक्षाओं के रूप में भी परिवर्तन होते रहे हैं। विकास की दृष्टि से शिक्षा दो कालों में विभाजित की जा सकती है: प्रथम, अनौपचारिक शिक्षा-काल; द्वितीय, औपचारिक शिक्षा काल। अनौपचारिक शिक्षा की विषय-वस्तु विभिन्न माननीय क्रियाएँ होती थीं। इस प्रकार आरम्भ में शिक्षा, क्रिया तथा जीवन में अन्तर न था। बालक परिवार तथा समूह के साथ उन क्रियाओं

का प्रत्यक्ष अनुभव एवं दक्षता प्राप्त करता था जिन्हें किये बिना उसका जीवित रहना असम्भव हो जाता; उदाहरणार्थ लक्ष्यवेध, वृक्षारोहण, इत्यादि। परिवार तथा समूह यथा-समय तथा समय समय पर उसके अनुभव की मात्रा एवं दक्षता की परीक्षा क्रियाकरण द्वारा लेता रहता था। यही शिक्षा तथा परीक्षा-प्रणाली का आदि रूप है।

(ख) औपचारिक मौखिक परीक्षा की उत्पत्ति

औपचारिक शिक्षा-काल का सूत्रपात उस दिन से हुआ जब बालक को इन क्रियाओं का अनुभव एवं दक्षता प्रदान करने का उत्तरदायित्व परिवार तथा समूह से हट कर कुछ विशिष्ट व्यक्तियों पर आ गया जिन्हें "गुरु" (*Teachers*) की संज्ञा प्रदान की गयी। औपचारिक शिक्षा का आदि रूप मौखिक था क्योंकि उस समय लेखन-प्रणाली तथा पत्र (*Paper*) का आविष्कार नहीं हुआ था। विषयवस्तु अध्यापक को कण्ठ होती थी। वह उसे छात्रों को कण्ठ कराता था। उस समय विषय-वस्तु में जीवन-क्रियाओं-सम्बन्धी नियमों का ही समावेश होता था। कालान्तर में नियमों का निर्वचन (*Interpretation*) भी विषय-वस्तु का अङ्ग बन गया। मौखिक-प्रणाली द्वारा छात्रों के कण्ठकरण की मात्रा की परीक्षा ली जाती थी। मौखिक परीक्षा प्रणाली का जन्म भारत में हुआ था। "शास्त्रार्थ-प्रणाली" उसका प्राचीनतम् सार्वजनिक रूप है।

(ग) औपचारिक लिखित परीक्षा की उत्पत्ति

लेखन का आविष्कार होने के पश्चात् लिखित परीक्षा-प्रणाली का जन्म हुआ। सर्व प्रथम लेखन का आविष्कार

भारत में होने के कारण भारत लिखित परीक्षा-प्रणाली का भी जन्मदाता है। आरम्भ में पत्र का आविष्कार न होने के कारण लिखित परीक्षा धरती पर रेत अथवा बालू बिछा कर तथा पट्टियों पर ली जाती थी। सर्व प्रथम पत्र का निर्माण चीन में होने के कारण पत्र के माध्यम से लिखित परीक्षा-प्रणाली का जन्म भी चीन में हुआ। प्राचीन चीन में जानपद-सेवा (*Civil Service*) में भर्ती के लिये स्पर्धा लिखित परीक्षा ली जाया करती थी।卐 उपाधियों के लिये छात्रों की परीक्षा लेने का विचार मध्यकालीन यूरोपीय विश्वविद्यालयों में उत्पन्न हुआ था। भारत की वर्तमान परीक्षा-प्रणाली पश्चिम की देन है। आधुनिक परीक्षाओं की उत्पत्ति एवं विकास में अनेक व्यक्तियों एवं शक्तियों का हाथ रहा है। आगामी पंक्तियों में उन्हीं व्यक्तियों एवं शक्तियों परिचय प्रस्तुत किया जाएगा।

१—ज्यौर्ज फिशर (*George Fisher*)—विकास की दृष्टि से औपचारिक परीक्षा-काल भी दो भागों में विभाजित किया जा सकता है : (*i*) प्रातीतिक (*Subjective*) परीक्षा-काल, तथा (*ii*) वैषयिक (*Objective*)-परीक्षा-काल। सन् १८६४ ई० औपचारिक परीक्षा-काल को इन दो कालों में विभाजित करती है। वैषयिक परीक्षण तथा शैक्षणिक मापन में अभिनव आन्दोलन का जन्म सन् १८६४ में हुआ था। इस आन्दोलन के जन्मदाता इङ्गलैण्ड के ग्रीनविच हॉस्पिटल स्कूल के अध्या-

---

卐 *"In ancient China, competitive written examinations were used for selecting candidates to fill positions in the Civil Service."*
—Book No. 5, P. 313

एक ज्यौर्ज फिशर माने जाते हैं।卐 फिशर का विश्वास था कि छात्रों की प्राप्तियाँ (*Achievements*) उसकी मापश्रेणियों (*Scales*) के अनुसार मापी जा सकती हैं। आरम्भ में फिशर की योजना को सामान्यतः नहीं अपनाया गया और ऐसी मापश्रेणियों का प्रयोग बीसवीं शताब्दी से आरम्भ हुआ है।

२—डॉ० जे० एम० राइस (*Dr. J. M. Rice*)—डॉ० राइस शैक्षणिक माप आन्दोलन के नेता थे। उन्होंने १६ वीं शताब्दी की अन्तिम दशाब्दी में यह सुझाव दिया कि वर्णयोग-अध्यापन (*Spelling Teaching*) के परिणाम छात्रों को एक सीमित समय के भीतर वर्णयोगित (*Spelled*) होने के लिये सावधानी से चुने हुए शब्दों की सूचियाँ दे कर मापे जा सकते हैं। आरम्भ में डॉ० राइस के प्रस्ताव की भी हँसी उड़ायी गयी। परन्तु वह इससे निराश न हुए और अपने विरोधियों का सामना करते हुए वर्णयोग, गणित तथा भाषा के माप के लिये परीक्षाओं का निर्माण करने में सफल हुए। तब से नवीन परीक्षण आन्दोलन द्रुत गति से विकसित हो रहा है और आजकल लगभग समस्त विषयों में मापन प्रयुक्त किया जा चुका है।

३—थौर्नडाइक (*Thorndike*)—थौर्नडाइक की *Educational Psychology* सन् १९०३ में तथा *Theory of Mental*

卐 *"The origin of the recent movement in objective testing and educational measurement may be traced in its elementary form as for back as 1864 to the work of Rev. George Fisher of Greenwich Hospital School in England."*

—Book No. 5, P. 313.

and Social Measurement सन् १९०४ में प्रकाशित हुई। इस प्रकार सर्व प्रथम शैक्षणिक माप का सिद्धान्त प्रस्तुत करने का श्रेय थौर्नडाइक को है। अध्यापकों तथा शिक्षाविदों को सांख्यिकीय रीति (*Statistical Method*) दे कर थौर्नडाइक ने नवीन परीक्षण आन्दोलन को एक नवीन एवं निश्चित मार्ग प्रदान किया। १९१४ से शैक्षणिक माप के विकास के प्रथम काल का आरम्भ हुआ। तब से अब तक अनेक परीक्षाओं का निर्माण तथा अत्यधिक संपरीक्षण (*Experimentation*) और अनेक परीक्षाओं का प्रमापीकरण (*Standardization*) हो चुका है। यहाँ यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि आरम्भ में अधिकांश संपरीक्षण प्रारम्भिक पाठशालाओं तक ही सीमित था, परन्तु अभिनव वर्षों में वह माध्यमिक पाठशालाओं में भी प्रवेश कर चुका है।

४—अन्य व्यक्ति—१९१७ से परीक्षिकाओं एवं परीक्षणों (*Tests and Examinations*) का विकास अत्यन्त द्रुत गति से हो रहा है। १९०८ में प्रथम प्रमापीकृत परीक्षिका उपस्थित की गयी थी। तब से १९२८ तक लगभग १३०० प्रमापीकृत एवं अर्ध-प्रमापीकृत परीक्षिकाएँ सूचीबद्ध की जा चुकी हैं। १९०४ में थौर्नडाइक की *Theory of Mental and Social Measurement* के प्रकाशित होने के पश्चात् नवीन परीक्षाओं के निर्माण तथा प्रमापीकरण की दिशा में जिन व्यक्तियों ने महत्त्वपूर्ण कार्य किया है उनमें से स्टोन (*Stone*), करटिस (*Courtis*), हिलेगस (*Hillegas*), बकिंघम (*Buckingham*), वूडी (*Woody*), ट्रेब (*Trabue*), कैली (*Kelly*), इत्यादि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

(घ) *शिक्षा में वैज्ञानिक आन्दोलन*

शिक्षा में वैज्ञानिक आन्दोलन का नाम लिये बिना परीक्षा का इतिहास अपूर्ण ही रहेगा क्योंकि निष्पन्न-परीक्षाओं (*Achievement Tests*) का विकास शिक्षा में वैज्ञानिक आन्दोलन की ही एक प्रावस्था (*Phase*) है। १८५९ में डारविन (*Darwin*) की *Origin Of Species* के प्रकाशित होने के पश्चात् से जीवशास्त्रियों (*Biologists*) का ध्यान वैयक्तिक भेदों के अध्ययन की ओर आकृष्ट हो चुका था और गैल्टन (*Galton*) नामक सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक वैयक्तिक भेदों के गणितीय वर्णन को आगे बढ़ा चुका था तथा सह-सम्बन्ध रीति (*Correlation Method*) का विकास कर चुका था। इसके अतिरिक्त १८८६ में पेन (*Payne*) एक शिक्षा-विज्ञान की शक्यता पर तर्क दे चुका था। यही नहीं, १९०० से पूर्व गैल्टन, जेम्स (*James*), हॉल (*Hall*), कैटिल (*Cattle*), इत्यादि मनोवैज्ञानिक वैज्ञानिक रीतियों को प्रयोग में लाने का प्रयत्न कर रहे थे। इन समस्त शक्तियों के कारण शिक्षा में वैज्ञानिक आन्दोलन का सूत्रपात हुआ। शिक्षा में वैज्ञानिक आन्दोलन ने अनेक आन्दोलनों को जन्म दिया जिनमें से चार आन्दोलनों के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं : (i) प्राप्ति-परीक्षण-आन्दोलन, जिसे *Forum* के सम्पादक *J. M. Rice* के कार्य से बड़ा प्रोत्साहन, मिला, (ii) पाठशाला-समायोजन-आन्दोलन (*The School Adjustment Movement*), जिसका विकास थौर्नडाइक तथा आयर्स (*Ayres*) के प्रयत्नों से हुआ, (iii) बुद्धि-परीक्षा-आन्दोलन, जिसे बिने तथा साइमन (*Binet and Simon*) ने आगे बढ़ाया, और (iv)

पाठशाला-आपरीक्षण-आन्दोलन (*The School Survey Movement*), जिसका आरम्भ १९०७ के पिट्सबर्ग आपरीक्षण (*Pittsburgh Survey*) से हुआ। इन आन्दोलनों के कारण शैक्षणिक मापन की असाधारण उन्नति हुई।

३—परीक्षा के उद्देश्य

पूर्वगत पंक्तियों में यह कहा जा चुका है कि यदि परीक्षा शब्द को व्यापक अर्थ में ग्रहण किया जाए तो उसके क्षेत्र में परीक्षिका, मापन तथा अर्हापण का भी समावेश हो जाता है। इस प्रकार परीक्षिका, मापन तथा अर्हापण के उद्देश्य परीक्षा के भी उद्देश्य होंगे। यह परीक्षा के उद्देश्यों के निर्धारण का एक आधार है। द्वितीय आधार पर, प्रशासक, अध्यापक, माता-पिता, समाज इत्यादि के दृष्टिकोण से भी परीक्षा के उद्देश्य निर्धारित किये जा सकते हैं। हैनरी डैनिअल रिन्जलैण्ड (*Henry Daniel Rinsland*) परीक्षाओं के दो मुख्य उद्देश्य मानता है: (i) मापन (*Measurement*), तथा (ii) अभिरोचन (*Motivation*)।

(क) मापन (*Measurement*)

हम जानते हैं कि मापन के साधनों में सुधार होने से विज्ञान की असाधारण उन्नति हुई है और ज्ञान की परिशुद्धता (*Accuracy*) ने भौतिक कल्याण में अपूर्व सुधार किया है। अतः इस युक्ति पर दो मत नहीं हो सकते कि पाठशाला के उत्पादनों का माप बालकों के सीखने तथा पाठशाला के संघटन में सुधार के लिये प्रयुक्त किया जा सकता है। बालकों का शैक्षणिक एवं व्यावसायिक मार्गप्रदर्शन परिशुद्ध मापन पर ही निर्भर रहता है। माप के परिशुद्ध साधनों का निर्माण

करके ही क्रमबन्धन की एक परिशुद्ध प्रणाली स्थापित की जा सकती है तथा बालक की प्रगति के सम्बन्ध में मातापिता को सूचना देने के लिये एक उपयुक्त योजना बनायी जा सकती है। मापन का उद्देश्य बालकों को समझना होना चाहिये। हम बालकों के सीखने की प्रगति एवं उनकी योग्यताओं को समझ कर उन्हें भली भांति समझ सकते हैं। इस दृष्टिकोण से मापन का प्रयोग करने पर छात्रों के हृदय से परीक्षाओं का भय दूर हो जाएगा और उन्हें "आवश्यक पाप" (*Necessary Evils*) समझा जाना अनुचित प्रतीत होने लगेगा।

(ख) अभिरोचन (*Motivation*)

परीक्षाओं का द्वितीय महत्वपूर्ण उद्देश्य छात्रों का अभिरोचन करना है जिससे वे सुगमतापूर्वक और अधिक सीख सकें। एक योग्य अध्यापक के हाथों में परीक्षाएँ सर्वोत्तम उत्तेजक (*Incentives*) हो सकती हैं। जिस प्रकार प्रौढ़ व्यक्तियों के लिये पारितोषिकों एवं पदोन्नतियों का प्रयोग उत्तेजकों के रूप में किया जाता है उसी प्रकार बालकों के लिये उत्तेजकों के रूप में परीक्षाओं का प्रयोग किया जा सकता है। आजकल परीक्षाओं को दण्ड के साधनों के रूप में प्रयुक्त किया जाता है जो सर्वथा अनुचित है अध्यापकों को चाहिए कि वे परीक्षाओं को छात्रों के लिये साहाय्य-साधनों के रूप में प्रयुक्त करें। वस्तुतः, परीक्षा को एक गामक (*Motive*) के रूप में लिया जाना चाहिए।❀

❀ *"Life is full of motives; therefore, it is notwrong to have an examination as a motive. Pupils measure their instructors and instructors measure their pupils."*

—Book No. 6, P. 12.

३—परीक्षाओं का वर्गीकरण

परीक्षाएँ

- प्राचीन निबन्ध परीक्षाएँ (*Old Essay Examinations*)
- नवीन वैषयिक परीक्षाएँ (*New Objective Tests*
  - शैक्षणिक परीक्षाएँ (*Educational or Scholastic Tests*)
    - निष्पन्न परीक्षाएँ (*Achievement Tests*) अथवा योग्यताप्राप्ति परीक्षाएँ (*Attainment Tests*)
    - नैदानिक तथा शिक्षण परीक्षाएँ (*Diagnostic and Instructional Tests*)
  - मनोवैज्ञानिक परीक्षाएँ (*Psychological Tests*
    - बुद्धि अथवा मानसिक परीक्षाएँ (*Intelligence or Mental Tests*)
    - पूर्वज्ञापक परीक्षाएँ (*Prognostic Tests*)
    - करण परीक्षाएँ (*Performance Tests*)
    - अभियोग्यता परीक्षाएँ (*Aptitude Tests*)
    - विशेष योग्यता परीक्षाएँ (*Tests of Special Abilities*)
    - व्यक्तित्व परीक्षाएँ (*Personality Tests*)
      - चरित्र परीक्षाएँ (*Tests of character*)
      - अभिरुचि परीक्षाएँ (*Tests of Interests*)
      - अभिवृत्ति परीक्षाएँ (*Attitude Tests*)

परीक्षाओं का एक स्पष्ट चित्र वाचकों के सम्मुख प्रस्तुत करने के लिये सुविधा के दृष्टिकोण से यहाँ परीक्षाओं का वर्गीकरण करने का प्रयत्न किया गया है, परन्तु वास्तव में परीक्षाओं का वर्गीकरण करना एक अत्यन्त कठिन कार्य है। वस्तुतः परीक्षाओं के किसी भी वर्गीकरण को अन्तिम अथवा पूर्ण नहीं कहा जा सकता। परीक्षाओं का वर्गीकरण विभिन्न आधारों पर किया जाता है। अतः वर्गीकरण करने वाले व्यक्ति को वर्गीकरण के मुख्य आधारों को अवश्य समझ लेना चाहिए। परीक्षाओं को विकास के आधार पर प्राचीन तथा नवीन परीक्षाओं में विभाजित किया गया है। पुनः नवीन परीक्षाओं का वर्गीकरण अनेक आधारों पर किया जाता है, उदाहरणार्थ, प्रबन्ध की रीति (*Method of Administration*) के आधार पर वैयक्तिक एवं समूह परीक्षाओं में; प्रमापित कार्य (*Function Measured*) के आधार पर बुद्धि अथवा मानसिक, शैक्षणिक अथवा निष्पन्न तथा चरित्र एवं व्यक्तित्व परीक्षाओं में; विस्तार (*Scope*) के आधार पर सामान्य एवं विशिष्ट परीक्षाओं में; प्रमापीकरण (*Standardization*) के आधार पर प्रमापीकृत (*Standardized*) एवं अप्रमापीकृत परीक्षाओं में; शैक्षणिक प्रयोजन के आधार पर सामान्य आपरीक्षण (*General Survey*), नैदानिक तथा पूर्वज्ञापक परीक्षाओं में; और अन्य आधारों पर एकविधि (*Single*) एवं समूहा (*Battery*) परीक्षाओं में तथा गति (*Speed*) एवं शक्ति (*Power*) परीक्षाओं में। इसी प्रकार विषय (*Content*) के आधार पर बुद्धि-परीक्षाओं को शाब्दिक (*Verbal*) एवं अशाब्दिक परीक्षाओं में विभाजित

किया जा सकता है। इस विवेचन से स्पष्ट है कि हमारा उपर्युक्त वर्गीकरण किसी एक आधार पर आधारित नहीं है और एक प्रकार से उसे एक मिश्रित वर्गीकरण कहा जा सकता है। आगामी अध्यायों में इन्हीं में से महत्वपूर्ण परीक्षाओं का विस्तृत वर्णन किया जाएगा।

यह पुस्तक मुख्यतः प्रशिक्षण महाविद्यालयों के छात्राध्यापकों एवं अध्यापकों के लिये लिखी गयी है, जिन्हें मनोवैज्ञानिक परीक्षाओं की अपेक्षा शैक्षणिक परीक्षाओं से अधिक संव्यवहार करना होता है। अतः इसमें निबन्ध परीक्षा, वैषयिक परीक्षा, परीक्षा-निर्माण के सामान्य सिद्धान्त, नवीन परीक्षाओं के सामान्य रूप, परीक्षण-कार्यक्रम के पद, एक अच्छी परीक्षा की विशेषताएँ, परीक्षकों के लिये सङ्केत, प्रमापीकृत परीक्षा, नैदानिक परीक्षा, निष्पन्न परीक्षा, सञ्चयी अभिलेख (*Cumulative Records*) इत्यादि शैक्षणिक महत्व के प्रश्नों पर विशेष बल दिया गया है और उनका वर्णन विस्तारपूर्वक किया गया है। मनोवैज्ञानिक परीक्षाओं में से बुद्धि-परीक्षा, पूर्वज्ञापक परीक्षा (*Prognostic Test*) तथा करण-परीक्षा (*Performance Test*) इत्यादि का ही समावेश किया गया है।

द्वितीय अध्याय

निबन्ध-परीक्षा

१. प्रस्तावना

विकास की दृष्टि से परीक्षाओं को दो भागों में बाँटा जा सकता है : (i) लिखित निबन्ध-परीक्षाएँ, तथा (ii) नवीन वैषयिक परीक्षाएँ। पत्र (*Paper*) के माध्यम से लिखित परीक्षा-प्रणाली का जन्म अनौपचारिक रूप से २२५ ईसा पूर्व चीन में हुआ था और वह २९ ईसा पूर्व में एक निश्चित जानपद-सेवा-परीक्षा (*Civil Service Examination*) का रूप ग्रहण कर चुकी थी। उपाधियों के दृष्टिकोण से छात्रों की परीक्षा लेने का विचार सर्व प्रथम मध्यकालीन यूरोपीय विश्व-विद्यालयों में उत्पन्न हुआ था। १८६४ तक शिक्षा-जगत् में निबन्ध-प्ररूप परीक्षा का एकछत्र राज्य बना रहा। आज भी निबन्ध-प्ररूप परीक्षाओं को पर्याप्त महत्त्व दिया जाता है। प्रस्तुत अध्याय में हम इन्हीं निबन्ध-प्ररूप परीक्षाओं के विषय में अध्ययन करेंगे।

२–निबन्ध-परीक्षा का अर्थ एवं रूप

पूर्वगत अध्याय में परीक्षण (*Examination*), परीक्षिका (*Test*), मापन (*Measurement*) तथा अर्हापण (*Evaluation*) के अर्थ एवं अन्तर का वर्णन करते समय अनेक विद्वानों के शब्दों में परीक्षा के अर्थ को विस्तारपूर्वक स्पष्ट

किया जा चुका है। यहाँ उसकी पुनरावृत्ति करना अनावश्यक होगा। संक्षेपतः, परीक्षा शब्द को व्यापक एवं सङ्कीर्ण दो अर्थों में प्रयुक्त किया जाता है। व्यापक अर्थ में, परीक्षा के क्षेत्र में परीक्षण के समस्त रूपों, अर्थात्, निबन्ध-प्ररूप परीक्षा, परीक्षिका, मापन, अर्हापण इत्यादि का समावेश हो जाता है और मौखिक परीक्षाएँ, लिखित परीक्षाएँ, वैषयिक परीक्षाएँ, तथा प्रमापीकृत (*Standardized*) परीक्षाएँ भी उसी के क्षेत्र का विषय होती हैं। सङ्कीर्ण अर्थ में, परीक्षा में कुछ ऐसे प्रश्नों का समावेश होता है जिनके उत्तर छात्रों को लिखित रूप में देने होते हैं, अथवा उसमें कुछ ऐसे विषयों का समावेश होता है जिन पर छात्रों को निबन्ध लिखने होते हैं। आजकल परीक्षा शब्द का प्रयोग सङ्कीर्ण अर्थ में किया जाता है और उसे निबन्ध-प्ररूप परीक्षा का पर्यायवाची माना जाता है।卐 प्रस्तुत अध्याय में निबन्ध-प्ररूप परीक्षा का ही वर्णन किया जाएगा। निबन्ध-प्ररूप परीक्षा के रूप को पूर्णतः स्पष्ट करने के लिये नीचे यू० पी० बोर्ड (*Board of High School and Intermediate Education, Uttar (Pradesh*) द्वारा १९५९ में हाई स्कूल के छात्रों के लिये अभिप्रेत इतिहास के प्रथम प्रश्नपत्र को प्रस्तुत किया जा रहा है :

卐 *"Essay examinations receive their name from the fact that they consist essentially of questions the answers to which are in the form of written expression by the pupils, or of topics or broad questions upon which the pupil writes essays or discussions."* —*Book No. 4, P. 279*

१९५९ *HM/26*

इतिहास

समय ३ घण्टे] प्रथम प्रश्नपत्र पूर्णांक—५०

सूचनाः—(१) केवल पाँच प्रश्नों के उत्तर दीजिये ।

(२) सब प्रश्नों के अंक समान हैं ।

१. मोहनजोदड़ो तथा हरप्पा की खुदाई का भारतवर्ष के इतिहास में क्या महत्त्व है ? १०

२. वैदिक कालीन आर्यों की सामाजिक तथा राजनैतिक दशा का वर्णन कीजिये । ६+४

३. बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों पर प्रकाश डालिये । इस धर्म के उत्थान के क्या कारण थे ? ५+५

४. गुप्तवंशीय राजाओं का शासन काल स्वर्णयुग क्यों कहलाता है ? १०

५. सातवीं शताब्दी के आरम्भ में दक्षिण भारत के कौन कौन से प्रमुख राज्य थे ? उनमें से किसी एक का संक्षिप्त वर्णन कीजिये । ४+६

६. मंगोल कौन थे ? उनके आक्रमणों का भारत पर क्या प्रभाव पड़ा ? ३+७

७. राजपूतों के चरित्र के गुण तथा दोषों की विवेचना कीजिये । ५+५

८. विजयनगर राज्य के शासन-प्रबन्ध पर प्रकाश डालिए । १०

९. अलाउद्दीन खिलजी के शासन प्रबन्ध का वर्णन कीजिये। १०

१०. फिरोज़ तुग़लक के शासन-प्रबन्ध की क्या विशेषताएँ थीं ? १०

60,000

३—निबन्ध-परीक्षा की विशेषताएँ

डॉनैल्ड जी० पैटरसन (*Donald G. Paterson*) के मतानुसार निबन्ध-प्ररूप परीक्षाओं में तीन मुख्य विशेषताएँ होती हैं : (i) "किस प्रकार" के प्रश्नों का रूप, (ii) प्रश्नों की अल्प संख्या, तथा (iii) लम्बे व्याख्यात्मक लिखित उत्तर। उपर्युक्त प्रश्नपत्र की सहायता से इन विशेषताओं को सुगमता-पूर्वक समझा जा सकता है।

(क) *"किस प्रकार" के प्रश्नों का रूप ("How" Type Questions)*

प्रथमतः, प्रश्नों का विशेष रूप निबन्ध-परीक्षा की मुख्य विशेषता होती है। ये प्रश्न प्रायः "किस प्रकार" प्ररूप के होते हैं। परन्तु चार्ल्स रसल के मतानुसार निबन्ध-परीक्षाओं के प्रश्न दो प्रकार के होते हैं : (i) निबन्ध-रूप प्रश्न, तथा (ii) तथ्य प्रश्न। निबन्ध-रूप प्रश्न "वर्णन कीजिए", "विषय में बताइए", "चर्चा कीजिये", "समालोचना कीजिए", इत्यादि निदेश (*Directions*) का प्रयोग करते हैं; तथ्य-प्रश्नों में "किस प्रकार","क्या", "क्यों","कहाँ","कौन", इत्यादि शब्दों का प्रयोग किया जाता है।卐 उपर्युक्त प्रश्नपत्र में प्रश्न २, ७, ८, तथा ९ पूर्णतः निबन्ध-रूप प्रश्नों के उदाहरण हैं और प्रश्न १, ४, ६, तथा १० पूर्णतः तथ्य प्रश्नों के। प्रश्न ३ का पूर्वार्ध निबन्ध रूप प्रश्न है और उत्तरार्ध तथ्य प्रश्न। इसी प्रकार प्रश्न ५ का पूर्वार्ध तथ्य प्रश्न है और उत्तरार्ध-निबन्ध-रूप प्रश्न।

卐 *"The questions are usually of two types. One of them is the essay form, using such directions as "Describe", "Tell about", "Discuss, or "Criticize"; the other consists of fact questions preceded by "How" or "What" or "Why" & sometimes by ' Where" or Who".—Book No. 12 P. 12-13.*

(ख) *प्रश्नों की अल्प संख्या*

द्वितीयतः, निबन्ध प्ररूप परीक्षा के प्रश्नों की संख्या १० अथवा १२ के आसपास होती है, जिनमें से परीक्षार्थियों को ४, ५ अथवा ६ प्रश्नों के उत्तर देने होते हैं। कभी कभी प्रश्नों के अन्तर्विभाजनों की गणना करके प्रश्नों की संख्या १५ अथवा २० भी हो जाती है। उदाहरणार्थ, उपर्युक्त प्रश्नपत्र में से प्रश्न १, ४, ८, ९ तथा १० के उत्तर देते समय परीक्षार्थियों को केवल पाँच प्रश्नों के उत्तर देने होंगे और प्रश्न २, ३, ५, ६, तथा ७ के उत्तर देते समय १० प्रश्नों के, क्योंकि इनमें से प्रत्येन प्रश्न में दो अन्तर्विभाजन विद्यमान हैं। प्रश्न या तो एक प्रश्नपत्र में मुद्रित होते हैं अथवा वे कृष्णपट्ट पर लिख दिये जाते हैं।

(ग) *लम्बे व्याख्यात्मक लिखित उत्तर*

तृतीयतः, निबन्ध परीक्षाओं में परीक्षार्थियों को प्रश्नों के उत्तर एक अथवा अधिक उत्तरपत्रिकाओं में लिखने होते हैं। उत्तर या तो किसी विधा (*Process*) का एक वर्णन होते हैं, अथवा एक संनिहित व्याख्या के विस्तृत तर्कसङ्गत पदों के कथन।

४—लिखित परीक्षाओं के कार्य

फिलिप ई० वरनन (*Philip E. Vernon*) के मतानुसार सामान्य लिखित परीक्षाओं के छः कार्य होते हैं:—

(क) *एक विषय के ज्ञान की राशि को सिद्ध करना*

प्रथमतः, लिखित परीक्षाएँ निष्पन्न परीक्षाओं (*Achievement Tests*) के रूप में यह सिद्ध करने के लिये प्रयुक्त की

जाती हैं कि एक छात्र ने एक विषय की कुछ राशि अर्जित की है अथवा नहीं।

(ख) अध्यापक की दक्षता का निर्धारण

द्वितीयतः, अध्यापकों की दक्षता का निर्धारण करने के लिये एक सम्पूर्ण श्रेणी अथवा पाठशाला को लिखित परीक्षाएँ दी जाती हैं। यद्यपि छात्रों को इस प्रकार लिखित परीक्षाएँ दे कर अध्यापकों की दक्षता का निर्धारण करना समुचित नहीं कहा जा सकता, फिर भी जनता अभी तक पाठशालाओं के स्तर का निर्णय उनकी परीक्षा-सफलता के आधार पर ही करती है। मुख्याध्यापक नियतकालिक लिखित परीक्षाओं द्वारा निश्चित स्तर बनाये रखने का सदैव प्रयत्न करते रहते हैं।卐

(ग) उच्च श्रेणियों के लिये प्रवरण (Selection)

तृतीयतः, अनेक परीक्षाओं का कार्य पूर्वज्ञापक (*Prognostic*) होता है, अर्थात्, वे छात्रों की भावी प्राप्तियों की भविष्यवाणी करती हैं। वे उच्च प्रक्रमों (*Stages*) के लिये उन छात्रों का चुनाव करती हैं जो उनके लिये सर्वथा उपयुक्त होते हैं।

(घ) चरित्र के गुणों की प्रव्यक्ति (Manifestation)

चतुर्थतः, लिखित परीक्षाओं द्वारा विशेष विषयों में प्राप्ति

卐*"Schools are still commonly judged by the public on the basis of their examination success. And both head teachers and inspectors try to ensure the maintenance of certain standards by means of periodic or written examinations."* —*Book No. 7, P. 220*

अथवा प्राप्ति की शक्यता का प्रकटीकरण तो होता ही है, साथ ही वे चरित्र के अनेक गुणों की भी प्रव्यक्ति करती हैं। उदाहरणार्थ, परीक्षाओं द्वारा छात्रों के अभिनिवेश (*Perseverance*) एवं उद्योग (*Industry*), अनुशासन एवं शान्ति की मात्रा, इत्यादि चरित्र के महत्वपूर्ण गुणों की जाँच होती है।

(ङ) *छात्रों एवं अध्यापकों का उद्दीपन* (*Stimulation*)

पञ्चमतः, लिखित परीक्षाएँ छात्रों के उद्दीपन के लिये एक उत्तेजक (*Incentive*) प्रदान करती हैं जिससे वे कार्य कर सकें। इसके अतिरिक्त वे अध्यापकों के उद्दीपन के लिये भी एक उत्तेजक प्रदान करती हैं, जिससे वे योग्यता का एक वाञ्छनीय स्तर बनाये रहें।

(च) *मार्गप्रदर्शन* (*Guidance*)

अन्ततः, मार्गप्रदर्शन लिखित परीक्षाओं का एक अत्यन्त युक्तियुक्त कार्य होता है। अपने शिक्षण के परिणामों की जाँच करके अध्यापक यह देख सकता है कि वह किसी विषय को स्पष्ट करने में कहाँ विफल हुआ है, और उसके अनुसार अपनी रीतियों में सुधार कर सकता है। अपने छात्रों के निष्पादनों (*Accomplishments*) की जाँच करके वह छात्रों की दुर्बलताओं का निदान कर सकता है, तथा अपने प्रयासों को उन रेखाओं के साथ साथ सञ्चालित कर सकता है जिनके लिये वे (छात्र) पूर्णतः उपयुक्त होते हैं।

४—निबन्ध-परीक्षा के दोष

शिक्षा के क्षेत्र में जितनी निन्दा निबन्ध-परीक्षाओं की हुई है, उतनी संभवतः अन्य किसी शैक्षणिक विषय की नहीं। समालोचकों ने निबन्ध-परीक्षा के उद्देश्य, निर्माण, मापन-रीति,

प्रयोग, प्रभाव तथा लेखन शैली के आधार पर उस पर अनेक दोषारोपण किये हैं। निबन्ध-परीक्षा के विरुद्ध समालोचकों के मुख्य तर्क निम्नलिखित हैं :—

(क) उद्देश्य के आधार पर निबन्ध-परीक्षा के दोष

निबन्ध-परीक्षाओं पर यह दोषारोपण किया जाता है कि वे सम्पूर्ण पाठ्यक्रम पर छायी हुई होती हैं और उसे व्याकर्षित (*Distorted*) करती हैं। उन्होंने शिक्षा को इस सीमा तक प्रभावित किया है कि छात्र का मुख्य उद्देश्य शिक्षित होने की अपेक्षा परीक्षा उत्तीर्ण करना हो गया है।卐 यद्यपि थोड़े से छात्र ही प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् माध्यमिक पाठशालाओं में और माध्यमिक शिक्षा समाप्त करके विश्वविद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करने के लिये जाते हैं, फिर भी प्रारम्भिक प्रक्रम (*Stage*) पर प्रत्येक छात्र को इस प्रकार कार्य करना होता है मानो उसका अन्तिम उद्देश्य एक पाठशाला-प्रमाणपत्र तथा एक विश्वविद्यालय-उपाधि प्राप्त करना हो। परीक्षा-परिणामों के कारण अधिकांश अध्यापक अपने छात्रों को वह ज्ञान नहीं दे पाते जो वास्तविक जीवन में उनके लिये उपयोगी होगा। आजकल भी छात्र एवं अध्यापक की योग्यता का निर्णय परीक्षा-परिणाम के आधार पर किया जाता है। यही नहीं, शिशु-शालाओं तक को पठन, लेखन एवं सङ्गणन (*Three-R's*) में शिक्षा देने के लिये सज्जा-विभागों (*Preparatory Departments*) के रूप में समझा जाता है और विश्व-

---

卐 *"Passing the examination instead of being educated becomes the main objective of the student."*

--Book No. 8, P. 4

विद्यालयों के लिए माध्यमिक पाठशालाओं में सङ्कीर्ण विशेषीकरण (*Specialization*) एक महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण कर लेता है। इसके अतिरिक्त पाठशालाओं में गृह-कार्य को समय से पूर्व महत्व दे दिया जाता है।❀

(ख) निर्माण के आधार पर निबन्ध-परीक्षा के दोष

अधिकांश व्यक्ति निबन्ध-परीक्षा के प्रश्नों की रचना करना एक खेल अथवा एक साधारण-सा कार्य समझते हैं, किन्तु सत्य इसके विपरीत होता है। वस्तुतः अच्छी निबन्ध-परीक्षाओं का निर्माण करना अच्छी वैषयिक परीक्षाओं (*Objective Tests*) का निर्माण करने की अपेक्षा अधिक कठिन होता है।卐 लेखक का विश्वास है कि निबन्ध-परीक्षाओं के निर्माण में सबसे बड़ी बाधा भाषा-सम्बन्धी होती है। अनेक परीक्षा-निर्माता प्रश्नों को एक ऐसी भाषा में छात्रों के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं कि अधिकांश छात्र अपनी भाषा-सम्बन्धी दुर्बलता के के कारण उनका अर्थ नहीं समझ पाते और उत्तरों से भली भांति परिचित होने पर भी उनके सन्तोषजनक उत्तर नहीं दे पाते। अनेक परीक्षा-निर्माताओं को उद्धरणों (*Quotations*) से इतना मोह होता है कि वे उद्धरणों को ही प्रश्नों के रूप में

❀ *"Even the infant schools tend to become preparatory departments for training in the three R's. Home work is set at far too early an age."* —*Book No. 7. P. 222,*

卐 *One of the difficulties with constructing essay tests is that the process appears so easy. As a matter of fact, it is probably more difficult to construct essay tests of high quality than it is to construct objective tests of high quality".* —*Book No. 9, P. 165.*

छात्रों के सम्मुख प्रस्तुत कर देते हैं और छात्र उन्हें स्पष्ट रूप से समझने में असमर्थ होने के कारण या तो उनके उत्तर ही नहीं देते अथवा उनके उत्तर ठीक नहीं हो पाते। ऐसे परीक्षा-निर्माता संभवतः यह भूल जाते हैं कि छात्र भाषा-परीक्षा में सम्मिलित नहीं हो रहे हैं, अतः उन्हें भाषा के जाल में उलझाना सर्वथा अनुचित होगा। उदाहरणार्थ, १९५८ की एल० टी० परीक्षा के तृतीय प्रश्नपत्र में परीक्षा-निर्माता एक प्रश्न द्वारा छात्रों से यह पूछना चाहता था कि "१९४४ के शिक्षा अधिनियम के अनुसार केन्द्रीय शासन, स्थानीय शासन, प्रबन्धकों तथा मातापिता के दायित्व क्या हैं ?" परन्तु उसने इस सीधी-सी बात को सरल, सुबोध एवं सहज भाषा में प्रत्यक्षतः न पूछ कर जटिल, दुर्बोध एवं अस्वाभाविक भाषा में अप्रत्यक्षतः इस प्रकार पूछा :

"*The Education Act of 1944 lays unprecedented obligations upon both public authorities and private citizens.*" *Discuss fully.*

यही नहीं, इस उद्धरण का जो हिन्दी अनुवाद किया गया वह और भी अधिक हास्यास्पद है। देखिए :

"१९४४ ई० का विधेयक शासन (?) एवम् व्यक्तिगत नागरिक दोनों पर अपूर्व उत्तरदायित्व स्थापित करता है।"—पूर्ण विवेचना कीजिये।

(ग) मापन-रीति के आधार पर निबन्ध-परीक्षा के दोष

पहले ही कहा जा चुका है कि परीक्षाओं का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य छात्रों की प्रगति को मापना भी है। इस सम्बन्ध में निबन्ध-परीक्षाओं पर यह दोषारोपण किया जाता है कि वे

प्रगति-मापन की अत्यन्त दोषपूर्ण रीतियाँ होती हैं। प्रगति-मापन की रीतियों के रूप में निबन्ध-परीक्षाओं में तीन मुख्य दोष होते हैं : (i) प्रातीतिकता (*Subjectivity*), (ii) अपर्याप्त विश्वसनीयता (*Inadequate Reliability*), तथा (iii) अपर्याप्त मान्यता (*Inadequate Validity*)।

(१) प्रातीतिकता—निबन्ध-परीक्षाओं का मापन-सम्बन्धी प्रथम महत्वपूर्ण दोष उनकी प्रातीतिकता है, अर्थात् उनमें वैषयिकता (*Objectivity*) का अभाव होता है। अन्य शब्दों में, निबन्ध परीक्षाएँ सार्वत्रिक सत्यों एवं अवैयक्तिक तथ्य-सम्बन्धी साक्ष्य (*Evidence*) की अपेक्षा वैयक्तिक निर्णय, मत, पक्षपात, इत्यादि से अधिक प्रभावित होती हैं। इस प्रातीतिकता का मुख्य कारण यह है कि भिन्न परीक्षक उत्तरों की वाञ्छनीय अथवा अवाञ्छनीय विशेषताओं को भिन्न प्रकार से सोचते हैं। अन्य शब्दों में वे परीक्षार्थियों की अनेक योग्यताओं को निर्धारित करने का प्रयत्न करते हैं। एक परीक्षक किये गये कार्य के साक्ष्य के लिये, तथा उत्तरों में अन्तर्विष्ट तथ्यों की व्यापकता एवं परिशुद्धता के लिये श्रेय दे सकता है; दूसरा भावी होनहारत्व, मौलिकता, एवं सामान्य सिद्धान्तों की अपेक्षा कर सकता है। एक विचाराभिव्यक्ति की स्पष्टता पर आग्रह कर सकता है; दूसरा अच्छी अथवा बुरी अभिव्यक्ति का विचार किये बिना विचारों की गम्भीरता को निर्धारित कर सकता है। कुछ परीक्षक बौद्धिक गुणों की अपेक्षा भावना-गुणों को अधिक श्रेय दे सकते हैं। प्रायः यह देखा गया है कि जब एक परीक्षार्थी की अभिवृत्तियाँ अथवा मत परीक्षक की अभिवृत्तियों अथवा मतों के विपरीत हो जाती

हैं तब परीक्षक का दृष्टिकोण पक्षपातपूर्ण हो जाता है और वह अपने "प्रिय" सिद्धान्तों के विरोध का बदला परीक्षार्थी को कम अङ्क दे कर लेता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस आधार पर अनेक योग्य परीक्षार्थियों को अयोग्य परीक्षकों के पक्षपात का शिकार हो कर उच्च डिवीज़नों एवं पोज़ीशनों से हाथ धोना पड़ा है।

(२) अपर्याप्त विश्वसनीयता—अपर्याप्त विश्वसनीयता का अर्थ यह है कि निबन्ध-परीक्षाओं में पर्याप्त सङ्गति (*Consistency*) नहीं होती, अर्थात्, (i) यदि कुछ परीक्षार्थी एक ही विषय से सम्बन्धित दो भिन्न परीक्षाओं में बैठें और एक ही परीक्षक उन परीक्षाओं का निर्माण तथा अङ्कन (*Marking*) करे तो उस परीक्षक से दोनों अवसरों पर परीक्षार्थी स्पष्ट रूप से भिन्न अङ्क प्राप्त करेंगे, (ii) इसी प्रकार यदि दो भिन्न परीक्षक लिपियों (*Scripts*) के एक ही कुलक (*Set*) का अङ्कन करें तो परिणामी अङ्कों में बड़ी भिन्नता होगी। निबन्ध-परीक्षाओं में अपर्याप्त विश्वसनीयता के चार मुख्य कारण हैं : (i) परीक्षार्थियों की मानसिक एवं शारीरिक अवस्था में वास्तविक परिवर्तन, (ii) उपस्थित विशेष प्रश्नों द्वारा परीक्षार्थी के ज्ञान एवं योग्यता का अपर्याप्त न्यादर्शन (*Sampling*)। यही कारण है कि परीक्षार्थी प्रायः यह कहा करते हैं कि "प्रश्न उपयुक्त न थे"; कि "हम अन्य प्रश्नों के अधिक अच्छे उत्तर दे सकते थे", (iii) भिन्न परीक्षकों द्वारा अथवा उसी परीक्षक द्वारा भिन्न अवसरों पर स्वीकृत अङ्कन के स्तर, तथा (iv) परीक्षार्थियों के उत्तरों के बारे में भिन्न परीक्षकों के बीच

मतभेद। वैयक्तिक तत्व अविश्वसनीयता का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्रोत होता है।❀

(३) अपर्याप्त मान्यता--निबन्ध-परीक्षाओं की अपर्याप्त मान्यता से यह अभिप्राय है कि वे उस परीक्षा-सफलता की मात्रा को भी गम्भीर भूल किये बिना नहीं माप सकतीं जिसके लिये वे अभिप्रेत होती हैं और उनसे प्राप्त अङ्कों को भविष्य-वाणी के लिये प्रयुक्त नहीं किया जा सकता। अन्य शब्दों में, निबन्ध परीक्षाएँ परीक्षार्थी के बारे में मान्यतापूर्वक भविष्य-वाणी नहीं कर सकतीं। निबन्ध-परीक्षाओं की अपर्याप्त विश्वसनीयता प्रत्येक एवं किसी भी प्रयोजन के लिये उनके मूल्य को अत्यन्त कम कर देती है।

(घ) प्रयोग के आधार पर निबन्ध-परीक्षा के दोष

प्रयोगात्मक (*Usability*) के दृष्टिकोण से निबन्ध-परीक्षाओं का मुख्य दोष यह है कि उनमें पर्याप्त प्रयोग-क्षमता नहीं होती। वे अध्यापक तथा परीक्षार्थी दोनों के बहुत अधिक समय का उपभोग करती हैं और उनके लिये अतिरिक्त व्यय एवं उर्जा (*Energy*) की आवश्यकता होती है।卐

❀ *"The most important source of unreliability is the personal element which enters into every examiner's evaluation of a script"* --*Book No, 7. P. 227.*

卐 *"In fact, the additional expenditure of time and energy over that needed for objective tests is so serious a limitation that the use of essay examinations can be justified only if it can be shown that the values realized are commensurate with this investment.* --*Book No. 9, P. 160*

(ङ) प्रभाव के आधार पर निबन्ध परीक्षा के दोष

निबन्ध-प्ररूप परीक्षाएँ बालकों में एक अवाञ्छनीय स्पर्धी भावना उद्दीप्त करती हैं और शिक्षा के समस्त प्रक्रमों पर निर्धारित पुस्तकों कण्ठगत करने के लिये प्रोत्साहन देती हैं जिसका परीक्षार्थी के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। वे परीक्षा उत्तीर्ण करना ही अपने जीवन का उद्देश्य समझने लगते हैं और इस प्रकार वास्तविक अर्थ में शिक्षा प्राप्त करने में असमर्थ रहते हैं। यही नहीं, परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिये अधिकांश परीक्षार्थी अनुचित साधनों का प्रयोग करने में भी संकोच नहीं करते जिसके कारण उनमें अनैतिकता का विकास होता है। फलतः वे अपने जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिये अनैतिक कार्य करते समय भी लज्जा का अनुभव नहीं करते। यह स्थिति किसी भी समाज के लिये घातक होगी। अभाग्यवश आजकल भारतीय छात्रों की यह प्रवृत्ति भारत की एक भयङ्करतम समस्या बन गयी है।

(च) लेखन-शैली के आधार पर निबन्ध-परीक्षा के दोष

कुछ परीक्षार्थियों का हस्तलेख एवं लेखन-शैली अन्य परीक्षार्थियों की अपेक्षा अधिक सुन्दर, प्रवाही, तथा प्रभावशाली होती है और वे अपने अल्प तथ्यों को सुन्दर हस्तलेख एवं प्रभावशाली शैली में व्यक्त कर सकते हैं। वे एक ऐसा निबन्ध लिख सकते हैं जो पढ़ने में तो अच्छा लगे परन्तु वास्तव में तथ्यों से रहित हो। इस प्रकार निबन्ध परीक्षा में छात्रों द्वारा परीक्षकों को धोखा दिये जाने की शक्यता के अवसर अधिक होते हैं। दूसरी ओर, कुछ ऐसे भी परीक्षार्थी होते हैं जिनके पास तथ्य एवं तर्क तो होते हैं परन्तु उन्हें भली भांति व्यक्त

करने अथवा आकर्षक हस्तलेख लिखने में असमर्थ होते हैं। निबन्ध-परीक्षाओं में ऐसे परीक्षार्थियों के साथ प्रायः अन्याय हो जाता है।

६–निबन्ध-परीक्षा के लाभ : निबन्ध परीक्षा का महत्व

निबन्ध परीक्षाओं के उपर्युक्त दोषों के कारण कुछ अति-मार्गी विचारकों ने यह मत व्यक्त किया है कि उन्हें समाप्त करके उनके स्थान पर नवीन वैषयिक परीक्षाओं का प्रतिस्थापन किया जाना चाहिए। परन्तु अन्य विचारकों का मत है कि निबन्ध परीक्षाओं का नाश करना हानिकर होगा क्योंकि उनमें अनेक गुण भी होते हैं। यही नहीं, उनमें कुछ गुण तो ऐसे होते हैं जिनका नवीन वैषयिक परीक्षाओं में सर्वथा अभाव होता है। एक ऐसे ही विचारक हैरी सी० मैकोन (*Harry C. Mckown*) के मतानुसार निबन्ध परीक्षाओं में नौ गुण होते हैं जो निम्नलिखित हैं:—

(क) परीक्षा व्यक्ति के ज्ञान, शक्ति, प्रावीण्य तथा योग्यता को प्रकट करती है

परीक्षा छात्र को यह दिखाने का एक अवसर प्रदान करती है कि उसने आवश्यक तथ्यों को सीखा है अथवा नहीं, आधार-भूत सिद्धान्तों को समझा है अथवा नहीं, तथा वह जो कुछ जानता है उसे विचारने, विन्यस्त करने, अथवा प्रयुक्त करने में आवश्यक सुविधा एवं प्रावीण्य अर्जित किया है अथवा नहीं। इसके अतिरिक्त परीक्षा व्यक्ति की शक्तियों एवं दुर्बलताओं को प्रकट करती है और इस प्रकार सुधार के लिये निश्चित सूचना प्रदान करती है। परीक्षाएँ छात्र की कठिनाइयों के लिये कारण

ज्ञात करने में अध्यापक की भी सहायता करती हैं। परीक्षाओं के बिना छात्र को अपनी प्रगति का ज्ञान होना कठिन ही है। परीक्षाओं द्वारा अध्यापक अपनी योग्यता को माप सकते हैं और अपनी कार्य-योजनाओं में आवश्यक सुधार कर सकते है।卐

(ख) परीक्षा अर्जित सामग्री का एक लिखित दृश्य प्रदान करती है

सिंहावलोकन एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण शैक्षणिक प्रक्रिया होती है। एक पाठशाला-विषय में एक परीक्षा वास्तव में लिखित सिंहावलोकन का ही एक रूप होती है। परीक्षा के लिये यह आवश्यक होता है कि छात्र समस्त कार्य को एक पूर्ण एवं संघटित दृश्य प्राप्त करे।

(ग) परीक्षा सीखने का अभिरोचन एवं उद्दीपन करती है

यदि एक छात्र यह अनुभव करे कि उसे शीघ्र ही एक ऐसी स्थिति का सामना करना होगा जिसमें उसे अपनी अर्जित सामग्री का प्रयोग करना होगा तो वह अधिकाधिक सीखने के लिये प्रवृत्त होगा। परीक्षा सीखने के लिये एक उत्तेजक (*Incentive*) के रूप में कार्य करती है और वह छात्र को कार्य से लगाये रखती है।

(घ) परीक्षा के लिये सिंहावलोकन करना तथा परीक्षा लेना ज्ञान एवं प्रावीण्य में वृद्धि करता है

सिंहावलोकन एक परीक्षा के लिये अनिवार्य होता है और

卐 *"Further, such an examinaton shows the strong and weak points in the teacher's work and thus helps him to reorganize his material, redistribute his emphases, redirect his efforts and in other ways improve his instruction".*

--Book No. 9, P. 7.

इससे छात्र को नये विचारों की प्राप्ति होती है। फलतः उसके मस्तिष्क में नयी समझ, नये अविमूल्यन, स्पष्ट विचार तथा विचारों के अर्हापण, संघटन एवं अभिव्यक्ति करने के अभ्यास का विकास होता है।

(ङ) परीक्षा कम आवश्यक तथा अधिक आवश्यक तथ्यों एवं सिद्धान्तों के बीच विभेद करने का अभ्यास देती है

परीक्षा की अवधि इतनी कम होती है कि परीक्षार्थी के पास वह सब लिखने का समय नहीं होता जो वह जानता है। अतः उसे सामग्री को तोलना होता है, उसमें से अधिक महत्वपूर्ण विषयों का चुनाव करना होता है, और उन पर बल देना होता है। यह प्रक्रिया उसे विभेद करने में मूल्यवान् अभ्यास प्रदान करती है जो शिक्षा का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण उद्देश्य होता है।

(च) परीक्षा विचार करने का अभ्यास देती है

परीक्षा एक ऐसी घटना होती है जिसका भार बहुत अधिक होता है। समय कम होता है; कार्य अधिक होता है। फलतः परीक्षार्थी को द्रुत गति से कार्य करना होता है और निदेशों (*Directions*) का ठीक ठीक अनुसरण करना पड़ता है। ऐसा करते समय उसके पास न तो संपरीक्षण (*Experimentation*) करने का समय होता है और न रुक कर विचार करने अथवा अन्वीक्षा तथा विभ्रम (*Trial-and-Error*) द्वारा सीखने का। ऐसी स्थिति में वह विचाराभ्यास द्वारा ही सफलता प्राप्त कर सकता है। यह अभ्यास उसे अपने भावी

जीवन की बाधाओं का सामना करने के लिये भी समर्थ बनाता है।[卐]

(छ) *परीक्षा यह निर्दिष्ट करती है कि छात्र से क्या अपेक्षित है*

किसी भी विषय, अथवा पाठ्यक्रम में कुछ विचार ऐसे होते हैं जो अन्य विचारों की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण होते हैं। इन विचारों पर शिक्षा में अधिकाधिक बल दिया जाता है और छात्रों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे उन्हें उनके विचार तथा सापेक्ष कठिनाई के क्रम में सीखें। शिक्षक उन विषयों से परिचित होता है; छात्र अपरिचित होते हैं। अतः परीक्षक परीक्षार्थियों से यह अपेक्षा कर सकता है कि वे विषय की अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं कठिन प्रावस्थाओं (*Phases*) की ओर अधिक ध्यान एवं समय दें।

(ज) *परीक्षा छात्र के कार्य पर अध्यापक को एक और "प्रवण" (Slant) प्रदान करती है*

पाठशाला-कार्य में अनेक शैक्षणिक अभ्यासों का समावेश होता है, यथा पठन, चर्चा, अभिकार्य (*Projects*), अनुसंधान, प्रयोगशाला-प्रयोग, परीक्षण इत्यादि। यदि अध्यापक इनमें से किसी एक अभ्यास के आधार पर छात्रों के कार्य, ज्ञान, अथवा प्रावीण्य का निर्धारण करे तो उसे बड़ी कठिनाई होगी क्योंकि एक शैक्षणिक अभ्यास उसे छात्र के कार्य का एक अत्यन्त सीमित चित्र प्रदान करेगा। इस अभाव की पूर्ति के लिये परीक्षा एक अतिरिक्त अवसर होती है।

[卐] *"In this, the examination is similar to many a situation in which the student will find himself in later life, practice in it should help him to meet some of hese later difficulties.* —*Book No. 9, P. 10.*

(क) *परीक्षा प्रशासनात्मक लाभों के लिये सूचना प्रदान करती है*

आजकल सेना, नौसेना, जानपद-सेवा (*Civil Service*) में अनेक स्थानों के लिये भर्ती मुख्यतः परीक्षाओं के आधार पर की जाती है; और सामान्यतः पदोन्नतियाँ भी इन्हीं पर आधारित होती हैं। पाठशालाओं में भी सम्पारणों (*Promotions*), छात्रवृत्तियों, निर्णयों (*Awards*) इत्यादि के लिये प्रायः परीक्षाओं का प्रयोग किया जाता है। अतः पाठशाला-परीक्षाओं द्वारा छात्रों को इन परीक्षाओं के लिये तय्यार करना निश्चित रूप से बुद्धिमानी का कार्य होगा।卐

६–सुधारार्थ सुझाव

ऊपर यह कहा जा चुका है कि कुछ अतिमार्गियों ने निबन्ध परीक्षाओं के दोषों के कारण यह माँग की है कि उन्हें चालू रहने देना समुचित नहीं है और उन्हें नवीन वैषयिक परीक्षाओं द्वारा प्रतिस्थापित किया जाना चाहिए। परन्तु मध्यमार्गियों का कथन है कि निबन्ध परीक्षाओं को सर्वथा समाप्त करके हमें उनसे प्राप्त होने वाले लाभों से भी हाथ धोना पड़ेगा। अतः हमें उनमें आवश्यक सुधार करने चाहिएँ और निबन्ध परीक्षाओं तथा नवीन परीक्षाओं दोनों

卐 *"Many writers in economic and social life are recommending the extension of Civil Service examinations, and many children now in schools will take these examinations for the increasing number of vocations open only by examination. It is certainly wise to prepare students for these types of examinations by examinations in school".*

--Book No. 6, P, 11.

को चालू रहने देना चाहिए। वास्तव में परीक्षा के ये दोनों रूप स्वाभाविक हैं और दोनों का अपना महत्व होता है।❀ मध्यमार्गी विचारकों ने प्रातीतिक परीक्षाओं (*Subjective Tests*) में सुधार करने के लिये अनेक सुझाव दिये हैं। मुख्य सुझाव निम्नलिखित हैं :

(क) *निर्माण के सम्बन्ध में सुझाव*

(१) प्रश्नों की भाषा सरल होनी चाहिए।

(२) प्रश्न प्रत्यक्ष होने चाहिएँ; उद्धरणों के रूप में नहीं।

(३) प्रश्नों की संख्या अधिक होनी चाहिए।

(४) प्रत्येक प्रश्न के लिये अपेक्षित वर्णन की मात्रा कम की जानी चाहिए।

(५) वाञ्छित चर्चा के रूप को स्पष्टतः निर्दिष्ट किया जाना चाहिए।

(ख) *मापन की रीति के सम्बन्ध में सुझाव*

(१) परीक्षार्थी का नाम—परीक्षार्थी को अपना नाम उत्तरपत्रिका के शिखर पर लिखने के स्थान पर या तो पृष्ठभाग में लिखना चाहिए अथवा अन्त में। कुछ विचारकों का मत है कि परीक्षार्थियों को उत्तर-पत्रिकाओं पर कहीं भी अपने नाम नहीं लिखने चाहिएँ और नामों के स्थान पर क्रम संख्या का प्रयोग करना चाहिये।

❀ *"Both subjective and objective tests are natural forms. Both forms of sampling are necessary for complete educational measurement of all forms of learnings.*

—Book No 6, P. 15

(२) प्रश्न के अनुसार अङ्कन—आजकल उत्तरपत्रिका के अनुसार अङ्कन किया जाता है, अर्थात्, पहले एक उत्तरपत्रिका के समस्त प्रश्नों का अङ्कन कर लिया जाता है; तत्पश्चात् द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ इत्यादि का अङ्कन किया जाता है। प्रश्न के अनुसार अङ्कन करने का तात्पर्य यह है कि समस्त उत्तरपत्रिकाओं में पहले प्रथम प्रश्न का अङ्कन किया जाए; तत्पश्चात् द्वितीय, तृतीय, इत्यादि प्रश्नों का।

(३) उत्तर-सूची—अङ्कन से पूर्व उन उत्तरों की एक सूची तय्यार कर लेनी चाहिये जो परीक्षा के उद्देश्यों के लिये पर्याप्त समझे गये हों और प्रश्नों के प्रत्येक आवश्यक भाग के लिये एक विशिष्ट मूल्य अथवा अङ्क नियत कर लेना चाहिए।

(४) चट्टा लगाना (*Piling*)—जहाँ एक उत्तर के विशेष भागों के लिये बिन्दुओं की संख्या का निर्धारण करना असम्भव हो वहाँ परीक्षक को उस प्रश्न का अङ्कन अन्य उत्तरों के साथ तुलना द्वारा करना चाहिए और उत्तरों के लिये विशिष्ट अङ्क देने के लिये उत्तरपत्रिकाओं को उनकी तुलनात्मक अच्छाई के अनुसार चट्टों में रखना चाहिये। यदि अङ्कन से पूर्व समस्त उत्तरपत्रिकाओं के चट्टे लगा लिये जाएँ तो पहले अङ्कित उत्तरों का आने वाले उत्तरों पर प्रभाव नहीं पड़ेगा। वरनर मार्टिन सिम्स (*Verner Martin Sims*) का विचार है कि परीक्षक को उत्तरपत्रिकाएँ शीघ्रता से पढ़ कर अपने मत के आधार पर पाँच समूहों में विभाजित कर लेनी चाहिएँ : (i) अत्यन्त उत्तम (*Very Superior*), (ii) उत्तम (*Superior*), (iii) सामान्य (*Average*), (iv) घटिया (*Inferior*), (v) अत्यन्त घटिया (*Very Inferior*)।

(५) विशेष प्रशिक्षण—विभिन्न प्रकार की परीक्षाओं को देने तथा लेने के लिये परीक्षार्थियों को तय्यार करना शिक्षा का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है। अतः परीक्षार्थियों को यह बताया जाना चाहिए कि परीक्षाएँ किस प्रकार ली जाती हैं।

(६) प्रभावी कारकों (*Factors*) के बारे में नीति—सी० सी० रौस का विचार है कि पाठशाला को उन कारकों के बारे में एक निश्चित नीति निर्धारित करनी चाहिए जिन पर एक लिखित परीक्षा का अङ्कन करते समय विचार किया जाएगा अथवा नहीं किया जाएगा। केवल उन्हीं कारकों पर विचार किया जाना चाहिए जो उस मात्रा का साक्ष्य दें जिस तक छात्र ने उस विशेष पाठचर्या के लिये निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त किया है।

(ग) प्रयोग के सम्बन्ध में सुझाव

(१) निबन्ध परीक्षाओं का प्रयोग केवल उन कार्यों को मापने के लिये किया जाना चाहिए जिनके लिये वे अत्यन्त उपयुक्त हों।卐 निबन्ध परीक्षाएँ दो स्थितियों में विशेषतः मान्य होती हैं : (i) उस परिस्थिति में जहाँ शिक्षा का उद्देश्य छात्र को अपनी योग्यता की प्रभावशाली रूप से अभिव्यक्ति करने का अवसर देना हो, यथा हिन्दी-रचना अथवा पत्रकारिता में, तथा (ii) उस परिस्थिति में जहाँ शिक्षा का उद्देश्य

卐 *"It is just as important to know where to use the essay examination as it is to know how to use it. It is wise to restrict the use of the essay test to the measurement of those functions for which it is best adopted."*–

–Boo k No 9, P. 162

समालोचनात्मक अर्हापण (*Evaluation*) तथा सामग्री की राशियों को आत्मसात् एवं संघटित करना हो।

(२) जहाँ निबन्ध परीक्षा के प्रयोग के बारे में थोड़ा भी सन्देह हो वहाँ वैषयिक परीक्षा का प्रयोग किया जाना चाहिए, निबन्ध-परीक्षा का नहीं।❀

(घ) प्रभाव के सम्बन्ध में सुझाव

आजकल छात्रों पर निबन्ध परीक्षाओं का अवाञ्छनीय प्रभाव पड़ने का मुख्य कारण यह है कि वे उनके उद्देश्य तथा महत्व से परिचित नहीं होते। फलतः वे परीक्षा के नाम से ही भयभीत हो जाते हैं। अतः प्रत्येक छात्र को यह भली भाँति ज्ञात होना चाहिए कि वह परीक्षा क्यों ले रहा है।

(ङ) लेखन शैली के सम्बन्ध में सुझाव

अङ्कन से पूर्व परीक्षक को उन तथ्यों एवं विचारों की रूप-रेखा तय्यार कर लेनी चाहिए जिनकी वह परीक्षार्थियों से अपेक्षा रखता है। यदि वह प्रश्नों का अङ्कन हस्तलेख अथवा लेखन शैली की ओर ध्यान दिये बिना केवल उन तथ्यों एवं विचारों के प्रकाश में करेगा तो परीक्षार्थियों की साहित्यिक शैली अङ्कन को प्रभावित न कर सकेगी।

७—उपसंहार

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम इस निष्कर्ष तक पहुँचते हैं कि छात्रों की प्रगति के विभिन्न पक्षों का ठीक ठीक मूल्याङ्कन करने के लिये निबन्ध परीक्षाओं की उतनी ही

❀*"When it is not clear that the essay type is required for measuring the desired objective, use the objective test.*

--Book No 9, P. 167

आवश्यकता है जितनी नवीन परीक्षाओं की। परन्तु निबन्ध परीक्षाओं में सुधार की तुरन्त आवश्यकता है। भारत में अभी तक केवल निबन्ध परीक्षाओं का प्रयोग किया जाता है और वह भी उनके दोषों को दूर किये बिना। यहाँ नवीन परीक्षाओं का प्रयोग बहुत कम किया जाता है। एक प्रशिक्षण महाविद्यालय के व्याख्याता के रूप में यदि मैं यह कहूँ कि हमारे अधिकाँश प्रशिक्षित अध्यापक नवीन परीक्षाओं के रूप, निर्माण एवं महत्व से परिचित नहीं हैं तो अत्युक्ति न होगी। फलतः भारत की वर्तमान परीक्षा-प्रणाली भारतीय शिक्षा के लिये एक अभिशाप बनी हुई है। हमें सर्व प्रथम भारतीय शिक्षा-प्रणाली के इसी अङ्ग के सुधार की ओर ध्यान देना चाहिए।

तृतीय अध्याय

अच्छी परीक्षा के लक्षण

१—प्रस्तावना

परीक्षा का तात्पर्य उस साधन अथवा उपकरण (*Instrument*) से है जिसकी सहायता से छात्रों की प्रगति का माप किया जाता है, अर्थात्, यह ज्ञात किया जाता है कि छात्रों की योग्यताओं, गुणों, कौशलों, एवं सूचनाओं में कितनी वृद्धि हुई है। यदि मापन-साधन सदोष होगा तो परिणामी फल भी सदोष होंगे। अतः एक परीक्षा का चुनाव करते समय अध्यापकों को यह ध्यान रखना चाहिए कि वह निर्दोष हो और उसमें वाञ्छित एवं आवश्यक लक्षण अथवा विशेषताएँ विद्यमान हों। इसके अतिरिक्त; अध्यापकों को स्वयं भी अनेक परीक्षाओं का निर्माण करना होता है जिन्हें अध्यापक-निर्मित (*Teacher Made*) अथवा अनौपचारिक (*Imformal*) परीक्षाएँ कहते हैं। इन अध्यापक-निर्मित अथवा अनौपचारिक परीक्षाओं में भी वही लक्षण होने चाहिएँ जो प्रमापीकृत (*Standardized*) अथवा प्रमाप (*Standard*) परीक्षाओं में होते हैं। अतः यह प्रश्न उठता है कि वे लक्षण क्या हैं जो एक परीक्षा को एक "अच्छी परीक्षा" में परिणत करते हैं? प्रस्तुत अध्याय का उद्देश्य इसी प्रश्न का उत्तर देना है।

२—अच्छी परीक्षा के लक्षण

विभिन्न विचारकों के मतानुसार एक अच्छी परीक्षा में मुख्यतः पाँच लक्षण होते हैं जो निम्नलिखित हैं:—

(१) मान्यता (*Validity*)
(२) विश्वसनीयता (*Reliability*)
(३) वैषयिकता (*Objectivity*)
(४) प्रयोगात्मकता (*Usability*)
(५) शैक्षणिक सार्थकता (*Educational Significance*)

(१) मान्यता (Validity)

(क) मान्यता का अर्थ—परीक्षाओं के क्षेत्र में यदि कोई व्यक्ति मुझसे प्रश्न करे "मान्यता क्या है ?" और मैं उसे उत्तर दूँ "कुछ नहीं", तो मेरा उत्तर शत प्रति शत ठीक होगा। वास्तव में इस प्रश्न का रूप इस प्रकार होना चाहिए : "परीक्षा की मान्यता" से तुम क्या समझते हो ?' इसका मुख्य कारण यह है कि स्वभाव से मान्यता में विशिष्टता (*Specificity*) होती है, सामान्यता (*Generality*) नहीं, पराश्रितता होती है, स्वतन्त्रता नहीं। मान्यता सदैव किसी वस्तुस्थिति के सम्बन्ध में होती है। कोई परीक्षा अपने लिये नहीं अपितु किसी अन्य वस्तु के लिये मान्य होती है।卐 हम शब्दों की मितव्ययिता के दृष्टिकोण से ही "परीक्षा की मान्यता" के स्थान पर केवल "मान्यता" शब्द का प्रयोग करके काम चला

卐 *"Validity is always specific, in relation to some definite situation. A test is not just valid; it is valid for something. There is no such thing as general validity."*

--Book No. 9, P. 66

लेते हैं। परीक्षा की मान्यता का आधार परीक्षा होती है; परीक्षा की मान्यता परीक्षा पर निर्भर रहती है।

सामान्यतः शिक्षा का अर्थ है, "छात्र के गुणों, योग्यताओं, कौशलों, तथा सूचनाओं की प्रगति" और परीक्षा का अर्थ है, "वह मापन-साधन (*Measuring Instrument*) जिसकी सहायता से इन गुणों, योग्यताओं, कौशलों तथा सूचनाओं की प्रगति को मापा जाता है।" मान्यता का अर्थ है, "वह मात्रा अथवा विस्तार (*Extent*) जिस तक एक परीक्षा एक बालक के उस गुण, योग्यता, कौशल, अथवा सूचना को मापती है जिसे वह मापना चाहती है। इसी बात को विभिन्न विचारकों ने विभिन्न प्रकार से व्यक्त किया है। चार्टर वी० गुड के मतानुसार मान्यता "वह सीमा अथवा विस्तार है जिस तक एक परीक्षा उसे मापती है जिसे वह मापना चाहती है।"卐 ग्रीन के शब्दों में मान्यता "उस मात्रा की एक अभिव्यक्ति का नाम है जिस तक एक परीक्षा उन गुणों, योग्यताओं, कौशलों तथा सूचनाओं को मापती है जिन्हें मापने के लिये वह वाञ्छित होती है।"❀ रिन्जलैण्ड के मतानुसार मान्यता "एक

卐 VALIDITY : *(2) (meas.) the extent to which a test or other measuring device measures what it purports to measure; the extent to which the scores obtained from a test or measuring scale can be used for prediction;......*

—Book No. 2, P. 442

❀ *"Validity may be defined more specifically as an expression of the degree to which a test measures the qualities, abilities, skills, and informations which it is designed and supposed to measure"* *—Book No. 10, P. 73.*

मापन-साधन की उसे मापने वाला गुण होती है जिसे वह मापना चाहती है" ।卐 रौस ने मान्यता को "सत्यता (*Truth-fulness*)" बतलाया है ।❀ बिनघम ने एक परीक्षा की मान्यता को "अङ्कों (*Scores*) तथा मानदण्ड (*Criterion*) के बीच सम्मेल की समीपता" कहा है ।卐卐

परीक्षा छात्र के समक्ष एक परिस्थिति उत्पन्न कर देती है जिसे परीक्षण परिस्थिति (*Test Situation*) कहते हैं। परीक्षण परिस्थिति जीवन की वास्तविक परिस्थिति (*Real situation*) का ही एक भाग होती है। परीक्षण परिस्थिति जीवन की वास्तविक परिस्थिति को जितना अधिक प्रतिबिम्बित करती है वह एक माप के रूप में उतनी ही अधिक मान्य होती है।❀❀ परीक्षण परिस्थिति अपने समाधान के लिये परीक्षार्थी के गुणों, योग्यताओं, कौशलों, तथा सूचनाओं का आह्वान करती है। वह जिस मात्रा तक

卐 *"Validity is often defined as the property of measuring instrument to measure what it purports to measure".*
-*Book No. 6, P. 13*

❀ *"In a word, validity means truthfulness".*
-*Book No. 9, P. 65*

卐卐 *"The validity of a test is the closeness of agreement between the scores and some other objective measure of that which the test is used to measure. This other measure is called the criterion".* -*Book No 11, P, 214*

❀❀ *"The more nearly the test situation reflects the actual situation in life the more valid it becomes as a measure".* *Book No. 10, P.75.*

उनका आह्वान करती है उसी मात्रा तक मान्य कही जा सकती है। मान्यता के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि एक परीक्षा ने किस वस्तु की किस मात्रा तक माप की है। मान्यता की दृष्टि से एक अच्छी परीक्षा की यह विशेषता होती है कि वह केवल उसी गुण, योग्यता, कौशल अथवा सूचना को मापती है जिसे मापने के लिये वह अभिप्रेत होती है, अन्य को नहीं। उदाहरणार्थ, यदि एक हिन्दी रचना को दिये जाने वाले अङ्क परीक्षार्थी के हस्तलेख से प्रभावित हो जाएँ तो वे अङ्क मान्य नहीं कहे जा सकते। इसी प्रकार यदि हम यह ज्ञात करना चाहें कि एक गणित-तर्क-परीक्षा मान्य है अथवा नहीं, तो यह उस मात्रा पर निर्भर रहेगा जिस तक वह परीक्षा "गणित में तर्क" की योग्यता को मापे, पठन योग्यता अथवा सामान्य बुद्धि को नहीं। वास्तव में मान्यता उस उस वस्तु की शुद्धता का एक माप होती है जिसे हम मापना चाहते हैं।卐

प्रत्यक्ष अवधारणा (*Conception*) के आधार पर मान्यता पूर्ण मान्यता (*Absolute Validity*) हो सकती है, परन्तु प्रमापीकृत अथवा अनौपचारिक परीक्षाओं में पूर्ण मान्यता सदैव सम्भव नहीं होती। पूर्ण मान्यता का एक उदाहरण लीजिए। मान लीजिए हमें युद्धकाल के लिये ऐसे वहित्र-चालकों (*Motor Drivers*) का चुनाव करने के लिये परीक्षाओं का निर्माण करना है जो अंधेरे में एक स्फोट-ग्रस्त (*Shell-Ridden*) क्षेत्र में प्रदाय (*Supply*) ले जा सकें। यदि हम परीक्षा के रूप में चालकों से कहें कि वे रात्रि के अंधेरे में प्रकाश किये बिना एक स्फोट-ग्रस्त क्षेत्र में वहित्र

卐 *"Validity is a measure of the purity of the thing one intends to measure."* —*Book No. 6, P. 14*

(*Motor*) चला कर दिखलाएँ तो इस प्रकार उनके सम्मुख जो परीक्षण परिस्थिति उत्पन्न होगी वह एक वास्तविक जीवन परिस्थिति होगी और ऐसी स्थिति में परीक्षा की मान्यता पूर्ण मान्यता होगी। अन्य शब्दों में परीक्षा की मान्यता की पूर्णता अथवा अपूर्णता परीक्षण परिस्थिति के जीवन परिस्थिति से पूर्णतः अथवा अपूर्णतः एकरूप होने पर निर्भर रहती है।

(ख) मान्यता एवं मानदण्ड (*Criterion*)—मान्यता की परिभाषा करना तो सुगम है परन्तु उसे मनोवैज्ञानिक अथवा सांख्यिकीय रूप में सिद्ध करना अत्यन्त कठिन होता है। वास्तविक कठिनाई एक ऐसा मानदण्ड प्राप्त करने में होती है जो दक्ष निर्णायकों द्वारा स्वीकृत हो। मान्यता प्रायः शिक्षा के दर्शन अथवा उद्देश्यों पर निर्भर रहती है।

(ग) मान्यता के प्रकार—मान्यता तीन प्रकार की होती है: (i) पाठ्यक्रम मान्यता, (ii) मनोवैज्ञानिक मान्यता, तथा (iii) सांख्यिकीय (*Statistical*) मान्यता।

(i) पाठ्यक्रम मान्यता एक परीक्षा के उन तत्वों को चुन कर स्थापित की जाती है जो महत्वपूर्ण तथा उन व्यक्तियों द्वारा अध्ययन किये गये पाठ्यक्रम से पर्याप्त रूप में न्यादर्शित (*Sampled*) होते हैं जिन्हें परीक्षा मापना चाहती है। एक अध्यापक को एक मान्य परीक्षा का निर्माण करते समय उस प्रत्येक वस्तु का न्यादर्शन करना चाहिए जो पाठ्यक्रम के अन्तर्गत हो। इसमें पाठ्यपुस्तकों, निर्देश-सामग्री, सूचनाओं तथा श्रेणी द्वारा भागित प्रत्येक कार्य का समावेश होगा। यदि एक परीक्षा का निर्माण अध्यापकों का एक समूह करे तो उन्हें उन तत्वों का न्यादर्श करना चाहिए जिन्हें समस्त अध्यापक पढ़ा

चुके हों। एक राष्ट्र भर में प्रयुक्त सामग्रियों की मान्यता के लिये अध्यापकों को प्रथा एवं व्यवहार के व्यापक आपरीक्षण करने चाहिएँ। अध्यापकों को उन तत्वों का न्यादर्श समुचित रूप से करना चाहिए जिन्हें वे पढ़ाते हैं।

(ii) मनोवैज्ञानिक मान्यता उन प्रत्युत्तरों की मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति का एक माप होती है जो परीक्षा देते समय छात्रों द्वारा दिये जाते हैं। यदि प्रत्युत्तर ठीक ठीक वह नहीं हैं जो अध्यापक मापना चाहता है, तो वह परीक्षा उस मात्रा तक अमान्य होगी। यदि किसी विषय के माप में हस्तलेख के गुण का प्रवेश हो जाता है तो हस्तलेख के तत्व उसी मात्रा तक परीक्षा को अमान्य बना देते हैं।

(iii) सांख्यिकीय मान्यता एक मानदण्ड के साथ एक परीक्षा के सहसम्बन्ध द्वारा व्यक्त की जाती है। ऐसी स्थिति में सर्वाधिक कठिनाई एक विश्वसनीय एवं स्वीकार्य मानदण्ड का चुनाव करने में होती है। कभी हम एक परीक्षा को उसी क्षेत्र की मान्य एवं विश्वसनीय परीक्षाओं के साथ सहसम्बन्धित करते हैं, कभी अध्यापकों का संगृहीत मत अथवा पाठशाला के अङ्क मानदण्ड होते हैं परन्तु उत्तरोक्त स्थिति में सहसम्बन्ध अङ्कों की परिशुद्धता पर निर्भर रहता है। यदि सहसम्बन्ध उच्च है तो परीक्षा भी अत्यन्त मान्य होगी। सांख्यिकीय दृष्टिकोण से बुद्धि, विशेष योग्यताओं, अभिवृत्तियों (*Attitudes*) व्यक्तित्व, चरित्र तथा नागरिकता की मान्यता स्थापित करना बड़ा कठिन कार्य होता है। मान्यता स्थापित करने के अनेक मार्ग होते हैं जो विषयवस्तु की प्रकृति पर निर्भर रहते हैं।

(घ) मान्यता का महत्व—यदि अध्यापक मान्य एवं शुद्ध

परीक्षाओं का निर्माण करना आरम्भ कर दें, तो वे छात्रों की कठिनाइयों का निदान भली भांति कर सकेंगे और यह ठीक ठीक ज्ञात कर सकेंगे कि छात्रों ने क्या सीखा है, क्या नहीं, अथवा जो कुछ सीखा है वह किस मात्रा तक सीखा है। इस प्रकार की परीक्षाओं द्वारा अध्यापक छात्रों की बड़ी सहायता कर सकते हैं। यही नहीं, मान्य परीक्षाओं की सहायता से छात्र परीक्षाओं के वास्तविक उद्देश्यों को समझने लगेंगे। तब वे परीक्षाओं से भयभीत होने के स्थान पर उनका अधिमूल्यन (*Appreciation*) करेंगे।

(२) *विश्वसनीयता* (*Reliability*)

(क) विश्वसनीयता की परिभाषा—आचार्य मिश्र ने एक श्रेणी के छात्रों को वही परीक्षा दो बार दी। दोनों परीक्षाओं में पाँच छात्रों ने निम्नलिखित अङ्क प्राप्त किये :—

छात्र	अङ्क प्रथम दिवस	अङ्क द्वितीय दिवस
१—ओ३म	९७ (उच्चतम)	४९ (निम्नतम)
२—विष्णु	८४	७२
३—राम	७८	५९
४—कृष्ण	७०	६०
५—प्रेम	४१ (निम्नतम)	७३ (उच्चतम)

इन परिणामों को देख कर आचार्य जी बड़े विक्षुब्ध हुए। वह छात्रों की प्रगति का क्रमस्थापन किन अङ्कों के आधार पर करें, प्रथम अथवा द्वितीय ? ऐसा क्यों हुआ ? स्पष्ट है कि इस प्रश्न का एक ही उत्तर होगा, "परीक्षा में दोष होने के कारण।" पारिभाषिक शब्दों में, परीक्षा अविश्वसनीय थी, असङ्गत (*Inconsistent*) थी। अन्य शब्दों में परीक्षा में विश्वसनीयता का

अभाव था। विश्वसनीय होने के लिये उस परीक्षा के उत्तरोत्तर प्रयोगों को वही अङ्क प्रदान करने चाहिए थे जो उसके प्रथम प्रयोग से प्राप्त हुए थे। अब यह प्रश्न उठता है कि विश्वसनीयता क्या है? थौर्नडाइक के मतानुसार विश्वसनीयता शब्द का प्रयोग दो भावों में किया जा सकता है: (i) सामान्य भाव, तथा (ii) विशिष्ट भाव। सामान्य भाषण में विश्वसनीयता का अर्थ होता है निर्भरता।卐 विशिष्ट भाव में विश्वसनीयता का प्रयोग दो अर्थों में किया जाता है: (क) संख्याति (*Statistic*) की विश्वसनीयता, तथा (ख) मापन की विश्वसनीयता। संख्याति की विश्वसनीयता उस पर्याप्तता को निर्दिष्ट करती है जिसके साथ एक सीमित न्यादर्श (*Sample*) से सङ्गणित (*Computed*) एक संख्याति विषयों के उस सम्पूर्ण विश्व का प्रतिनिधित्व करती है जिसमें से वह न्यादर्श खींचा गया था।❀ मापन की विश्वसनीयता एक मापन-प्रक्रिया की सुतथ्यता से सम्बन्धित होती है।† जे० आर० सी० (*J. R. C.*), तथा सी० सी० पी० (*C. C. P.*) के शब्दों में 'विश्वसनीयता

卐 *"Reliability is used in general speech to mean dependability. A reliable individual is one who can be counted on, one who can be depended upon to do or be what he undertakes to do or be".* –*Book No 1. P. 1016*

❀ *"The raliability of a statistic refers to the adequacy with which a statistic computed form a limited sample represents the whole universe of cases from which the sample was drawn."* *Book No. 1, P. 1016*

† *"The reliability of measurement······has to do with the precision of a measerement procedure. Book No 1, P. 1016*

उस समनुरूपता अथवा विभेद की मात्रा से सम्बद्ध होती है जो "प्राप्त" एवं "यथार्थ" परिणामों के बीच होती है"।卐 रौस के मतानुसार "विश्वसनीयता का अर्थ सङ्गति होता है"।❀ रिन्जलैण्ड के मतानुसार "विश्वसनीयता उस श्रद्धा (*Faith*) को निर्दिष्ट करती है जो एक परीक्षा में स्थापित की जा सकती है"।卐卐 थौमस के शब्दों में "विश्वसनीयता एक परीक्षा में सङ्गति का चिह्न होती है"।❀❀ ग्रीन तथा जौर्जेन्सन के मतानुसार "यह परीक्षा अङ्कों में चल विभ्रमों (*Variable Errors*) का एक माप होती है"।‡

(ख) विश्वसनीयता एवं मान्यता--अनुक्रम की दृष्टि से एक अच्छी परीक्षा की विशेषताओं में मान्यता का प्रथम स्थान होता है, विश्वसनीयता का द्वितीय, तथा वैषयिकता (*Objectivity*) का तृतीय। प्रायः विश्वसनीयता एवं मान्यता शब्दों को मिला दिया जाता है और उनका समान अर्थ किया

卐 *"Reliability is concerned with the degree of conformance or divergence which exists between the "obtained" and the "true" results".* *Book No 4, P, 673*

❀ *"In a word, reliability means consistency."* *Book No 9, P. 83*

卐卐 *"Reliability refers to the faith that may be placed in a test".* *Book No 6, P. 302*

❀❀ *"This trait of consistency in a test is termed reliability".* *Book No. 13 P. 78*

‡ *"In other words, it is a measure of the variable errors in the test scores".* *Book No. 10, P. 93*

जाता है। परन्तु उनमें स्पष्ट प्रभेद होता है। विश्वसनीयता का मापन की सत्यता (*Truthfulness*) से कोई सम्बन्ध नहीं होता और वह मापन की सङ्गति (*Consistency*) से सम्बद्ध होती है, परन्तु मान्यता का सम्बन्ध मापन की सत्यता से होता है जा सङ्गति से सर्वथा पृथक् एक वस्तु होती है। मान्यता एक परीक्षा की सत्यता की मात्रा को निर्दिष्ट करती है; विश्वसनीयता उसकी सङ्गति की मात्रा को। विश्वसनीयता एवं न्यादर्शन (*Sampling*) में निकट सम्बन्ध होता है, अतः निबन्ध परीक्षाओं का सङ्कीर्ण न्यादर्श उनकी विश्वसनीयता को सीमित कर देता है। अपर्याप्त विश्वसनीयता उन अनेक कारकों (*Factors*) में से एक महत्वपूर्ण कारक होती है जो परीक्षाओं की मान्यता को अत्यन्त कम कर सकते हैं।

(ग) अङ्क-विचरण (*Variation*) के कारण : अविश्वसनीयता के स्रोत : विश्वसनीयता को प्रभावित करने वाले कारक (*Factors*)—मैकौल (*Mecall*) के मतानुसार एक परीक्षा की अविश्वसनीयता के निम्नलिखित तीन स्रोत होते हैं:—

(१) परीक्षक के व्यवहार में परीक्षा-बाह्य कारणों द्वारा उत्पन्न विचरण, यथा एक झगड़ालू छात्र, अध्यापक की एक मधुर मुसकान, एक दुष्पाच्य मध्याह्नभोजन, संयोग (*Chance*), इत्यादि।

(२) परीक्षक के व्यवहार में स्वयं परीक्षा में अन्तर्निहित कारणों द्वारा उत्पन्न विचरण, यथा अङ्कन की रीति, परिणामों का सांख्यिकीय प्रतिपादन, अपर्याप्त वर्णन, एक परीक्षा-प्रश्न के महत्व अथवा उसके उत्तर की शुद्धता के बारे में मतभेद, तथा कार्यों के विशिष्ट न्यादर्श (*Sample*) में विचरण।

(३) स्वयं छात्रों में विचरण, जो वहित्र-शृङ्ग (*Automobile*

Horn), सन्तरण-तडाग (*Swimming Pool*), एक विकृत स्थिति की असुविधा, समय की लम्बाई, इत्यादि के सहसा स्मरण के कारण हो सकता है। थौर्नडाइक के मतानुसार स्वयं छात्रों में विचरण उनके स्वास्थ्य, शारीरिक दशा, भाव, अभिरोचन (*Motivation*), सतर्कता, प्रयत्न, अथवा दक्षता में परिवर्तन के कारण होता है।

(घ) परीक्षा की विश्वसनीयता निर्धारित करने की रीतियाँ : परीक्षाओं की विश्वसनीयता पर प्रभाव डालने वाले स्थिर विभ्रमों (*Constant Errors*), कारणों अथवा शक्तियों को हटाने की रीतियाँ--थौमस (*Thomas*) के मतानुसार एक परीक्षा की विश्वसनीयता तीन रीतियों से निर्धारित की जा सकती है : (१) परीक्षण-पुनर्परीक्षण रीति (*The Test-Retest Method*), (२) वैकल्पिक-रूप रीति (*The Alternate-Form Metod*), तथा (३) अर्ध पृथक्करण रीति (*The Split-Half Method*)। थौर्नडाइक ने एक और प्रक्रिया का उल्लेख किया है जिसे पद-सङ्गति-विश्लेषण रीति (*The Analysis of Item Consistency Method*) का नाम दिया है। मैकौल के मतानुसार संपरीक्षात्मक-छूट रीति (*The Experimental-Allowance Method*), तथा स्वयं-शोधन रीति *The Self-Correction Method*) भी एक परीक्षा की विश्वसनीयता पर प्रभाव डालने वाले स्थिर कारणों को हटाने के लिये महत्वपूर्ण रीतियों में से हैं। नीचे इन रीतियों का संक्षिप्त रूप में वर्णन किया जाएगा।

(१) परीक्षण-पुनर्परीक्षण रीति के अनुसार पहले एक परीक्षा एक समूह को दी जाती है और कुछ समय पश्चात् वही परीक्षा

पुनः उसी समूह को दी जाती है। तत्पश्चात् दोनों अङ्कों का सह-सम्बन्ध ज्ञात कर लिया जाता है। इसी रीति का मुख्य दोष यह है कि यदि पुनर्परीक्षण प्रथम परीक्षण के पश्चात् अत्यन्त अल्प समय में दे किया जाता है तो छात्र परीक्षा का सामना एक नवीन अनुभव के रूप में नहीं करते क्योंकि वे अल्प समय में प्रथम परीक्षा के पदों को भूल नहीं पाते। फलतः परीक्षा में सम्यक् से अधिक विश्वसनीयता प्रतीत हो सकती है। और यदि पुनर्परीक्षण कई मास पश्चात् दिया जाए, तो प्रौढ़ता में वृद्धि होने के कारण छात्र अन्तरवधि में बहुत कुछ सीख लेते हैं जिसके कारण परीक्षा में सम्यक् से कम विश्वसनीयता प्रतीत होने लगती है। इसके अतिरिक्त यह रीति पदों के न्यादर्श (*Sample of Items*) से उत्पन्न होने वाले विचरण (*variation*) की उपेक्षा करती है। अतः यह एक संदिग्ध रीति होती है। जब पदों के न्यादर्श से सम्बन्ध न हो और जब द्वितीय परीक्षण पर प्रथम परीक्षण का अल्प प्रभाव पड़ने की सम्भावना हो तब यह रीति एक उपयोगी रूप में प्रयुक्त की जा सकती है। मैकौल ने इस रीति के लिये अनुकूलतम-अन्तराल रीति (*The Optimum-Interval Method*) तथा द्वितीय-परीक्षण रीति (*The Duplicate Test Method*) शब्दों का प्रयोग किया है।

(२) वैकल्पिक-रूप रीति एक ही परीक्षा के दो रूपों द्वारा निर्मित होती है। एक रूप के प्रश्न दूसरे रूप के प्रश्नों के समरूप होते हैं क्योंकि दोनों रूपों का निर्माण छात्र के व्यवहार अथवा ज्ञान के उसी क्षेत्र का न्यादर्श करने के लिये किया जाता है। यद्यपि दोनों रूपों के प्रश्न समरूप (*Similar*) होते

हैं, परन्तु वे एकसम (*Indentical*) नहीं होते। अतः छात्र प्रथम रूप के उत्तरों को स्मरण करके द्वितीय रूप में उनकी सहायता नहीं ले सकते। इस रीति का मुख्य दोष यह है कि दो ऐसी असम परीक्षाओं का निर्माण करना एक अत्यन्त कठिन कार्य होता है जो एकसम परिणाम प्रदान करें।

(३) अर्ध-पृथक्करण रीति की स्थिति में छात्रों को केवल एक ही परीक्षा दी जाती है। परीक्षा-निर्माता परीक्षा के प्रथम अर्धभाग के अङ्कों की उसके द्वितीय अर्धभाग के अङ्कों के साथ तुलना करके उनकी सङ्गति का निर्णय करता है। प्रश्नों की संख्या कम होने पर यह रीति अत्यन्त संदिग्ध हो जाती है।

(४) पद-सङ्गति-विश्लेषण रीति दिन-प्रति-दिन के विचरणों (*Variations*) की व्याख्या नहीं करती। वह वेग परीक्षाओं (*Speed Tests*) के पर्याप्त प्रतिपादन के लिये उपबन्ध नहीं करती। वह यह मान लेती है कि परीक्षा के समस्त पद समान कार्य अथवा कार्यों के सञ्चय को माप रहे हैं। इस रीति की मुख्य विशेषता यह है कि यह पद से पद तक निष्पादन (*Performance*) की सङ्गति के बारे में समस्त सूचना का उपयोग करती है।

(५) संपरीक्षात्मक-छूट रीति के अनुसार एक तुलनीय समूह (*Comparable Group*) का प्रयोग किया जाता है और एक दिये गये समयान्तराल तक समस्त स्थिर विभ्रमों (*Errors*), शक्तियों अथवा कारणों के प्रभाव को अनुमत कर दिया जाता है।

(६) स्वयं-शोधन रीति के अनुसार उन्हीं छात्रों को दी गयी समान अथवा द्वितीय परीक्षाओं के दो प्रबन्धों से प्राप्त अङ्कों

एकसम अङ्क दे तब उसे पूर्णतः विश्वसनीय परीक्षा कहा जाएगा। विश्वसनीयता के अभाव में परीक्षा को दरिद्र ही कहा जाएगा। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि विश्वसनीयता एक परीक्षा को एक अच्छी परीक्षा बना ही देती है।卐 अन्ततः मान्यता की तुलना में विश्वसनीयता का स्थान द्वितीय ही तो होता है और अतः मान्यता एक परीक्षा का वह लक्षण हो जाती है जिसे एक परीक्षा को एक अच्छी परीक्षा में परिणत करने के लिये सदैव विश्वसनीयता से पूर्व प्राप्त करना होता है। वस्तुतः विश्वसनीयता मान्यता का एक मूल्यवान सहायक होती है। वह पूर्णतः एक सांख्यिकीय भाव होती है।

(३) वैषयिकता (Objectivity)

(क) वैषयिकता का अर्थ—इस पुस्तक के लेखक ने एक बार एक माध्यमिक विद्यालय की दसवीं श्रेणी के सर्वोत्तम छात्र को बुला कर हिन्दी की एक निबन्ध-पुस्तक से एक निबन्ध उतारने के लिये कहा। तत्पश्चात् उसी छात्र से उसी लेखनी तथा मसी (*Ink*) द्वारा समान पत्रों (*Papers*) पर उसी निबन्ध की चार प्रतिलिपियाँ करायीं। उसे विशेष रूप से यह अनुदेश (*Instruction*) दिया गया कि उसके हस्तलेख, प्रबन्ध इत्यादि में अन्तर न आने पाये। पाँचों उत्तरपत्रिकाओं को नगर की विभिन्न पाठशालाओं के पाँच हिन्दी-अध्यापकों के पास अङ्कन के लिये भेज दिया गया। ऐसा करते समय विशेषतः यह ध्यान रखा गया कि वे अध्यापक दसवीं श्रेणी के

卐 *"Although high reliability is no guarantee that the test is good, low reliability does indicate that it is poor".*

—Book No 9, P. 83

छात्रों को हिन्दी अवश्य पढ़ाते हों। उन्होंने जो अङ्क प्रदान किये उनका विवरण निम्नलिखित है :

प्रथम उत्तरपत्रिका .	७६ [वरेण्यता (*Distinction*)]
द्वितीय उत्तरपत्रिका	६५ [प्रथम संभाग (*Division*)]
तृतीय उत्तरपत्रिका	५७ [द्वितीय संभाग]
चतुर्थ उत्तरपत्रिका	४६ [द्वितीय संभाग]
पञ्चम उत्तरपत्रिका	४० [तृतीय संभाग]

मुझे विश्वास है कि इन परिणामों को देख कर आपके मस्तिष्क में यह प्रश्न उठ रहा होगा कि ऐसा क्यों हुआ ? आपके इस प्रश्न का केवल एक ही उत्तर हो सकता है— "परीक्षा-दोष के कारण"। पारिभाषिक शब्दों में परीक्षा के इस दोष को अवैषयिकता (*Inobjectivity*) कहा जाएगा। स्पष्ट है कि वह परीक्षा एक अच्छी परीक्षा नहीं कही जा सकती। एक अच्छी परीक्षा होने के लिये उसमें वैषयिकता होनी चाहिए थी, अर्थात्, उसमें वह गुण होना चाहिए था कि असंख्य दक्ष परीक्षकों द्वारा अङ्कन किये जाने पर भी उसके परिणामों में अन्तर न होता।卐 उपर्युक्त परीक्षा का अङ्कन अवैयक्तिक, तथ्यीय साक्ष्य की अपेक्षा वैयक्तिक तत्वों (वैयक्तिक निर्णय, मत, पक्षपात, इत्यादि) से अधिक प्रभावित है। सी० वी गुड के मतानुसार वैषयिकता "इस प्रकार से निर्मित एक परीक्षा का एक सहजगुण होती है कि भिन्न परन्तु समान रूप से दक्ष अङ्ककों द्वारा एकसम अथवा अत्यन्त निकट रूप से

卐 *"A perfectly objective measuring instrument must yield the same measurements or scores in the hands of all competent people."* --*Book No 6, P. 2*

समान अङ्क दिये जाएँगे, तथा जिसके अङ्कन में दिये गये अङ्क अङ्कक के निर्णय, वैयक्तिक मत, झुकाव, इत्यादि द्वारा प्रभावित न होंगे।"❀ सी० सी० रौस के शब्दों में "एक मापन-साधन में वैषयिकता का अर्थ वह मात्रा है जिस तक समान रूप से दक्ष उपयोगकर्ता समान परिणाम प्राप्त करते हैं।"† न्यूकिर्क तथा ग्रीन ने वैषयिकता को "उस रूप का एक कार्य कहा है जिसमें परीक्षा के पद कहे जाते हैं।"卐 ग्रीन, जौर्जेन्सन तथा जरबैरिक के शब्दों में "वैषयिकता उस मात्रा को निर्दिष्ट करती है जिस तक परीक्षा के परिणाम उपयोगकर्ताओं के वैयक्तिक निर्णय द्वारा प्रभावित किये जाते हैं।"❀❀

❀ *"Objectivity :.........; (2) an attribute of test so constructed that identical or very closely similar scores would be assigned by different but equally competent scorers (as in the case of a test for which answers may be unequivocally right or wrong), and in the scoring of which the scores assigned would not be affected by the judgment, personal opinion, bias, etc., of the scorer......"*

--Book No 2, P. 278

† *"By objectivity in a measuring instrument is meant the degree to which equally competent users get the same results.* *-Book No 9, P. 88*

卐 *"Objectivity is a function of the form in which the test items are stated".* *--Book No 16, P. 37*

❀❀ *"Objectivity refers to the extent to which the test results are affected by the personal judgment of the users.*

--Book No 14, P. 4

(ख) मान्यता, विश्वसनीयता तथा वैषयिकता—वैषयिकता एक परीक्षा का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण गुण होती है क्योंकि वह अप्रत्यक्षतः मान्यता तथा विश्वसनीयता दोनों को अंशदान करती है। मान्यता एवं विश्वसनीयता की भांति वैषयिकता भी सहसम्बन्ध-गुणक (*Coefficient of Correlation*) द्वारा व्यक्त की जा सकती है और वह भी एक मात्रा की वस्तु होती है। सांख्यिकीय रूप से वैषयिकता को उसी व्यक्ति द्वारा विभिन्न समयों पर विभिन्न उत्तरपत्रों को दिये गये अङ्कों के बीच तदनुरूपता (*Correspondence*) की मात्रा के शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है। क्रम की दृष्टि से वैषयिकता का स्थान मान्यता तथा विश्वसनीयता के पश्चात् आता है। यद्यपि इन तीनों भावों से तीन पृथक् वस्तुओं का बोध होता है, तीनों में एक अभिन्न सम्बन्ध होता है। एक परीक्षा मान्यता के अभाव में विश्वसनीय हो सकती है परन्तु विश्वसनीयता के अभाव में मान्य नहीं हो सकती। वास्तव में विश्वसनीयता मान्यता का एक पक्ष (*Aspect*) होती है卐 और वैषयिकता विश्वसनीयता का एक पक्ष।❀

(ग) वैषयिक प्रश्नों के रूप—वैषयिक प्रश्नों, पदों अथवा अभ्यासों के रूपों का प्रश्न एक विवाद-ग्रस्त प्रश्न है। उनकी विस्तृत चर्चा अन्यत्र की गयी है, अतः वैषयिकता के अर्थ के प्रसङ्ग में यहाँ केवल यह समझ लेना पर्याप्त होगा कि प्रत्या-

---

卐 *"Therefore, reliability is really an aspect or phase of validity".* *-Book No 14, P. 72*

❀ *"Reliability, in turn, has two aspects, adequacy and objectivity".* *-Book No 14, P. 73*

स्मरण पद (*Recall Items*), पूर्ति पद (*Completion Items*), एकान्तर-प्रत्युत्तर पद (*Alternate-Response Items*), बहु-वरण पद (*Multi-Choice Items*), संवादी पद (*Matching Items*), इत्यादि मुख्य वैषयिक प्रश्नों के उदाहरण हैं। इनमें से अनेक पदों के अनेक उपभेद भी होते हैं।

(घ) वैषयिक परीक्षा—एक अच्छी परीक्षा में वैषयिकता का होना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि यह उस व्यक्ति के मत को हटा देती है जो परीक्षा का अङ्कन करता है। सामान्यतः वैषयिक परीक्षा प्रश्न इस प्रकार से कहे जाते हैं कि कथन की अपेक्षाओं को केवल एक ही उत्तर सन्तुष्ट कर सकता है।卐 परन्तु "पूर्णतः वैषयिक माप" नाम की कोई वस्तु नहीं होती। सत्य तो यह है कि वैषयिकता सदैव सापेक्ष (*Relative*) होती है; वह कभी निरपेक्ष (*Absolute*) नहीं हो सकती। विभिन्न व्यक्ति सर्वथा संमत नहीं होते, केवल निकटतम तक संमत होते हैं। अतः वैषयिकता पर अत्यधिक बल देना समुचित नहीं है क्योंकि इससे मापन का विस्तार अनावश्यक रूप से कम होता है। तथापि, हमें मान्यता को त्याग किये बिना परीक्षाओं को यथा-शक्य वैषयिक अवश्य बनाना चाहिए।

(४) प्रयोगात्मकता (*Usability*)

(क) प्रयोगात्मकता का अर्थ—सी०सी० रौस ने प्रयोगात्मकता की परिभाषा इस प्रकार की है: "इसका अर्थ होता है वह मात्रा जिस तक परीक्षा अथवा अन्य साधन समय तथा ऊर्जा

卐 *"Only one answer is right; and any item, if answered at all, must be either right or wrong".*

–Book No 15, P. 112

के एक अनावश्यक व्यय के बिना श्रेणी-अध्यापकों तथा पाठशाला-प्रबन्धकों द्वारा सफलतापूर्वक प्रयुक्त किया जा सकता है—एक शब्द में, प्रयोगात्मकता का अर्थ है व्यावहारिकता❋।"

(ख) प्रयोगात्मक परीक्षा की विशेषताएँ—एक प्रयोगात्मक परीक्षा में मुख्यतः पांच विशेषताएँ होती हैं : (i) प्रबन्धात्मकता (*Administrability*) अर्थात्, उसमें परीक्षा देने तथा अङ्कन करने के लिये दिये गये अनुदेश (*Instructions*) जटिल नहीं होते, और निदेश (*Directions*) स्पष्ट तथा पूर्ण होते हैं; (ii) अङ्कनात्मकता (*Scorability*), अर्थात्, उसमें वैषयिकता होती है तथा अङ्कन के लिये पर्याप्त कुञ्जियाँ एवं पूर्ण निदेश होते हैं; (iii) निर्वचनात्मकता एवं प्रयोज्यता (*Interpreta-(bility and Applicability*), अर्थात्, उसके साथ एक पर्याप्त नियमावलि (*Manual*) होती है जिसमें निर्वचन को सुविधाजनक बनाने के सामान्यकों (*Norms*) का समावेश होता है; (iv) मितव्ययिता, अर्थात्, उसकी लागत कम होती है, तथा (v) समुचित यान्त्रिक रचना (*Proper Mechanical Make-Up*), अर्थात्, वह उस श्रेणी-स्तर के उपयुक्त परिणाम के मुद्र (*Type*) में मुद्रित होती है जिसके लिये वह अभिप्रेत होती है। निम्न श्रेणियों में चित्रों एवं उदाहरणों (*Illustrations*) के गुण की ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।

❋ *"By this is meant the degree to which the test or other instrument can be successfully employed by class-room teachers and school administrators without an undue expenditure of time and energy--in a word, usability means practicability".* *--Book No 9, P. 90*

(५) शैक्षणिक सार्थकता (Educational Significance)

एक अच्छी परीक्षा में मान्यता, विश्वसनीयता, वैषयिकता तथा प्रयोगात्मकता के साथ शैक्षणिक सार्थकता का होना अत्यन्त आवश्यक है। शैक्षणिक सार्थकता का अर्थ होता है कि परीक्षा को एक विशेष शैक्षणिक परिस्थिति में प्रयुक्त किये जाने के लिये पर्याप्त गुण रखना चाहिए। अन्य शब्दों में, एक परीक्षा में शैक्षणिक उपयोगिता होनी चाहिए। एक परीक्षा की उपयोगिता का अनुमान उस मात्रा से लगाया जा सकता है जिस तक वह उस परिस्थिति में एक निश्चित आवश्यकता की सन्तोषजनक रूप से पूर्ति करती है। एक परीक्षा में शैक्षणिक सार्थकता लाने के लिये उसे निश्चित रूप से निर्धारित प्रयोजनों के लिये बनाया जाना चाहिए और छात्रों के मार्गप्रदर्शन के लिये उसके परिणामों का यथा-शक्य प्रयोग किया जाना चाहिए।

७—उपसंहार

पूर्वगत पंक्तियों में प्रमापीकृत तथा अप्रमापीकृत वैषयिक परीक्षाओं के लक्षणों का वर्णन किया गया है। अध्यापक-निर्मित अप्रमापीकृत परीक्षाओं में मान्यता के अतिरिक्त अन्य समस्त लक्षण विद्यमान होते हैं। अतः श्रेणियों में प्रयोग करने के लिये अध्यापकों द्वारा निर्मित परीक्षाओं में विश्वसनीयता, वैषयिकता, पर्याप्तता, अङ्कनात्मकता (*Scorability*), व्यावहारिकता, प्रबन्धात्मकता, मितव्ययिता, तुलनीयता, उपयोगिता, इत्यादि गुण अवश्य होने चाहिएँ। यह निर्विवाद है कि ऐसी परीक्षाओं से छात्रों का ठीक ठीक मूल्याङ्कन एवं मार्गप्रदर्शन किया जा सकेगा।

चतुर्थ अध्याय

वैषयिक परीक्षा

१—प्रस्तावना

प्रथम अध्याय में यह स्पष्ट किया जा चुका है कि विकास की दृष्टि से परीक्षाओं को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है, (१) निबन्ध अथवा प्रातीतिक अथवा प्राचीन परीक्षाएँ, तथा (२) वैषयिक परीक्षाएँ। पुनः, प्रमापीकरण के आधार पर वैषयिक परीक्षाओं के दो भेद किये जा सकते हैं, (i) अप्रमापीकृत परीक्षाएँ, तथा (ii) प्रमापीकृत परीक्षाएँ। अप्रमापीकृत परीक्षाओं को कई नामों से पुकारा जाता है, यथा, वैषयिक परीक्षाएँ, अनौपचारिक (*Informal*) परीक्षाएँ, नवीन-प्ररूप (*New-Type*) परीक्षाएँ, अध्यापक-निर्मित (*Teacher-Made*) परीक्षाएँ, श्रेणी-कोष्ठ परीक्षाएँ (*Class-room Tests*), इत्यादि। प्रस्तुत अध्याय में इन्हीं वैषयिक परीक्षाओं का वर्णन किया जाएगा।

२—वैषयिक परीक्षाओं का अर्थ

तृतीय अध्याय में वैषयिकता के प्रसङ्ग में वैषयिक परीक्षाओं के अर्थ पर पर्याप्त प्रकाश डाला चुका है। उसका अध्ययन करने के पश्चात् वैषयिक परीक्षाओं के अर्थ को समझने में वाचकों को विशेष कठिनाई न होगी। पुनरावृत्ति के रूप में सी० सी० रौस के मतानुसार "परीक्षाओं को उस समय वैषयिक कहा

जाता है जब उनके उत्तरों के बारे में समस्त दक्ष व्यक्तियों में पर्याप्त संमेल होता है।"※ प्रातीतिक परीक्षाओं के विपरीत, वे अवैयक्तिक, तथ्यीय साक्ष्य तथा स्थापित, सार्वत्रिक सत्यों पर आश्रित होती हैं और वैयक्तिक निर्णय, मत, पक्षपात, जनश्रुति (*Hearsay*), अथवा अधार्य उपकल्पनाएँ (*Untengible Hypotheses*) उन्हें प्रभावित नहीं करने पातीं।

३—निबन्ध तथा वैषयिक परीक्षाओं में अन्तर

वैषयिक परीक्षाओं की विशिष्ट विशेषताओं को समझने के लिये निबन्ध तथा वैषयिक परीक्षाओं के अन्तर को समझना अत्यन्त आवश्यक है। डी० जी० पैटरसन ने निबन्ध तथा वैषयिक परीक्षाओं के बीच व्यतिरेक (*Contrast*) करते हुए प्रश्नों के रूप, प्रश्नों की संख्या, तथा उत्तरों के रूप के आधार पर दोनों के तीन भेदों का उल्लेख किया है।

(१) प्रश्नों का रूप

(१) सामान्यत: निबन्ध परीक्षाओं के प्रश्न "किस प्रकार-प्ररूप" (*How Type*) के होते हैं जिनके लिये किसी विधा (*Process*) अथवा एक संनिहित स्पष्टीकरण के विस्तृत तर्क-शुद्ध पदों के कथन के एक वर्णन की आवश्यकता होती है।

वैषयिक परीक्षाओं के प्रश्न सामान्यत: "क्या प्ररूप" (*What Type*) के होते हैं जिनके लिये केवल एक शब्द के उत्तर की आवश्यकता होती है। जब तक छात्रों को एक विषय की

※ *"Tests and examinations are said to be objective when all competent persons are in substantial agreement as to the answers",* *Book No 4, P. 553*

समस्त विधा का ज्ञान न हो, तब तक वे इन आधार प्रश्नों (*Key Questions*) के उत्तर नहीं दे सकते।

(२) निबन्ध परीक्षाओं के प्रश्न एक जटिल विधा के बारे में छात्रों के ज्ञान की परीक्षा प्रत्यक्षतः करते हैं, क्योंकि उनके लिये सापेक्ष विस्तार में ज्ञान को प्रस्तुत करना तथा उसका प्रयोग करना आवश्यक होता है।

वैषयिक परीक्षाओं के प्रश्न उसी वस्तु की परीक्षा अप्रत्यक्ष रूप से करते हैं। आधार प्रश्नों के लिये लघु उत्तरों की आवश्यकता होती है। इस प्रकार आधार प्रश्नों के उत्तरों की सहायता से समस्त विधा के बारे में छात्रों के ज्ञान को अप्रत्यक्षतः मापा जाता है।

(२) प्रश्नों की संख्या

(१) सामान्यतः एक निबन्ध परीक्षा का निर्माण कम प्रश्नों द्वारा किया जाता है। कभी कभी एक घण्टा की अवधि वाली निबन्ध परीक्षा में प्रश्नों की संख्या केवल पाँच होती है और कभी समस्त विभागों को मिला कर दस अथवा अधिक।

एक वैषयिक परीक्षा में कम से कम ५० प्रश्न होते हैं। प्रायः प्रश्नों की संख्या ८० से १५० तक हो सकती है। इतने पर भी छात्र प्रत्येक प्रश्न का उत्तर देने की स्थिति में होते हैं।

(३) उत्तरों के रूप

(१) निबन्ध परीक्षाओं के प्रश्नों के लिये अधिकतम लेखन की आवश्यकता होती है। छात्र अपने उत्तर निबन्धों के रूप में एक अथवा अधिक उत्तरपत्रिकाओं में लिखते हैं।

नवीन परीक्षाओं के प्रश्नों के लिये न्यूनतम लेखन की आवश्यकता होती है। छात्र प्रश्नों के उत्तर एक विशेष स्तार

(*Sheet*) पर लिखते हैं। उत्तर या तो एक अथवा दो शब्द प्रति प्रश्न के रूप में होते हैं अथवा परीक्षा-चिह्नों (*Check Marks*) के रूप में।

४—वैषयिक परीक्षाओं की उत्पत्ति एवं विकास

यद्यपि प्राप्ति के वैषयिक मापन की उत्पत्ति १८६४ में हो चुकी थी तथापि विकास की दृष्टि से औपचारिक प्रमापीकृत परीक्षाएँ अनौपचारिक वैषयिक परीक्षाओं से लगभग द्वादश वर्ष प्राचीन हैं। प्राप्ति के सर्वप्रथम वैषयिक मापन की उत्पत्ति का श्रेय एक आङ्ग्ल अध्यापक मि० ज्यौर्ज फिशर को है। १८६४ में ज्यौर्ज फिशर की श्रेणी पुस्तकें (*Scale Books*) ग्रीनविच हॉस्पिटल स्कूल में हस्तलेख, वर्णयोग (*Spelling*), गणित, नौतरण (*Navigation*), धर्मग्रन्थ-ज्ञान, व्याकरण तथा निबन्ध, सामान्य इतिहास, फ्रेंच, उद्रेखण (*Drawing*), तथा व्यावहारिक विज्ञान में निष्पादन का अर्हापण करने के लिये साधनों के रूप में प्रयुक्त की जाती थीं। अमेरिका में, डॉ० जे० एम० राइस तुलनात्मक परीक्षा के वास्तविक उपज्ञाता (*Inventor*) थे। डॉ० राइस ने विभिन्न पाठशालाओं के छात्रों को वर्णयोग शब्दों की एक सूची दे कर परिणामों का विश्लेषण किया और "डिपार्टमेण्ट ऑफ सुपरिन्टेन्डेन्स ऑफ दी नेशनल ऐड्यूकेशन ऐसोसिएशन" के १८९७ के सत्र में घोषणा की कि वे छात्र, जो तीस मिनिट प्रति दिवस की गति से आठ वर्ष से वर्णयोग का अध्ययन कर रहे हैं, उन छात्रों से बढ़ कर नहीं हैं जिन्होंने पन्द्रह मिनिट प्रति दिवस की गति से आठ वर्ष से इस विषय का अध्ययन किया है। यही विचार आगे चल कर शिक्षा में वैषयिक मापन का आधार

बना और लगभग दस वर्ष पश्चात् वैषयिक रीति शैक्षणिक परीक्षण का अभिन्न अङ्ग बन गयी। १९०४ में थौर्नडाइक की सुप्रसिद्ध पुस्तक *Theory of Mental and Social Measurement* प्रकाशित हुई जो शैक्षणिक मापन पर प्रथम पुस्तक थी। १९०८ में स्टोन की प्रथम औपचारिक प्रमापीकृत परीक्षाएँ प्रकाशित हुईं। अनौपचारिक वैषयिक परीक्षण का विचार, जिसे आरम्भ में नवीन-प्ररूप परीक्षा तथा वैषयिक परीक्षा के नाम से भी पुकारा जाता था, सर्वप्रथम १९२० में मैकौल द्वारा सार्वजनिक रूप से व्यक्त किया गया था। मैकौल ने १९२० में एक लेख द्वारा सर्व प्रथम यह सुझाव दिया कि अध्यापकों का केवल प्रमापीकृत परीक्षाओं पर निर्भर रहना आवश्यक नहीं है और वे श्रेणियों में प्रयोग करने के लिये स्वयं परीक्षाओं का निर्माण कर सकते हैं।卐 १९२४ में जी० एम० रच की सुविख्यात पुस्तक "*The Improvement of the Written Examination*" प्रकाशित हुई जो अध्यापक-निर्मित परीक्षाओं पर सर्व प्रथम पुस्तक थी।

(२) उत्पत्ति के कारण

वैषयिक अथवा अध्यापक-निर्मित परीक्षाओं की उत्पत्ति के दो कारण थे : (१) निबन्ध परीक्षाओं की हीनता, तथा (२) प्रमापीकृत परीक्षाओं की अपर्याप्तता।

(१) निबन्ध परीक्षाओं की हीनता

द्वितीय अध्याय में निबन्ध परीक्षाओं की हीनताओं का वर्णन प्रस्तुत किया जा चुका है। चार्ल्स रसिल का मत है कि

卐 "*McCall seems to have been the first to suggest this type of test,......*" --*Book No 9, P. 50*

वैषयिक परीक्षाओं की उत्पत्ति भी इन्हीं हीनताओं को दूर करने के लिये हुई थी।❀

(२) *प्रमापीकृत परीक्षाओं की अपर्याप्तता*

पहले ही कहा जा चुका है कि विकास की दृष्टि से प्रमापीकृत परीक्षाएँ वैषयिक अथवा अध्यापक-निर्मित परीक्षाओं की अपेक्षा प्राचीन हैं। १९१९ से प्रमापीकृत परीक्षाओं के क्षेत्र में द्रुत गति से विकास हो रहा था। विशिष्ट प्रकार की विभिन्न निष्पन्न परीक्षाएँ (*Achievement Tests*) अस्तित्व में आ चुकी थीं जिनमें से नैदानिक (*Diagnostic*) परीक्षाओं तथा अभ्यास (*Practice*) परीक्षाओं के नाम विशेषतः उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त, परीक्षाओं को आपरीक्षण (*Survey*) परीक्षाओं द्वारा निर्मित समूहाओं (*Batteries*) में संघटित किया जा रहा था। १९२० में ऐसी दो समूहाएँ विद्यमान थीं: (i) पिंटनर (*Pintner*) द्वारा निर्मित समूहा, तथा (ii) मोनरो एवं बकिंघम (*Monroe & Buckingham*) द्वारा निर्मित समूहा। परन्तु अनेक क्षेत्रों में—विशेषतः उच्च पाठशालाओं तथा महाविद्यालयों में—प्रमापीकृत परीक्षाएँ प्राप्य न थीं। जिन क्षेत्रों में प्रमापीकृत परीक्षाएँ प्राप्य थीं, वे श्रेणी-अध्यापक की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिये अपर्याप्त थीं। इसके अतिरिक्त वे पर्याप्त महंगी भी होती थीं। फलतः अध्यापकों के लिये अनुपूरक परीक्षाओं की अत्यन्त आवश्यकता थी। सी० सी० रौस के मत से वैषयिक अथवा

❀ *"To cover this deficiency there have been devised... a number of means of testing.... These tests are called Teacher's Classroom Tests, or they might, with equal justice, be called Nonstandard Tests".-Book No 12. P. 22*

नवीन-स्वरूप परीक्षाओं की उत्पत्ति इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिये हुई थी ।†

६—वैषयिक प्रश्नों卐 के रूप

सामान्यतः वैषयिक परीक्षाएँ दो प्रकार की होती हैं : (i) प्रत्यास्मरण परीक्षाएँ (*Recall Tests*), तथा (ii) अभिज्ञान परीक्षाएँ (*Recognition Tests*)। परीक्षाओं के इन दो प्रकारों में वैषयिक प्रश्नों के अनेक रूपों का समावेश होता है जिनको विभिन्न नामों से पुकारा जाता है। प्रमाणपुरुष वैषयिक प्रश्नों के विभिन्न नामों पर सहमत नहीं हैं। रुच (*Ruch*) ने वैषयिक प्रश्नों के लिये १६ भिन्न भिन्न नाम दिये हैं जिनमें से कुछ में ७ तक उपशीर्षकों का समावेश किया है; परन्तु कौन्यू (*Conneau*) का मत है कि इनमें से लगभग ९० प्रति शत प्रश्न पूर्ति (*Completion*), सत्य-मिथ्या (*True-False*), बहु-प्रत्युत्तर (*Multi-Response*), समरूप (*Matching*), तथा अभिज्ञान (*Identification*) रूप ही हैं। आगामी पंक्तियों में प्रत्येक रूप के अर्थ, उदाहरण, तथा निर्माण-नियमों के साथ मुख्य वैषयिक प्रश्नों का वर्णन किया जाएगा। वर्णन से पूर्व यह विशेषतः उल्लेखनीय है कि एक वैषयिक परीक्षा के प्रश्नों से पूर्व सदैव कुछ निदेश (*Directions*) दिये जाते हैं

---

† *"The so-called objective, or new-type test was devised to meet just this need'.* —*Book No. 9, P. 50.*

卐 विभिन्न लेखकों ने 'प्रश्न' के स्थान पर 'परीक्षा' (*Test*), 'परीक्षाभ्यास' (*Test Exercise*), 'अभ्यास' (*Exercise*), पद (*Item*), इत्यादि शब्दों का भी प्रयोग किया है।

जिन्हें दो भागों में विभाजित किया जा सकता है: (i) सामान्य निदेश, तथा (ii) विशिष्ट निदेश। सामान्य निदेश वैषयिक प्रश्नों के समस्त रूपों पर समान रूप से लागू होते हैं; विशिष्ट निदेश प्रत्येक रूप के अनुसार पृथक एवं विशिष्ट होते हैं। यह भी आवश्यक है कि एक प्रकार के वैषयिक प्रश्नों के रूप से सम्बन्धित निदेश उसके साथ उससे पूर्व दिये जाने चाहिएँ, समस्त निदेश एक ही स्थान पर नहीं। विशिष्ट निदेश प्रत्येक रूप के साथ दिये गये हैं अतः यहाँ केवल सामान्य निदेशों का ही उल्लेख किया जाएगा। आर० एम० थौमस के मतानुसार मुख्य सामान्य निदेश निम्नलिखित हैं:—

(क) अच्छी भाषाभिव्यक्ति का शासन करने वाले नियमों का पालन किया जाना चाहिए।

(ख) कठिन शब्द टाले जाने चाहिएँ।

(ग) पाठ्यपुस्तक की शब्दरचना टाली जानी चाहिए।

(घ) संदिग्धताएँ टाली जानी चाहिएँ।

(ङ) स्पष्ट उत्तर रखने वाली बातें नहीं पूछी जानी चाहिएँ।

(च) समाधान-तालिकाएँ (*Clues*) तथा सुझाव टाले जाने चाहिएँ।

(छ) ऐसे पदों का समावेश नहीं किया जाना चाहिए जिनका उत्तर केवल बुद्धि द्वारा दिया जा सकता है।

(ज) गुणात्मक (*Qualitative*) शब्दों की अपेक्षा मात्रात्मक (*Quantitative*) शब्द प्रयुक्त किये जाने चाहिएँ।

(झ) ग्रहण शब्द (*Catch Words*) प्रयुक्त नहीं किये जाने चाहिएँ।

(ञ) पद अन्तर्सम्बद्ध नहीं होने चाहिएँ।

(ट) प्रत्युत्तर-स्थान अधिमानतः पंक्तिबद्ध होने चाहिएँ।

(?) सरल प्रत्यास्मरण परीक्षा (Simple Recall Test)

(क) अर्थ—सरल प्रत्यास्मरण परीक्षा उस परीक्षा को कहते हैं जिसमें छात्रों को उत्तर सुझाया अथवा दिया नहीं जाता, अपितु उनसे प्रत्याहूत (*Recalled*) कराया जाता है।

(ख) उदाहरण—निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर केवल एक शब्द अथवा वचन में दीजिए। शब्द अथवा वचन को उस रेखा पर लिखिए जो प्रश्न के अन्तिम शब्द के ठीक पश्चात् खींची गयी है।

(१) भारत के प्रधान मन्त्री का क्या नाम है? ( )
(२) रामायण के रचयिता का क्या नाम था? ( )
(३) संयुक्त राष्ट्र संघ का कार्यालय कहाँ पर है? ( )
(४) टोकियो किस देश में है? .... ( )
(५) १५ गुणित १० ? .... ( )

(ग) नियम—(i) सरल प्रत्यास्मरण प्रश्न गणित एवं भौतिक विज्ञान में विशेषतः उपयोगी होते हैं, (ii) ये मुख्यतः तथ्यीय (*Factual*) ज्ञान को मापने में सहायक होते हैं, (iii) इन प्रश्नों का निर्माण करते समय कथन रूप की अपेक्षा प्रत्यक्ष प्रश्न रूप का प्रयोग अधिक उपयुक्त होता है, (iv) उत्तरों के लिये प्रदत्त रिक्तस्थान एक स्तम्भ (*Column*) में होने चाहिएँ तथा (v) प्रश्नों का निर्माण इस प्रकार किया जाना चाहिए कि एक प्रश्न का केवल एक ही ठीक उत्तर हो।

(२) पूर्ति परीक्षा (Completion Test)

(क) अर्थ—पूर्ति परीक्षा वाक्यों की उस माला को कहते हैं जिनमें कुछ महत्वपूर्ण शब्दों, तिथियों अथवा शब्दबन्धों

(*Phrases*) का लोप कर दिया जाता है और भरने के लिये छात्रों को रिक्तस्थान प्रदान किये जाते हैं।

(ख) उदाहरण—निम्नलिखित वाक्यों में से प्रत्येक वाक्य में एक अथवा अधिक शब्दों, संख्याओं, तिथियों अथवा शब्दबन्धों का लोप कर दिया गया है। और प्रत्येक लुप्त शब्द, तिथि अथवा शब्दबन्ध के लिये एक रिक्तस्थान प्रदान किया गया है। लुप्त शब्दों, संख्याओं, तिथियों अथवा शब्दबन्धों को रिक्तस्थानों में यथास्थान लिखिए।

(१) मत..............का एक विशेषाधिकार होता है।

(२) भारत में कपास का उत्पादन मुख्यतः................, ..., तथा...................में होता है।

(३) द्वि-पक्ष-पद्धति...................तथा...................की विशेषता होती है।

(४) राम इतना योग्य नहीं है.......... श्याम।

(५) म............को मधुर-भाषी होना चाहिए।

(ग) नियम—(i) पूर्ति कथन ऐसा होना चाहिए कि वह वाञ्छित प्रत्युत्तर का निर्धारण करने के लिये एक युक्तियुक्त आधार प्रदान करता हो, (ii) एक कथन में बहुत अधिक शब्दों का लोप नहीं करना चाहिए, तथा (iii) लुप्त शब्द ऐसे होने चाहिएँ कि रिक्तस्थानों में केवल वही शब्द भरे जा सकें, अन्य नहीं।

(३) एकान्तर-प्रत्युत्तर परीक्षा (Alternate-Response Test)

(क) अर्थ—एकान्तर-प्रत्युत्तर परीक्षा उस परीक्षा को कहते हैं जिसका निर्माण केवल दो प्रत्युत्तरों को स्वीकार करने वाले प्रश्नों से होता है। सत्य-मिथ्या परीक्षा, हाँ-नहीं परीक्षा,

शुद्ध-अशुद्ध परीक्षा, समान-विपरीत (*Same-Opposite*) परीक्षा, इत्यादि एकान्तर-प्रत्युत्तर परीक्षा के ही रूप हैं।

(ख) उदाहरण--नीचे कुछ कथन दिये जाते हैं। प्रत्येक कथन के अन्त में "सत्य-मिथ्या" शब्द लिखे हुए हैं। यदि कथन सत्य है तो "सत्य" शब्द को रेखाङ्कित कीजिए; यदि कथन मिथ्या है तो "मिथ्या" शब्द को। जिस कथन के बारे में आपको सन्देह हो उस पर चिह्न लगाने की आवश्यकता नहीं है।

(१) जल शक्ति का प्रयोग वैद्युत शक्ति का उत्पादन करने के लिये किया जाता है। सत्य—मिथ्या

(२) सम्राट अशोक हिन्दू धर्म के अनुयायी थे। सत्य--मिथ्या

(३) पं० जवाहरलाल नहरू भारत के राष्ट्रपति हैं। सत्य—मिथ्या

(४) "कुरुक्षेत्र" की रचना कविवर 'दिनकर" ने की है। सत्य—मिथ्या

(ग) नियम—(i) कथन द्व्यर्थक अथवा संदिग्ध नहीं होने चाहिएँ, (ii) कथन कूट कथन (*Trick Statements*) अथवा लम्बे नहीं होने चाहिएँ तथा (iii) सत्य एवं मिथ्या कथनों की संख्या का अनुपात लगभग समान होना चाहिए।

(४) बहु-वरण परीक्षा (Multiple-Choice Test)

(क) अर्थ--बहु-वरण परीक्षा उस परीक्षा को कहते हैं जिसमें एक कथन अथवा प्रश्न दो से अधिक ऐसी पूर्तियों, वरणों (*Choices*), अथवा उत्तरों के साथ दिया जाता है

जिनमें से केवल एक शुद्ध अथवा अन्य की अपेक्षा अधिक अच्छा होता है। प्रत्येक पद एक प्रत्यक्ष प्रश्न, एक अशुद्ध कथन, अथवा एक शब्द के रूप में हो सकता है।

(ख) उदाहरण (१)—नीचे कुछ शब्द दिये गये हैं। प्रत्येक रेखा पर चार शब्द हैं जिनमें से केवल एक शब्द का वर्णयोग (*Spelling*) शुद्ध है। उसे रेखाङ्कित कीजिए और उसकी संख्या दाहिने हाथ पर दिये गये गोलाभिवार ( ) में लिखिए।

(१) १ अन्तर्गत २ अन्र्तगत ३ अनतरगत
४ अर्न्तगत ५ अन्तरगत ···· ····( )

(२) १ उतपति २ उतपत्ति ३ उत्पत्ति
४ उत्पत्ती ५ उत्तपति ···· ····( )

(३) १ कर्त्तव्य २ करतव्य ३ कर्तव्य
४ क्रतव्य ५ कर्त्व्य ···· ····( )

उदाहरण (२)—नीचे कुछ कथन-समूह दिये गये हैं। प्रत्येक कथन-समूह में केवल एक कथन शुद्ध है। उसे रेखाङ्कित कीजिए और उसकी संख्या दाहिने हाथ पर दिये गये गोलाभिवार ( ) में लिखिए।

(१) अन्ततः प्रताप ने अकबर के पास संधिपत्र लिख कर भेज दिया क्योंकि
(१) वह सच्चे वीर नहीं थे।
(२) वह अकबर के समर्थक बन गये थे।
(३) वह सङ्कटों से घबरा गये थे।
(४) उन्हें सन्तान-प्रेम ने विवश कर दिया था।
(५) उनके हृदय में देशप्रेम का अभाव था। ( )

(२) भारत के स्वतन्त्र होने की तिथि है

(१) २६ जनवरी १९२६

(२) १५ अगस्त १६४७

(३) ९ अगस्त १९४२

(४) ३० जनवरी १९४७ ( )

(ग) नियम—(i) यह आवश्यक है कि केवल एक ही कथन ठीक हो, (ii) समस्त समूहों में ठीक उत्तरों की स्थितियाँ पृथक् पृथक् होनी चाहिएँ, तथा (iii) एक समूह में कम से कम चार वरण (*Choices*) अवश्य होने चाहिएँ।

(५) *समरूप परीक्षा (Matching Test)*

(क) अर्थ—एक समरूप परीक्षा में दो स्तम्भों (*Columns*) का समावेश होता है। प्रथम स्तम्भ के प्रत्येक पद का द्वितीय स्तम्भ के एक शब्द अथवा शब्दबन्ध (*Phrase*) से किसी सुझाये गये आधार पर युग्मन (*Pair*) किया जाता है। समरूप के दो भेद होते हैं: (i) वाक्य-पूर्ति समरूप तथा स्तम्भ समरूप (*Column Matching*)।

(ख) उदाहरण १—वाक्य-पूर्ति समरूप—नीचे प्रथम स्तम्भ में कुछ वाक्य दिये गये हैं। प्रत्येक वाक्य को पूर्ण करने के लिये एक शब्द अथवा शब्दबन्ध की आवश्यकता है। द्वितीय स्तम्भ से ठीक शब्दों अथवा शब्दबन्धों को ज्ञात करके रिक्त स्थानों में यथा-स्थान लिखिए तथा उनकी संख्या वाक्यों के आरम्भ में गोलाभिवारों ( ) में लिखिए।

I	II
( ) वह व्यक्ति जिसने अमेरिका को स्वतन्त्र कराया⋯⋯था।	१. कोलम्बस २. तेनसिंह

I	II
( ) कांग्रेस की स्थापना.................. के प्रयत्न से हुई थी।	३. लिंकन
	४. गान्धी
( ) अमेरिका का आविष्कार............ ने किया था।	५. वाशिंगटन
	६. ह्यूम
( ) ऐवरिस्ट पर सर्व प्रथम पग रखने वाला व्यक्ति....... था।	७. शाहजहाँ
	८. क्लाइव
( ) ताजमहल का निर्माण........... ने कराया था।	९. जहाँगीर
	१०. भगतसिंह

उदाहरण २—स्तम्भ समरूप—नीचे दो स्तम्भ दिये गये हैं। प्रथम स्तम्भ के प्रत्येक पद के लिये द्वितीय स्तम्भ में एक ऐसा शब्द अथवा शब्दबन्ध है जो उसके समरूप है। उसे ज्ञात कीजिए तथा उसकी संख्या प्रथम स्तम्भ के आरम्भ के गोलाभिवार ( ) में लिखिए।

I	II
( ) व्ययों का अनुमान।	१. संविधान
( ) सार्वजनिक कोषागार से दिया गया एक उपहार।	२. लोकतन्त्र
	३. परिसंपत्
( ) शासन-सम्बन्धी नियमों एवं सिद्धान्तों की पद्धति।	४. आयव्ययक
	५. कुलीनतन्त्र
( ) जनता के शासन एक रूप	६. नियमावलि
	७. कराधान

(ग) नियम—(i) जिन प्रश्नों के लिये समान उत्तर की आवश्यकता हो उन्हें साथ साथ रखना चाहिए (ii) सामान्य सूची में तिथियों, नामों अथवा अन्य तथ्यों की संख्या पर्याप्त

होनी चाहिए, अर्थात्, द्वितीय स्तम्भ में प्रथम स्तम्भ की अपेक्षा अधिक पद होने चाहिएँ।

(६) *कारण तथा परिणाम परीक्षा (Cause and Effect Test)*

(क) अर्थ--कारण तथा परिणाम परीक्षा उस परीक्षा को कहते हैं जिसमें दो स्तम्भों का समावेश होता है जिनमें से प्रथम स्तम्भ में कारणों तथा द्वितीय स्तम्भ में परिणामों का उल्लेख किया जाता है। छात्रों को कारणों के अनुसार परिणाम ज्ञात करने होते हैं। कारण तथा परिणाम परीक्षा के पद बहु-वरण तथा समरूप दोनों रूपों के हो सकते हैं।

(ख) उदाहरण--नीचे प्रथम स्तम्भ में कारणों तथा द्वितीय स्तम्भ में परिणामों की एक सूची दी गयी है। प्रत्येक कारण की संख्या को समरूप परिणाम के सामने रिक्त गोलाभिवारों ( ) में लिखिए।

I कारण		II प्रभाव
(१) असन्तुष्ट जनता	( )	जल का जमना
(२) बिजली	( )	गर्म दिन तथा ठण्डी रातें
(३) शून्य तापःक्रम	( )	मृत्यु
(४) शुष्क जलवायु	( )	राज्य-क्रान्ति
(५) श्वासस्थगन	( )	गर्जन
	( )	ताप

(ग) नियम--(i) एक स्तम्भ में १५-२० से अधिक पद नहीं होने चाहिएँ, (ii) एक स्तम्भ में कम से कम १० पद अवश्य होने चाहिएँ, तथा (iii) दोनों स्तम्भों में समान पदों का होना आवश्यक नहीं है।

(७) वर्गीकरण परीक्षा (*Classification Test*)

(क) अर्थ--वर्गीकरण परीक्षा उस परीक्षा को कहते हैं जिसमें एक शब्द-समूह में से उस शब्द को ज्ञात करना होता है जो उस शब्द-समूह का विषय नहीं होता।

(ख) उदाहरण--नीचे पाँच शब्द-समूह दिये गये हैं। प्रत्येक शब्द-समूह में एक शब्द ऐसा है जो उस शब्द-समूह का विषय नहीं है। उस शब्द को रेखाङ्कित कीजिए।

(१) प्रयाग, काशी, मद्रास, दिल्ली, अमृतसर।
(२) गङ्गा, नर्मदा, गोदावरी, हिमालय, सतलज।
(३) सागर, रेगिस्तान, झील, नदी, खाड़ी।
(४) सेब, गाय, कुत्ता, बिल्ली, घोड़ा, हाथी।
(५) उत्तर प्रदेश, बिहार, बङ्गाल, मद्रास, चीन।

(ग) नियम--(i) एक शब्द-समूह में केवल एक भिन्न शब्द होना चाहिए, (ii) शब्द-समूह से भिन्न शब्दों की स्थितियाँ पृथक् पृथक् होनी चाहिएँ, अर्थात् भिन्न शब्द समस्त शब्द-समूहों में समान क्रम पर नहीं होने चाहिएँ।

(८) अनुपात-पूरक परीक्षा (*Analogy Test*)

(क) अनुपात-पूरक परीक्षा उस परीक्षा को कहते हैं जिसमें वस्तुओं के दो जोड़ों का समावेश होता है तथा द्वितीय जोड़े का एक लुप्त शब्द छात्रों को ज्ञात करना होता है। अनुपात-पूरक परीक्षा या तो पूर्ति रूप की हो सकती है अथवा बहु-चरण रूप की।

(ख) उदाहरण १—नीचे दो दो जोड़ों के पाँच समूह दिये गये हैं। प्रत्येक समूह में द्वितीय जोड़े का एक शब्द लुप्त है। उसे ज्ञात करके रिक्तस्थान पर लिखिए।

	I			II	
(१)	श्वेत	: कृष्ण	::	अच्छा :	…………
(२)	दुख	: सुख	::	………	: प्रतिकूल
(३)	यश	: अपयश	::	सम्भव :	………
(४)	आशा	: निराशा	::	………	: अर्वाचीन
(५)	साकार	: निराकार	::	सफल :	………

उदाहरण २—नीचे तीन पद दिये गये हैं। प्रत्येक पद के प्रथम शब्द के जोड़े का शब्द उसी पद में दिये गये शब्दों की सूची में से चुन कर रेखाङ्कित कीजिए और उसकी संख्या पद के अन्त में दिये गये रिक्त गोलाभिवारों ( ) में लिखिए।

(१) मोटर का वहन से वही सम्बन्ध होता है जो फटफट का [१ घोड़े से, २ बग्घी से, ३ साइकिल से, ४ गमन से, ५ रेलगाड़ी से]····( )

(२) वायुयान का आकाश से वही सम्बन्ध होता है जो मनुष्य का [१ धरती से, २ भोजन से, ३ वस्त्र से, ४ मकान से, ५ मनुष्य से]····( )

(३) वृत्त का वर्ग से वही सम्बन्ध होता है जो मण्डल का [१ परिधि से, २ घन से, ३ गोल से, ४ कोण से, ५ पिण्ड से]·······( )

(ग) नियम—(i) जोड़ों का निर्माण अत्यन्त सावधानी से किया जाना चाहिए, (ii) लुप्त शब्द ऐसा हो कि केवल एक अभिप्रेत शब्द ही उसका स्थान ले सके।

(६) *विपरीत परीक्षा (Opposite Test)*

(क) अर्थ—विपरीत परीक्षा उस परीक्षा को कहते हैं जिसमें छात्र एक सूची में सुझाये गये अनेक वैकल्पिक शब्दों

में से उस शब्द को चुनते हैं जो उसमें दिये गये प्रथम शब्द के विपरीत होता है। वस्तुतः, यह एक शब्द-संग्रह (*Vocabulary*) परीक्षा होती है।

(ख) उदाहरण—नीचे पाँच शब्द-सूचियाँ दी गयी हैं। प्रत्येक सूची में से उस शब्द को चुनिए जो उसके प्रथम शब्द के विपरीत अर्थ रखता हो। चुने हुए शब्दों की संख्या गोलाभिवारों ( ) में यथास्थान लिखिए।

संधि ( ) १. कटुता, २. विग्रह, ३. द्वेष, ४. कलह
सम्भव ( ) १. कठिन, २. दुष्प्राप्य, ३. त्याज्य, ४. असंभव
गमन ( ) १. स्वागत करना, २. पधारना, ३. आगमन, ४. विराजना, ५. आसीन होना
घालक ( ) १. पालक, २. रक्षक, ३. त्राता, ४. हितैषी
सत्कार ( ) १. अपमान, २. तिरस्कार, ३. अन्याय ४. अत्याचार, ५. अनादर, ६. अनुचित

(ग) नियम—(i) प्रत्येक सूची में विपरीत अर्थ रखने वाला केवल एक ही शब्द होना चाहिए।

(१०) पुनर्विन्यास परीक्षा (Re-arrangement Test)

(क) अर्थ—पुनर्विन्यास परीक्षा उस परीक्षा को कहते हैं जिसमें अनियमित (*Confused*) अथवा समसंभाविक (*Random*) क्रम में ऐसे पदों की एक माला का समावेश होता है जिन्हें एक निर्दिष्ट आधार—यथा तिथि-क्रम, महत्व, इत्यादि—के अनुसार पुनर्विन्यस्त किया जाता है।

(ख) उदाहरण—नीचे अनियमित क्रम में कुछ घटनाएँ दी गयी हैं। उन्हें रिक्त गोलाभिवारों ( ) में १, २, ३, ४, ५ लिख कर उस क्रम में निर्दिष्ट कीजिए जिसमें वे हुई थीं।

(   ) प्लासी का युद्ध ।

(   ) रैग्यूलेटिङ्ग ऐक्ट ।

(   ) पिंडारियों का दमन ।

(   ) ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना ।

(   ) क्लाइव का आगमन ।

(ग) नियम—(i) एक पद-समूह में सम्मिलित घटनाएँ एक ही विषय से सम्बन्धित होनी चाहिएँ ।

(??) निर्णय परीक्षा (Judgement Test)

(क) अर्थ—निर्णय परीक्षा उस परीक्षा को कहते हैं जिसमें छात्रों से दिये गये तथ्यों के कारण पूछे जाते हैं। यह परीक्षा तथ्यों की अपेक्षा सिद्धान्तों को मापती है।

(ख) उदाहरण—नीचे दी हुई निरङ्क (*Blank*) रेखाओं पर एक ऐसा वाक्य लिखिए जो प्रत्येक दिये हुए कथन की सत्यता के बारे में सर्वोत्तम कारण बताएगा।

(१) कथन—स्वास्थ्य के लिये पर्याप्त निद्रा आवश्यक है।
उत्तर—..

(२) कथन—स्विटजरलैण्ड का मुख्य उद्योग घड़ियाँ बनाना है।
उत्तर—..

(३) कथन—अधिकांश प्राचीन नगर नदियों के तट पर बसे हुए हैं।
उत्तर—..

(४) कथन—संसार में सर्वाधिक वर्षा चेरापूंजी में होती है।
उत्तर—..

(५) कथन—जापान में भूचाल अधिक आते हैं।
उत्तर—..

(ग) नियम—(i) एक पद-समूह में सम्मिलित कथन एक ही विषय से सम्बन्धित होने चाहिएँ, (ii) कथन सत्य एवं महत्वपूर्ण होने चाहिएँ, (iii) कथनों के लिये विषय-वस्तु की मात्रा एवं स्वरूप सावधानी से चुना जाना चाहिए, (iv) यह परीक्षा विषयवस्तु की जाँच करने के लिये अत्यन्त उपयोगी होती है।

(१२) सम्बन्ध परीक्षा (Association Test)

(क) अर्थ—सम्बन्ध परीक्षा उस परीक्षा को कहते हैं जिसके द्वारा दिये गये प्रत्येक पद के बारे में छात्रों को एक कथन लिखना होता है।

(ख) उदाहरण

(१) लोहा ....

(२) सुभाषचन्द्र ....

(३) साकेत ....

(४) चित्तौड़ ....

(५) लोकतन्त्र ....

(६) नैटो *(NETO)* ....

(ग) नियम—(i) अनावश्यक विस्तारों को टाला जाना चाहिए, (ii) निर्णय परीक्षा की भाँति सम्बन्ध परीक्षा भी अध्यापकों को विषय-वस्तु की जाँच करने के लिये एक अवसर प्रदान करती है।

७-परीक्षा-निर्माण के पद तथा सिद्धान्त

अच्छी वैषयिक परीक्षाओं का निर्माण करना एक अत्यन्त कठिन तथा उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य है। परन्तु यह अध्यापकों का एक आवश्यक कर्तव्य होता है। अच्छी वैषयिक परीक्षाओं का निर्माण करने के लिए एक अध्यापक में दो गुणों का होना आवश्यक है: (१) वैयक्तिक गुण, यथा धैर्य, तथा (२) परीक्षा-निर्माण की विधा (*Process*) का सम्यक् ज्ञान। एक अच्छी वैषयिक परीक्षा का निर्माण स्फूर्ति के कुछेक क्षणों में नहीं हो जाता; उसके लिये पर्याप्त समय की आवश्यकता होती है। यदि एक अध्यापक को यह ज्ञात न हो कि एक वैषयिक परीक्षा के निर्माण में कौन कौन से प्रक्रम अथवा पद होते हैं और प्रत्येक प्रक्रम अथवा पद पर किन किन सिद्धान्तों अथवा नियमों का पालन करना आवश्यक होता है तो पर्याप्त धैर्य एवं समय के रहते हुए भी उसके लिये एक अच्छी परीक्षा का निर्माण करना सम्भव न होगा। परीक्षा-निर्माण की विधा में चार प्रक्रम अथवा पद होते हैं: (१) योजना (*Planning*) प्रक्रम, (२) विरचन (*Preparation*) प्रक्रम, (३) अन्वीक्षा (*Trial*) प्रक्रम, तथा (४) अर्हापण (*Evaluation*) प्रक्रम। पुनः, प्रत्येक प्रक्रम में कुछ सिद्धान्तों अथवा नियमों का समावेश होता है। आगामी पंक्तियों में इन्हीं पदों तथा सिद्धान्तों का वर्णन किया जाएगा।

(१) योजना-प्रक्रम (Planning Stage)

योजना-प्रक्रम के सिद्धान्तों का सम्बन्ध तीन विषयों से होता है। अन्य शब्दों में, योजना-प्रक्रम पर तीन बातों का विचार किया जाता है: (क) शिक्षण के सामान्य उद्देश्यों का

नेर्धारण, (ख) शिक्षण के विशिष्ट उद्देश्यों का निर्धारण, तथा
ग) परीक्षा की प्रकृति का निर्धारण।

(क) शिक्षण के सामान्य उद्देश्यों का निर्धारण—एक
वैषयिक परीक्षा की योजना का प्रथम पद शिक्षण के उद्देश्यों
का सामान्य शब्दों में वर्णन करना है। शिक्षण के सामान्य
उद्देश्यों के दो आधार होते हैं : (i) पाठशाला का दर्शन, तथा
(ii) विशेष पाठचर्या के उद्देश्य। इसके अतिरिक्त प्रत्येक छात्र
की प्रगति का माप उसकी अभिरुचियों, आवश्यकताओं, तथा
योग्यताओं के अनुसार किया जाता है। अतः एक परीक्षा की
योजना करते समय इन प्रश्नों पर भी विचार करना होता
है। उधर, शिक्षण के सामान्य उद्देश्यों पर विभिन्न विचारक
एकमत नहीं हैं। लुई० ई० रैथस (*Louis E. Raths*) के
मतानुसार शिक्षण के उद्देश्यों को आठ वर्गों में वर्गित किया
जा सकता है : (i) कार्यात्मक सूचना, (ii) विचार के विभिन्न
पक्ष, (iii) अभिवृत्तियाँ (*Attitudes*), (iv) अभिरुचियाँ,
उद्देश्य, प्रयोजन, विवेचन, (v) अध्ययन-कौशल तथा कार्य-
व्यसन, (vi) सामाजिक समायोजन (*Adjustment*) तथा
सूक्ष्मता (*Sensitivity*), (vii) सर्जनात्मकता (*Creativeness*),
(viii) एक कार्यशील सामाजिक दर्शन। टी० स्मिथ के मता-
नुसार शिक्षण के उद्देश्यों के दस रूप होते हैं : (i) विचार
की प्रभावशाली रीतियों का विकास, (ii) उपयोगी कार्य-व्यसनों
तथा अध्ययन-कौशलों का संवर्धन, (iii) सामाजिक अभि-
वृत्तियों का अन्तर्निवेष (*Inculcation*), (iv) महत्वपूर्ण
अभिरुचियों की एक विस्तृत सीमा का अर्जन, (v) सङ्गीत,
कला, साहित्य, तथा अन्य सौन्दर्यानुभवों के वर्धी रसग्रहण

का विकास, (vi) सामाजिक क्षमता का विकास, (vii) अधिक अच्छे वैयक्तिक-सामाजिक समायोजन का विकास, (viii) महत्त्वपूर्ण सूचना का अर्जन, (ix) शारीरिक स्वास्थ्य का विकास, (x) जीवन के एक सङ्गत दर्शन का विकास। जो हो, परीक्षा का निर्माण करते समय शिक्षण के उद्देश्यों का मूल्याङ्कन करने के लिये पर्याप्त प्रबन्ध किया जाना चाहिए।

(ख) शिक्षण के विशिष्ट उद्देश्यों का निर्धारण—सामान्य शब्दों में शिक्षण के उद्देश्यों का वर्णन करने के पश्चात् विशिष्ट शब्दों में उनका वर्णन किया जाना चाहिए। अन्य शब्दों में, एक ऐसी विशिष्ट-सूची (*Table of Specifications*) तय्यार की जानी चाहिए जो परीक्षा-निर्माता का मार्गप्रदर्शन करेगी। यहाँ दो प्रश्नों पर विचार किया जाएगा: (i) अध्यापक के उद्देश्य, तथा (ii) पाठचर्या के वास्तविक अध्यापन में प्रत्येक उद्देश्य द्वारा प्राप्त किया गया बल। अन्य शब्दों में, परीक्षा को अध्ययन-बल (*Teaching Emphasis*) को प्रतिबिम्बित करना चाहिए। विशिष्ट-सूची विषय की रूपरेखा के अतिरिक्त ज्ञान, कौशलों, अभिवृत्तियों तथा अन्य उद्देश्यों की दृष्टि से अध्ययन-बल को भी निर्दिष्ट करेगी। विशिष्ट उद्देश्य विशिष्ट पाठों तथा प्रसङ्गों पर निर्भर रहते हैं। रौबर्ट एम० डब्ल्यू० ट्रैवर्स (*Robert M. W. Travers*) का मत है कि उद्देश्यों के लिये संख्या-भार (*Numerical Weights*) नियत कर दिये जाने चाहिएँ। अन्य शब्दों में, उनके लिये अङ्क नियत कर लेने चाहिएँ।

(ग) परीक्षा की प्रकृति का निर्धारण—परीक्षा की प्रकृति का निर्धारण उस विशिष्ट प्रयोजन की दृष्टि से होना चाहिए

जिसे वह प्राप्त करना चाहती है। अन्यथा परीक्षा में अविश्वसनीयता दोष आ जाएगा। कोई परीक्षा उसी मात्रा तक विश्वसनीय होती है जिस तक वह एक विशिष्ट प्रयोजन को प्राप्त करती है। आर० ऐम० थौमस के शब्दों में परीक्षा के पदों तथा पाठचर्या के उद्देश्यों के बीच समुचित सम्बन्ध होना चाहिए।

(२) विरचन प्रक्रम (Preparation Stage)

विरचन प्रक्रम पर परीक्षा के प्रारम्भिक प्रारूप (*Preliminary Draft*) की रचना की जाती है और पाँच प्रश्नों—परीक्षा के पद अथवा प्रश्न, (ख) समालोचनात्मक संशोधन, (ग) भाषा, (घ) प्रत्युत्तर-प्रतिरूप तथा (ङ) आवश्यक निदेश (*Directions*)—पर विचार किया जाता है। इस प्रक्रम के समस्त सिद्धान्त इन्हीं प्रश्नों तक सीमित होते हैं।

(क) परीक्षा के पद—परीक्षा का प्रारम्भिक प्रारूप यथाशीघ्र तय्यार किया जाना चाहिए। यदि अध्यापक प्रति दिन अध्यापन की प्रगति के साथ साथ परीक्षाओं में सम्मिलित किये जाने वाले पदों का टिप्पण करते रहें तो परीक्षा-निर्माण के समय उन्हें विशेष कठिनाई न होगी। नियमतः, एक परीक्षा में अनेक प्रकार के पदों का समावेश होना चाहिए। अन्य शब्दों में, परीक्षा-पदों का निर्माण करते समय विभिन्नता-सिद्धान्त (*Principle of Variety*) का पालन किया जाना चाहिए। परीक्षा की विषयवस्तु का निर्धारण करते समय यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि वह अत्यन्त सरल से अत्यन्त कठिन तक विस्तृत हो। अन्य शब्दों में, परीक्षा के समस्त पद न तो अत्यन्त सरल ही हों, न अत्यन्त कठिन। सामान्यतः

परीक्षा के प्रारम्भिक प्रारूप में अन्तिम प्रारूप के लिये अपेक्षित पदों की अपेक्षा २५ से ५०% तक अधिक पदों का समावेश किया जाना चाहिए। एक विशिष्ट प्ररूप के समस्त पद परीक्षा में साथ साथ रखे जाने चाहिएँ और वे कठिनता-क्रम (*Order of Difficulty*) में क्रमबद्ध होने चाहिएँ। सरल पदों को परीक्षा के आरम्भ में तथा कठिन पदों को अन्त में रखना समान रूप से महत्वपूर्ण होगा।

(ख) समालोचनात्मक संशोधन—कुछ समय पश्चात् परीक्षा पदों का समालोचनात्मक संशोधन (*Critical Revision*) किया जाना चाहिए और विशिष्टि-सूची की सहायता से उनकी सावधानी से परीक्षा करके यह ज्ञात करना चाहिए कि परीक्षा बल का वाञ्छनीय अनुपात दिखलाती है अथवा नहीं। इस समय संदिग्ध, अवाञ्छनीय एवं आपत्तिजनक पदों को परीक्षा से पृथक् कर देना चाहिए। यदि परीक्षा की समालोचना उसी विषय के अन्य अध्यापक अथवा अध्यापकों से करायी जाए तो यह विशेष रूप से उपयोगी होगा।

(ग) भाषा—समालोचनात्मक संशोधन के समय परीक्षा-पदों के शब्दों की ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए और समस्त संदिग्धताओं (*Ambiguities*) को हटा दिया जाना चाहिए। परीक्षा-पदों की भाषा सरल एवं स्पष्ट होनी चाहिए। वे इस प्रकार शब्दबन्धित होने चाहिएँ कि कथन के रूप की अपेक्षा कथन की विषयवस्तु उत्तर का निर्धारण करे। लाक्षणिक (*Figurative*) भाषा, अनावश्यक रूप से भारी शब्द-संग्रह, अथवा अन्तर्ग्रस्त (*Involved*) वाक्य-विन्यास को टाला जाना चाहिए। संक्षेप में, जब तक परीक्षा का उद्देश्य छात्रों की

वाचन-योग्यता अथवा सामान्य बुद्धि का माप करना न हो, तब तक परीक्षा पदों को उनके मार्ग में अनावश्यक भाषा-सम्बन्धी बाधाएँ नहीं डालनी चाहिएँ। पद इस प्रकार शब्द-बन्धित होने चाहिएँ कि पद के एक भाग की अपेक्षा उसकी सम्पूर्ण विषयवस्तु उत्तर का निर्धारण करे।

(घ) प्रत्युत्तर-प्रतिरूप (*Pattern of Responses*)-प्रत्युत्तरों का एक नियमित अनुक्रम (*Sequence*) सर्वथा अवाञ्छनीय है। वास्तव में प्रत्युत्तरों का क्रम एक नियमित प्ररूप की अपेक्षा एक अवसर-क्रम (*Chance Order*) होना चाहिए। प्रत्युत्तर-प्रतिरूप परीक्षा-पदों के विन्यास पर निर्भर रहता है। परीक्षण-सूची (*Check List*), वर्ग-क्रम श्रेणी (*Rating Scale*) इत्यादि के रूप में छात्रों के प्रत्युत्तरों के एक सुविधाजनक लिखित अभिलेख (*Record*) की भी व्यवस्था की जानी चाहिए जिस पर परीक्षक निर्धारित दशाओं में एक छात्र के व्यवहार का एक क्रमबद्ध तथा स्थायी अभिलेख अङ्कित कर सके।

(ङ) आवश्यक निदेश—छात्रों को दिये जाने वाले निदेश यथा-शक्य स्पष्ट, पूर्ण, तथा संक्षिप्त होने चाहिएँ卐। निदेशों को पढ़ कर श्रेणी का दुर्बलतम छात्र भी यह समझ ले कि उसे क्या करना है, भले ही वह प्रश्नों के उत्तर न दे सके। निदेशों द्वारा छात्रों को यह बतलाया जाना चाहिए कि उन्हें प्रश्नों के उत्तर कहाँ और किस प्रकार लिखने हैं, उत्तर देने के लिये उन्हें कितना समय दिया गया है, तथा अङ्कन के समय किन भूलों के कारण कम अङ्क दिये जाएँगे। निदेशों का विस्तार छात्रों की परिपक्वता तथा अनुभव पर आधारित होना चाहिए।

卐 *"The students should not miss questions merely because the directions are not clear". -Book No. 13, P. 93*

(३) अन्वीक्षा-प्रक्रम (Stage of Trying out)

अन्वीक्षा प्रक्रम पर मुख्यतः चार प्रश्नों पर विचार किया जाता है : (क) परीक्षा के लिये सामान्य दशाएँ, (ख) समय-छूट, (ग) अङ्कन-प्रक्रिया, तथा (घ) उत्तर-कुञ्जियों (*Scoring Keys*) एवं अङ्कन-नियम। इनमें से प्रत्येक विषय विशेष नियमों द्वारा शासित होता है।

(क) परीक्षा के लिये सामान्य दशाएँ—परीक्षा की अन्वीक्षा करते समय परीक्षा के लिये सामान्य दशाएँ बनाये रखना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि किसी भी परीक्षा के प्रत्युत्तरों के निर्धारण पर उन दशाओं का बड़ा प्रभाव पड़ता है जिनमें परीक्षा दी जाती है। इसके लिये सर्वोत्तम उपाय यह है कि परीक्षा श्रेणी-कोष्ठ (*Classroom*) में ही दी जाए क्योंकि छात्र उस पर्यावरण से पूर्णतः परिचित होते हैं।

(ख) समय-छूट—परीक्षा के लिये समय पर्याप्त होना चाहिए। वह आवश्यकता से कम अथवा अधिक न हो। समय-छूट का निर्धारण परीक्षा के प्रयोजन तथा छात्रों की योग्यता एवं अनुभव को दृष्टि से करना चाहिए। सामान्य बुद्धि परीक्षाओं की अपेक्षा नैदानिक परीक्षाओं को अधिक समय-छूट दी जानी चाहिए। अल्पायु छात्रों तथा लम्बे पदों के लिये भी अपेक्षया अधिक समय-छूट की आवश्यकता होती है।

(ग) अङ्कन प्रक्रिया—अङ्कन-प्रक्रिया यथा-शक्य सरल होनी चाहिए। नियमतः, वैषयिक परीक्षाओं के अङ्कन के लिये सर्वोत्तम उपाय यह है कि प्रत्येक ठीक प्रत्युत्तर के लिये एक अङ्क दिया जाए। जहाँ आधे अथवा तिहाई पदों के ठीक

प्रत्युत्तर अनुमान (*Guessing*) से दिये जा सकते हैं---यथा सत्य-मिथ्या पदों की स्थिति में—वहाँ शोधन-सूत्र (*Correction Formula*) का प्रयोग किया जाना चाहिए। सामान्य शोधन-सूत्र निम्नलिखित है :

$$S = \frac{W}{n-1}$$

यहाँ 'S' का प्रयोग "अनुमान के लिये शोधित अङ्कों" के लिये, 'R' का प्रयोग "ठीक प्रत्युत्तरों की संख्या" के लिये, 'W' का प्रयोग "अशुद्ध प्रत्युत्तरों की संख्या" के लिये, तथा 'n' का प्रयोग "प्रत्येक पद के लिये उपस्थापित प्रत्युत्तरों" के लिये किया गया है। द्वि-प्रत्युत्तर तथा त्रि-प्रत्युत्तर परीक्षाओं की स्थिति में इस सूत्र के क्रमशः निम्नलिखित रूप हो जाते हैं :

(i) $S = R - W$ तथा (ii) $S = R - \frac{1}{2} W$

(घ) उत्तर कुञ्जियाँ एवं अङ्कन नियम--वास्तविक अङ्कन से पूर्व उत्तर कुञ्जियाँ अवश्य बना ली जानी चाहिएँ और अङ्कन उन्हीं की सहायता से किया जाना चाहिए। यही नहीं, अङ्कन विशेष नियमों के अधीन होना चाहिए। अङ्कन नियम स्पष्ट होने चाहिएँ।

(४) अर्हापण प्रक्रम (Evaluation Stage)

अङ्कन के पश्चात्, स्वयं परीक्षा के गुण तथा छात्रों के प्रत्युत्तरों के गुण की दृष्टि से परीक्षा के परिणामों का निर्वचन (*Interpretation*) तथा मूल्याङ्कन अर्हापण-प्रक्रम पर किया जाता है। परिणामों का निर्वचन तथा मूल्याङ्कन करने के लिये तीन मुख्य विषयों पर विचार किया जाता है : (क) परीक्षा की कठिनता, (ख) परीक्षा की मान्यता, (ग) विश्वसनीयता-गुणक

(*Reliability Coefficient*)। अर्हापण-प्रक्रम के विभिन्न सिद्धान्त इन्हीं तीन प्रश्नों से सम्बद्ध होते हैं।

(क) परीक्षा की कठिनता—एक परीक्षा की कठिनता उसकी मान्यता की एक स्थूल सूचना होती है। सम्पूर्णतः एक परीक्षा की कठिनता यह ज्ञात करके निर्धारित की जाती है कि प्राप्त माध्य (*Average*) अङ्क अधिकतम अङ्क का कितना प्रति शत है। परीक्षा के वैयक्तिक पदों की कठिनता प्रत्येक पद के लिये सफल प्रत्युत्तरों का प्रति शत ज्ञात करके प्राप्त की जाती है।

(ख) परीक्षा की मान्यता—परीक्षा के वैयक्तिक पदों की मान्यता उनकी उस योग्यता से निर्धारित की जाती है जिससे वह एक परीक्षा में उच्च क्रमन्यास (*Rank*) करने वाले तथा निम्न क्रमन्यास करने वाले छात्रों में विभेद करती है। वे पद सर्वोत्तम होते हैं जिनमें उच्च समूह के ठीक प्रत्युत्तरों का प्रति शत निम्न समूह के ठीक प्रत्युत्तरों के प्रति शत से अधिक होता है; वे पद अनुपयोगी होते हैं जिनमें प्रति शत समान होता है; तथा वे पद बाधक होते हैं जिनमें उच्च समूह के ठीक प्रत्युत्तारों का प्रति शत निम्न समूह के ठीक प्रत्युत्तारों के प्रति शत से पीछे होता है। शून्य अथवा नकारात्मक विभेद प्रदर्शित करने वाले पदों को या तो पारितोषित किया जाना चाहिए अथवा पूर्णतः त्याग दिया जाना चाहिए।

(ग) विश्वसनीयता-गुणक—कभी कभी परीक्षा का विश्वसनीयता-गुणक प्राप्त करना भी वाञ्छनीय होता है। विश्वसनीयता-गुणक तभी वास्तविक महत्व के होंगे जब वे अन्य मानदण्डों से समर्थित होंगे। परीक्षा लेने वाले छात्रों से परीक्षा-पदों की समालोचना कराना भी अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा।

८–वैषयिक परीक्षा के लाभ : विशेषताएँ

ग्रीन तथा जौर्जेन्सन के मतानुसार वैषयिक परीक्षाओं के चार मुख्य लाभ होते हैं जो निम्नलिखित हैं :

(१) *वैषयिकता*

एक वैषयिक परीक्षा में प्रश्नों को इस प्रकार उपस्थित किया जाता है कि उत्तर संक्षिप्त होते हैं, तथा सामान्यतः एक प्रश्न का केवल एक ही ठीक उत्तर शक्य होता है। फलतः अनेक व्यक्तियों द्वारा अङ्कन किया जाने पर भी क्रमबन्धन की परिशुद्धता पर वैयक्तिक तत्व का प्रभाव नहीं पड़ता।

(२) *विश्वसनीयता*

परीक्षा में वैषयिक प्रश्नों का प्रयोग होने के कारण परीक्षा की विश्वसनीयता उच्च हो जाती है। अन्य शब्दों में, एक वैषयिक परीक्षा की एक विशेषता यह भी होती है कि उसका प्रयोग चाहे जितनी बार किया जाए प्रत्येक प्रयोग से वही अङ्क प्राप्त होंगे जो प्रथम प्रयोग से प्राप्त हुए थे।

(३) *प्रत्युत्तर-संक्षेप (Brevity of Responses)*

वैषयिक परीक्षाओं के प्रश्नों का रूप ऐसा होता है कि उनका उत्तर देते समय छात्रों को न्यूनतम लेखन-कार्य करना होता है। प्रायः वैषयिक प्रश्नों के लिये एक शब्द अथवा शब्दबन्ध (*Phrase*) में उत्तर की आवश्यकता होती है। अतः द्रुत एवं प्रवाही लेखकों की भाषा का रूप परीक्षक को प्रभावित नहीं कर पाता।

(४) *प्रचुर न्यादर्शन (Larger Sampling)*

वैषयिक प्रश्नों के उत्तर अत्यन्त संक्षिप्त होते हैं। फलतः एक वैषयिक परीक्षा में अनेक पदों का समावेश किया जा

की आवश्यकता होती है। यह सत्य है, परन्तु इसके लिये प्रतिलिपि-यन्त्रों (*Duplicating Machines*) की व्यवस्था की जा सकती है। इसके अतिरिक्त, छात्रों से टैबलेट पत्र (*Tablet Paper*) पर प्रत्युत्तर लिखवा कर द्विगुणन के व्यय को कम किया जा सकता है।

(४) *सांख्यिकीय रीतियों पर अत्यधिक बल*

वैषयिक परीक्षाओं की स्थिति में, उद्दीपनों के रूप तथा प्रत्युत्तरों की प्रकृति के विश्लेषण की अपेक्षा सांख्यिकीय रीतियों पर अत्यधिक बल दिया जाता है। परन्तु कोई सांख्यिकीय परिष्कार एक परीक्षा की विश्वसनीयता अथवा मान्यता को वैयक्तिक पदों के निर्माण तथा मापित होने के लिये क्षेत्रों से उनके चुनाव के स्तर से ऊपर नहीं उठा सकता। अतः सम्पूर्ण परीक्षण-परिस्थिति के गुणात्मक तथा तर्कसङ्गत विश्लेषण की ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।

१०—उपसंहार

निबन्ध तथा वैषयिक परीक्षाओं के विभिन्न पक्षों पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार करने के पश्चात् हम इसी निष्कर्ष तक पहुँचते हैं कि अध्यापकों के लिये निबन्ध-प्ररूप परीक्षाएँ उतनी ही महत्वपूर्ण हैं जितनी नवीन-प्ररूप परीक्षाएँ। निस्सन्देह, यथा-समय तथा यथोचित रूप से प्रयोग किये जाने पर प्रत्येक परीक्षा प्ररूप अत्यधिक उपयोगी सिद्ध होगा। अतः अध्यापकों को उनके बारे में अतिमार्गी नहीं होना चाहिए। यदि हमें भारत की वर्तमान अत्यन्त सदोष परीक्षा-पद्धति में सुधार करना है तो भारतीय अध्यापकों को दोनों परीक्षा-प्ररूपों का सम्यक् ज्ञान प्राप्त करना चाहिए तथा परीक्षा-निर्माण में दक्षता प्राप्त करनी चाहिए।

पञ्चम अध्याय

प्रमापीकृत परीक्षा

१—प्रस्तावना

प्रमापीकरण (*Standardization*) के आधार पर नवीन परीक्षाओं के दो भेद किये जा सकते हैं : (१) वैषयिक अथवा अप्रमापीकृत परीक्षाएँ, तथा (२) प्रमापीकृत परीक्षाएँ, जिन्हें औपचारिक वैषयिक परीक्षाएँ (*Formal objective Tests*) तथा प्रमाप परीक्षाएँ (*Standard Tests*) भी कहा जाता है। वैषयिक अथवा अप्रमापीकृत परीक्षाओं का वर्णन चतुर्थ अध्याय में किया जा चुका है। प्रस्तुत अध्याय में प्रमापीकृत परीक्षाओं के विभिन्न पक्षों पर विचार किया जाएगा।

२—प्रमापीकृत परीक्षा का अर्थ

"प्रमापीकृत" का शब्दार्थ है "एक प्रमाप अथवा स्तर तक लाया हुआ"। अतः सामान्य भाषा में प्रमापीकृत परीक्षा उस परीक्षा को कहा जाएगा जो एक प्रमाप अथवा स्तर तक ला दी गयी हो। अन्य शब्दों में, जिसका प्रमापीकरण कर दिया गया हो। आर० ऐम० थौमस के मतानुसार 'स्थूल रूप से, एक प्रमापीकृत परीक्षा वह परीक्षा होती है जो इतने व्यक्तियों को दी जा चुकी है कि परीक्षा-निर्माता पर्याप्त परिशुद्ध रूप से यह निश्चय करने के लिये योग्य हो चुके हैं कि पाठशाला में

एक विशेष आयु अथवा श्रेणी का एक प्रारूपिक (*Typical*) व्यक्ति इसमें कितना सफल होगा।"卐 सी० वी० गुड के शब्दों में प्रमापीकृत परीक्षा वह परीक्षा होती है "जिसके लिये विषयवस्तु अनुभवतः चुनी तथा जाँची गयी है, जिसके लिये सामान्यक (*Norms*) स्थापित किये जा चुके हैं, जिसके लिये प्रबन्धन तथा अङ्कन की एकसम रीतियाँ विकसित की चुकी हैं, तथा जो वैषयिकता की एक अपेक्षया उच्च मात्रा के साथ अङ्कित की जा सकती है।❀" सी०सी० रौस तथा जे०जे० के मतानुसार "परीक्षाएँ उस समय प्रमापीकृत कही जाती हैं जब वे इस प्रकार निर्मित की जाती हैं कि वे एकसम दशाओं में प्रशासित एवं निर्वचित की जा सकती हैं।†" न्यूकिर्क तथा ग्रीन के मतानुसार "एक परीक्षा प्रमापीकृत होती है (१) यदि यह उन

卐 *"Broadly speaking, a standardized test is one which has been given to so many people that the test-makers have been able to determine fairly accurately how well a typical person of a particular age or grade-in-school will succeed in it."* —*Book No. 13, P. 70*

❀ "TEST, STANDARDIZED : *a test for which content has been selected and checked empirically, for which norms have been established, for which uniform methods of administering and scoring have been developed, and which may be scored with a relatively high degree of objectivity."* —*Book No. 2, P. 421*

† *"Tests are said to be standardized when they have been so constructed that they can be administered and interpreted under uniform conditions".* —*Book No. 4, P. 760*

अभ्यासों से मिलकर बनी हुई है जो सामान्य अध्यापन-व्यवहार के प्रकाश में चुने गये हैं तथा सहज कठिनता के विषय में अर्हापित (*Evaluated*) किये गये हैं और (२) यदि यह निष्पादन के स्तरों में परिणामों के निर्वचन (*Interpretation*) की अनुज्ञा देते हुए सामान्यकों (*Norms*) अथवा प्रमापों (*Standards*) द्वारा अनुसरित है।"卐

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर, सामान्य शब्दों में, प्रमापीकृत परीक्षाओं के अर्थ के बारे में पाँच निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं : (१) उनके प्रबन्ध तथा व्याख्या के लिये एकसम दशाओं की आवश्यकता होती है, (२) उनके प्रबन्धन तथा अङ्कन के लिये विशेष रीतियाँ होती हैं, (३) उनका निर्माण करने वाले पदों को अत्यन्त सावधानी से चुना तथा अर्हापित किया जाता है, (४) उनके लिये सामान्यकों (*Norms*) अथवा प्रमापों (*Standards*) की स्थापना की जाती है, तथा (५) वे अपेक्षया अधिक वैषयिक होती हैं।

३—प्रमापीकृत तथा वैषयिक परीक्षाओं में अन्तर : प्रमापीकरण के आधार

प्रमापीकृत परीक्षाओं के अर्थ को अधिक स्पष्ट रूप से समझने के लिये प्रमापीकृत तथा वैषयिक परीक्षाओं के अन्तर

卐 *A test is standardized (i) if it is composed of exercises that have been selected in the light of usual teaching practice and evaluated as to innate difficulty, and (2) if it is accompanied by norms or standards permitting the interpretation of results in levels of accomplishment."*

Book No. 16, P. 13

का समझना अत्यन्त आवश्यक है। बाह्य संरचना की दृष्टि से प्रमापीकृत तथा वैषयिक परीक्षाओं में कोई अन्तर प्रतीत नहीं होता, परन्तु वास्तव में दोनों में बड़ा अन्तर होता है। इस अन्तर को "प्रमापीकरण" शब्द द्वारा निर्दिष्ट किया जा सकता है। प्रमापीकरण की दृष्टि से, प्रमापीकृत तथा वैषयिक परीक्षाओं के बीच अन्तर के पाँच आधार होते होते हैं : (१) परीक्षण-परिस्थिति, (२) विषयवस्तु, (३) प्रबन्धन-रीतियाँ (*Methods of Administration*), (४) अङ्कन-रीतियाँ, तथा (५) निर्वचन-विधा (*Process of Interpretation*)। अन्य शब्दों में, एक प्रमापीकृत परीक्षा के ये पाँच पक्ष प्रमापीकृत होते हैं जबकि एक वैषयिक परीक्षा की स्थिति में इन पक्षों का प्रमापीकरण नहीं किया जाता।

(१) परीक्षण-परिस्थिति का प्रमापीकरण

पी० ई० वरनन के मतानुसार "वह प्रथम पग जिसे एक परीक्षक लेता है, परीक्षण-परिस्थिति का प्रमापीकरण करना है। अन्य शब्दों में, वह समस्त छात्रों के लिये यथा-शक्य समान परिस्थितियों का निर्माण करता है। इसके लिये वह प्रमाप (*Standard*) भवनों (सामान्यतः श्रेणीकोष्ठ जिनसे छात्र पूर्णतः परिचित होते हैं) तथा निश्चित निदेशों का प्रयोग करता है क्योंकि प्रमाप भवनों तथा निश्चित निदेशों के अभाव में विभिन्न बच्चों के पालनों (*Performances*) की तुलना करना समुचित न होगा।

(२) विषयवस्तु का प्रमापीकरण

विषयवस्तु को प्रमापीकृत करने के लिये दक्ष व्यक्तियों द्वारा परीक्षा के प्रत्येक पद की सावधानी से परिनिरीक्षा

(*Scrutiny*) की जाती है, तथा कठोर संपरीक्षा-विधा (*Experimental Process*) द्वारा उसकी कठिनता एवं मूल्य को निर्धारित कर दिया जाता है।

(३) प्रबन्धन-रीति का प्रमापीकरण

प्रबन्धन-रीति को प्रमापीकृत करने के लिये निश्चित निदेशों (*Directions*) का निर्माण किया जाता है तथा समय-सीमा निर्धारित कर दी जाती है। निदेशों द्वारा परीक्षार्थियों एवं अध्यापकों (परीक्षकों) दोनों को यह सूचना दी जाती है कि उन्हें क्या करना है तथा किस प्रकार करना है।

(४) अङ्कन-रीति का प्रमापीकरण

अङ्कन-रीति का प्रमापीकरण करने के लिये अङ्कन-कुञ्जियों (*Scoring Keys*) का निर्माण किया जाता है तथा उत्तर-पत्रों का अङ्कन करने के लिये एवं परीक्षा के प्रत्येक भाग पर तथा सम्पूर्ण परीक्षा पर अङ्कों का निर्धारण करने के लिये निश्चित नियम बना दिये जाते हैं।

(५) निर्वचन-विधा का प्रमापीकरण

सम्पूर्ण निर्वचन-विधा को प्रमापीकृत करना एक अत्यन्त कठिन कार्य होता है, अतः अधिकांश प्रमापीकृत परीक्षाएँ अंशतः प्रमापीकृत होती है, सम्पूर्णतः नहीं। इसका अर्थ यह होता है कि विभिन्न अङ्कों की व्याख्या करने के लिये तुलनात्मक सामग्री, अर्थात्, छात्रों की बृहत् संख्या द्वारा निर्मित माध्य अङ्क (*Average Scores*), की सारणियाँ (*Tables*) प्राप्य बना दी जाती हैं।

४–प्रमापीकृत परीक्षाओं की उत्पत्ति एवं विकास

प्रथम अध्याय (पृष्ठ १२-१८) तथा चतुर्थ अध्याय (पृष्ठ ७२-

७५) में वैषयिक मापन तथा वैषयिक परीक्षाओं की उत्पत्ति एवं विकास के प्रश्न पर पर्याप्त प्रकाश डाला जा चुका है। प्रमापीकृत परीक्षाओं के विकास का इतिहास मापन तथा वैषयिक परीक्षाओं के विकास के इतिहास से पृथक् नहीं है, क्योंकि दोनों की उत्पत्ति निबन्ध परीक्षाओं के दोषों एवं अभावों को दूर करने के लिये हुई थी। यह भी स्पष्ट किया जा चुका है कि प्रमापीकृत परीक्षाओं की उत्पत्ति (१९०८) अध्यापक-निर्मित वैषयिक परीक्षाओं (१९२०) से लगभग द्वादश वर्ष पूर्व हुई थी। परन्तु वैषयिक मापन के विचार का जन्म १८६४ में ही हो चुका था। प्रमापीकृत परीक्षाओं की दृष्टि से वैषयिक मापन के इतिहास को तीन कालों में विभाजित किया जा सकता है: (१) १८६४–१९०८, (२) १९०८–१९१७ तथा (३) १९१७ से अब तक।

प्रथम काल की महत्वपूर्ण घटनाएँ मुख्यतः वैषयिक मापन के सैद्धान्तिक पक्ष तक ही सीमित हैं। इस काल की तीन घटनाएँ विशेषतः उल्लेखनीय हैं: (i) ज्यौर्ज फिशर की श्रेणी पुस्तकों (*Scale Books*) का अस्तित्व, (ii) डिपार्टमेण्ट ऑफ सुपरिन्टेन्डेन्स ऑफ दी नैशनल ऐड्यूकेशन ऐसोसिएशन" के १८९७ के सत्र में डॉ० राइस की वर्णयोग-विषयक घोषणा, तथा (iii) १९०४ में थौर्नडाइक की सुप्रसिद्ध पुस्तक "*Theory of Mental and Social Measurement*" का प्रकाशन, जिसने मापन आन्दोलन को जन्म दिया। प्रमापीकृत परीक्षाएँ मापन आन्दोलन का ही एक परिणाम थीं।

द्वितीय काल प्रमापीकृत परीक्षाओं की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस समय अनेक प्रमापीकृत परीक्षाओं का जन्म हुआ जिनका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है:

(१) १९०८ में स्टोन (*Stone*) की प्रारम्भिक अङ्कगणित-विषयक निष्पन्न परीक्षा का प्रकाशन।

(२) १९०९ में करटिस (*Courtis*) की प्रारम्भिक अङ्क-गणित विषयक निष्पन्न परीक्षा का प्रकाशन।

(३) १९१० में थौर्नडाइक (*Thorndike*) की हस्तलेख-श्रेणी (*Handwriting Scale*) की उपस्थिति।

(४) १९११ में आयर्स (*Ayres*) की हस्तलेख-श्रेणी का प्रकाशन।

(५) १९१२ में हिलगस (*Hillegas*) की रचना-श्रेणी (*Composition Scale*) तथा थौर्नडाइक की गुण-श्रेणी (*Quality scale*) का प्रकाशन।

(६) १९१३ में बकिंघम (*Bunkingham*) की वर्णयोग-श्रेणी (*Spelling Scale*) का प्रकाशन।

(७) १९१६ में एक अङ्कगणित-श्रेणी तथा एक भाषा-श्रेणी का निर्माण करते समय क्रमशः वूड़ी (*Woody*) तथा ट्रैब (*Trabue*) द्वारा कठिनता-मानदण्ड का प्रयोग।

तृतीय काल प्रमापीकृत परीक्षाओं की दृष्टि से इसलिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि इस काल में प्रमापीकृत परीक्षाओं का निर्माण अत्यन्त द्रुत गति से हुआ और उनके दोषों को दूर करने के लिये असाधारण प्रयत्न किये गये। इस समय प्रमापीकृत परीक्षाओं के निर्माण की गति का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि १९१७ से १९२८ तक की अवधि में लगभग १३०० प्रमापीकृत तथा अर्ध-प्रमापीकृत परीक्षाएँ सूची-बद्ध की गयीं और १९४० में उनकी संख्या २६०० से भी अधिक हो चुकी थी।

५ – प्रमापीकरण के पद : प्रमापीकरण-विधा (*Process*)

पहले ही कहा जा चुका है कि बाह्य संरचना तथा निर्माण की प्रविधि (*Technique*) की दृष्टि से प्रमापीकृत तथा वैषयिक परीक्षाओं में कोई अन्तर नहीं होता। उनमें यही मुख्य अन्तर होता है कि पूर्वोक्त परीक्षाएँ प्रमापीकृत होती हैं; उत्तरोक्त अप्रमापीकृत। वस्तुतः अनेक प्रमापीकृत परीक्षाओं का आरम्भ कुछ अध्यापकों द्वारा निर्मित अनौपचारिक वैषयिक परीक्षाओं के ही रूप में हुआ है।卐 प्रमापीकृत तथा वैषयिक परीक्षाओं के निर्माण के प्रक्रमों (*Stages*) तथा पदों (*Steps*) में अधिक अन्तर नहीं होता। जब एक अनौपचारिक वैषयिक परीक्षा प्रमापीकरण-विधा (*Process of Standardization*) में होकर निकल जाती है तब वह एक प्रमापीकृत परीक्षा हो जाती है। अतः यहाँ केवल उन पदों का वर्णन किया जाएगा जो प्रमापीकरण-विधा का निर्माण करते हैं। अब यह प्रश्न उठता है कि प्रमापीकरण का क्या अर्थ होता है ? जे० ऐल० मरसिल के मतानुसार "एक परीक्षा के प्रमापीकरण का अर्थ होता है उन परिणामों की व्याख्या के लिये सामान्यकों (*Norms*) की स्थापना जो यह प्रदान करती है।"❀ चार्ल्स रसिल के शब्दों में "प्रमापीकरण का अर्थ होता है कि परीक्षा

卐 *"Many of our present day standardized tests began their existence as informal objective examinations".*

—*Book No. 6, P. 228.*

❀ *"By the standardization of a test is meant the establishment of norms for the interpretation of the results it yields".* —*Book No. 17, P. 61.*

प्राप्त करने वाले समस्त बच्चे ठीक ठीक समान रूप में समझे जाने चाहिएँ; कि विभिन्न उत्तरों के साथ एकल प्रश्न का उत्तर देने वाले सहस्रों बच्चों में से उन समस्त (बच्चों) को समान श्रेयस् (*Credit*) प्राप्त करना चाहिए जिन्होंने प्रश्न का उत्तर समान रूप में दिया था; और कि श्रेयस् की मात्रा प्रश्न की कठिनता के यथानुपात होनी चाहिए।❀ प्रमापीकरण-विधा में निम्नलिखित पदों का समावेश होता है :

(१) शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण

वैषयिक परीक्षा का निर्माण करते समय सर्व प्रथम शिक्षण के सामान्य तथा विशिष्ट उद्देश्यों को निर्धारित किया जाना चाहिए। शिक्षण के उद्देश्यों में कौशलों, ज्ञानों, संबोधों (*Concepts*), अभिवृत्तियों, अवबोधों (*Understandings*), तथा उन प्रयोगों (*Applications*) का समावेश होता है जिन्हें मापा जाता है। शिक्षण के कुछ क्षेत्रों में ये उद्देश्य अत्यन्त स्पष्ट होते हैं और सुगमतापूर्वक पहिचाने जा सकते हैं। जिन क्षेत्रों में ये अनिश्चित प्रकृति के होते हैं वहाँ इनका निर्धारण कठिनता से होता है। परीक्षा की प्रकृति का निर्धारण शिक्षा के उद्देश्यों पर निर्भर रहता है।

❀ *"Standardization meant that all the children receiving the test should be treated in exactly the same way; that of thousands of children answering a single question with varying answers, all who answered the question in the same way should receive the same credit; and that the amount of credit should be proportional to the difficulty of the question".* *--Book No. 12, P. 13*

(२) शिक्षण-क्षेत्रों अथवा परीक्षण-विषयवस्तु का निर्धारण

प्रमापीकृत परीक्षाओं के निर्माताओं को उस विषयवस्तु पर परीक्षाओं का निर्माण करना होता है जिसका वे विशेष रूप से अध्यापन नहीं करते। इसके अतिरिक्त उन्हें छात्रों के एक ऐसे समूह के लिये परीक्षाओं का निर्माण करना होता है जिनसे वे एक अध्यापक के रूप में प्रत्यक्षतः परिचित नहीं होते। फलतः सन्तोषजनक परीक्षाओं का निर्माण करने के लिये परीक्षण की विषयवस्तु का निर्धारण करते समय वे परीक्षा में पाठचर्या के केवल उन पक्षों का समावेश करते हैं जो शिक्षण-बल (*Instructional Emphasis*) प्राप्त करने के लिये संभाव्य होते हैं। अन्य शब्दों में, वे ऐसी परीक्षण-विषयवस्तु का चुनाव करते हैं जो पर्याप्त सामान्य हो और ऐसी किसी भी पाठशाला-परिस्थिति के योग्य हो जिसमें उस पाठचर्या को पढ़ाया जाता है। परीक्षण की विषयवस्तु का निर्धारण शिक्षा के उद्देश्यों पर निर्भर रहता है।

(३) आधारभूत संबोधों (Basic Concepts) का निर्माण: विषयवस्तु का विश्लेषण

प्रमापीकृत परीक्षा के अन्तर्गत होने वाले शिक्षण के क्षेत्रों का निर्धारण करने के पश्चात्, परीक्षा-निर्माता को आधारभूत संबोधों का प्रतिनिधित्व करने वाले तत्वों में विषयवस्तु का विश्लेषण करना चाहिए। इन महत्वपूर्ण तत्वों को किसी वैषयिक रूप में कहा जा सकता है। वह वैषयिक रूप पाठचर्या के उद्देश्यों तथा छात्रों की परिपक्वता के स्तर पर निर्भर रहेगा। प्रायः इन आधारभूत संबोधों को दो अथवा तीन भिन्न वैषयिक रूपों में बनाना आवश्यक है। परन्तु अन्तिम

प्रयोग के लिये केवल उन प्ररूपों को चुना जाना चाहिए जो संपरीक्षात्मक दशाओं में सर्वोत्तम कार्य करें।

(४) *प्रारम्भिक प्रारूप (Preliminary Draft) का निर्माण*

परीक्षा की मान्यता सामान्यतः विषयवस्तु की मान्यता तथा परीक्षा के वैयक्तिक पदों की मान्यता पर निर्भर रहती है। अतः शिक्षण के क्षेत्रों को सावधानी से निर्धारित, तथा आधार संबोधों का निर्माण करने के पश्चात् परीक्षा के पदों का निर्माण अत्यन्त सावधानी से किया जाना चाहिए। आरम्भ में परीक्षा के पदों की मान्यता परीक्षा-निर्माता की योग्यता पर निर्भर रहती है। पदों में कम से कम तीन विशेषताएँ अवश्य हों : (१) वे वैषयिक रूप के हों, (२) वे परीक्षित होने वाले प्रत्येक उद्देश्य के लिये सर्वोत्तम उपयुक्त हों, तथा (३) वे छात्र-व्यवहार के वाञ्छित प्ररूप को मापते हों। परीक्षा-पदों की अनुकूलतम कठिनता के प्रश्न पर विभिन्न विचारक एकमत नहीं हैं। परन्तु वे सामान्यतः इस पर सहमत हैं कि सम्पूर्ण परीक्षा में सामान्य छात्र के लिये ५० प्रति शत कठिनता होनी चाहिए।卐 पदों में कठिनता की एक विस्तृत सीमा का समावेश होना चाहिए और वे सरल से कठिन तक क्रमबद्ध होने चाहिएँ। एक शैक्षणिक परीक्षा में ऐसे पदों का समावेश नहीं किया जाना चाहिए जो प्राप्ति के विभिन्न स्तरों पर छात्रों के बीच प्रत्यक्षतः विभेद न करते हों। अन्य शब्दों में, परीक्षा के पदों में विभेदकारी शक्ति होनी चाहिए। परीक्षा-पदों की भाषा सरल एवं स्पष्ट होनी चाहिए। पद इस

卐 *"They are in general agreement, however, that the test as a whole should have about 50 percent difficulty for the average pupil".* —*Book No. 14, P, 50.*

प्रकार क्रमबद्ध होने चाहिएँ कि उनके उत्तर नियमित क्रम में न दिये जा सकें। पदों का चुनाव विभिन्नता के सिद्धान्त (*Principle of Variety*) के अनुसार होना चाहिए।

(५) विशिष्ट निदेशों (Directions) तथा न्यादर्शों (Samples) का निर्माण

वैषयिक परीक्षा के अभ्यासों से पूर्व विशिष्ट निदेशों का दिया जाना अत्यन्त आवश्यक है।❀ निदेश सरल एवं स्पष्ट भाषा में होने चाहिएँ। समस्त निदेशों में दो कथनों का समावेश होना चाहिए : (१) छात्रों को यह सूचना दी जानी चाहिए कि क्या दिया हुआ है, तथा (२) छात्रों को यह सूचना दी जानी चाहिए कि उन्हें क्या करना है, अर्थात्, उन्हें अपने उत्तर कहाँ और किस प्रकार लिखने हैं। निदेश छात्रों के प्रत्युत्तरों का निर्धारण करते हैं। यही नहीं, निदेशों के साथ आवश्यकतानुसार न्यादर्श उपस्थित करके भी छात्रों का मार्ग प्रदर्शन किया जा सकता है। अन्य शब्दों में, निदेशों के साथ नमूने के रूप में एक एक प्रश्न का उत्तर लिख कर छात्रों को दिखलाया जा सकता है। निदेश ऐसे होने चाहिएँ कि वे प्रश्नों के उत्तर न सुझाते हों।

(६) सामान्य दशाओं का निर्माण

उन दशाओं का, जिनमें एक परीक्षा दी जाती है, परीक्षा के प्रत्युत्तरों पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। अतः एक प्रमापीकृत परीक्षा के उत्तरोत्तर प्रयोगों के लिये सामान्य दशाओं का

❀ *"Objective test exercises should always be preceded by explicit directions as to just what is to be done".*

--Book No. 10, PP. 95-96.

होना अत्यन्त आवश्यक है। अन्य शब्दों में, छात्र उस पर्यावरण से पूर्णतः परिचित हों, जिसमें उन्हें परीक्षा लेनी है।* सामान्यतः छात्रों को उनके अपने श्रेणीकोष्ठों में परीक्षा देना सर्वोत्तम उपाय है।

(७) *परीक्षक-नियमावलि (Examiner's Manual) का निर्माण*

परीक्षा देते समय परीक्षक श्रेणी में छात्रों से जो कुछ कहता है उसका परीक्षा के परिणामों पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। अतः परीक्षक-नियमावलि का विशेष महत्व होता है। परीक्षक-नियमावलि में समय, अङ्कन, इत्यादि के बारे में दिये जाने वाले ब्यौरों का समावेश होता है। वस्तुतः परीक्षक-नियमावलि परीक्षकों के लिये निदेशों का एक संग्रह होती है। छात्रों को दिये जाने वाले निदेश परीक्षा-पत्र (*Test Sheet*) पर मुद्रित होते हैं।

(८) *परीक्षा का प्रथम प्रदान (Administration)*

परीक्षा के प्रारम्भिक प्रारूप (*Preliminary Draft*) का निर्माण करने के पश्चात् परीक्षा को प्रारूपिक (*Typical*) श्रेणीकोष्ठों में संपरीक्षात्मक (*Experimental*) दशाओं के अधीन दिया जाना चाहिए। प्रथम प्रदान के दो मुख्य उद्देश्य होते हैं: (१) परीक्षा के सदोष एवं संदिग्ध पदों को ज्ञात करना, तथा (२) विभिन्न पदों की सापेक्ष (*Relative*) कठिनता को ज्ञात करना। इस प्रकार परीक्षा के प्रथम प्रदान का उद्देश्य पदों का "समालोचनात्मक संशोधन" होता है। परीक्षा

---

* *"These tests require a standard method of administration, that is, they are to be administered to the students in exactly the same manner each time so that the results will be comparable."* —*Book No. 13, P. 70*

के लिये युक्तियुक्त रूप से पर्याप्त समय की व्यवस्था की जानी चाहिए।

(९) *परीक्षा का द्वितीय प्रदान*

परीक्षा के प्रारम्भिक प्रयोग के परिणामों के आधार पर अगले संपरीक्षात्मक प्रयोग के लिये परीक्षा के दो अथवा अधिक स्थूलरूपेण श्रेणीकृत (*Scaled*) रूपों का निर्माण किया जाना चाहिए। परीक्षा के इस द्वितीय प्रदान का प्रयोजन परीक्षा के रूपों का समीकार (*Equation*) होता है। परीक्षा के रूपों का समीकार करने के लिये अत्यन्त कठिन तथा अत्यन्त सरल पदों का परीक्षा के एक रूप से दूसरे रूप को तब तक स्थानान्तरण किया जाता है जब तक लगभग समानता न हो। एक परीक्षा के दो अथवा अधिक पदों को उस समय समीकृत (*Equated*) कहा जाता है जब वही व्यक्ति अथवा समान योग्यता वाले व्यक्ति प्रत्येक रूप पर व्यवहारतः समान अङ्क प्राप्त करते हैं। परीक्षा-रूपों का समीकार प्राप्त करने के लिये परीक्षा के पदों को कठिनता में निकटतः समान होना चाहिए।

(१०) *परीक्षा का तृतीय प्रदान*

परीक्षा का तृतीय प्रदान प्रमापीकरण की विधा में अन्तिम प्रदान होता है। इस प्रदान के दो उद्देश्य होते हैं: (१) परीक्षा के रूपों का अगला समीकार करना, तथा (२) सामान्यकों (*Norms*) की स्थापना करना। अन्य शब्दों में, तृतीय प्रदान का उद्देश्य परीक्षा का प्रमापीकरण करना होता है। अतः इस समय प्रमापीकरण समूह (*Standardization Group*) में छात्रों की संख्या जितनी अधिक होगी, परीक्षा का प्रमापीकरण उतना ही अधिक विश्वसनीय होगा। प्रमापी-

करण समूह में छात्रों की न्यूनतम संख्या २,००० अवश्य होनी चाहिए।

(११) सामान्यक (Norms) प्राप्त करना

प्रमापीकृत तथा वैषयिक परीक्षाओं में यही आधारभूत अन्तर होता है कि पूर्वोक्त परीक्षाओं के लिये सामान्यक प्राप्त किये जाते हैं जबकि उत्तरोक्त परीक्षाओं के लिये सामान्यक प्राप्त नहीं किये जाते। सामान्यक एक प्रमापीकृत परीक्षा की आधारभूत विशेषता होते हैं। सामान्यकों का अर्थ सामान्य व्यक्ति का निष्पादन (*Performance*) होता है। सामान्यकों का विस्तृत वर्णन इसी अध्याय में अन्यत्र किया गया है।

(१२) अङ्कन-कुञ्जियों (Scoring Keys) का निर्माण

अङ्कन-कुञ्जियों का निर्माण अङ्कन में शीघ्रता की दृष्टि से किया जाता है। प्रमापीकृत परीक्षाओं की एक विशेषता यह भी होती है कि उनके पद अथवा प्रश्न परीक्षा-पत्रों पर एक निश्चित ढङ्ग में मुद्रित होते हैं, अर्थात्, प्रत्येक परीक्षा-पत्र पर प्रश्नों की संख्या, मुद्रों (*Types*) के परिमाण, मुद्रण के संस्थापन (*Setting*) का एक निश्चित क्रम, एक निश्चित व्यवस्था होती है। परीक्षा-पत्रों पर परीक्षा-पदों को इस प्रकार व्यवस्थित किया जाता है कि समस्त पदों के उत्तरों के लिये रिक्त स्थान दक्षिण-पार्श्व में हों। पुनः प्रत्येक परीक्षा-पत्र के परिमाण के अनुसार एक पृथक् गत्ते पर प्रत्येक प्रश्न का उत्तर मुद्रित करा लिया जाता है जिसका ढङ्ग परीक्षा-पत्र पर मुद्रित ढङ्ग से मिलता जुलता है। इन गत्तों को अङ्कन-कुञ्जियाँ कहते हैं। अङ्कन करते समय परीक्षक एक परीक्षा-पत्र के ऊपर समुचित अङ्कन-कुञ्जी रख कर उसका अङ्कन करके अगले परीक्षा-पत्र को अङ्कन के लिये उठा लेता है।

उदाहरण

परीक्षा-पत्र	उत्तर	अङ्कन-कुञ्जी
१. निर्देश—नीचे कुछ कथन दिये गये हैं। प्रत्येक कथन के अन्त में एक गोलाभिवार ( ) है। शुद्ध कथन के लिये धन (+) चिन्ह तथा अशुद्ध कथन के लिये शून्य (०) चिन्ह गोलाभिवारों में यथा-स्थान लगाइए।		
१. राम चन्द्रवंश के राजा थे।	(०)	(०)
२. राम के पिता का नाम दशरथ था।	(+)	(+)
३. राम का जन्म अयोध्या में हुआ था।	(+)	(+)
४. राम के बड़े भाई का नाम लक्ष्मण था।	(०)	(०)
२. निर्देश—प्रत्येक रेखा में उस शब्द को रेखाङ्कित कीजिए जिसका उस रेखा के अन्य शब्दों से सम्बन्ध न हो। काटे हुए शब्दों को रिक्त गोलाभिवारों में यथा-स्थान लिखिए।		
(१) प्रयाग, काशी, मद्रास, दिल्ली, अमृतसर	(मद्रास)	(मद्रास)
(२) गंगा नर्मदा, गोदावरी, हिमालय, सतलज	(हिमालय)	(हिमालय)
(३) सागर, रेगिस्तान, झील, नदी, खाड़ी	(रेगिस्तान)	(रेगिस्तान)
(४) सेब, गाय, कुत्ता, बिल्ली, घोड़ा, हाथी	(सेब)	(सेब)
(५) उत्तरप्रदेश, बिहार, बंगाल, मद्रास चीन	(चीन)	(चीन)

(१३) अन्तिम परीक्षण (*Final Checkup*)

अन्तिम परीक्षण के समय परीक्षा के बारे में तीन प्रश्नों पर विचार किया जाता है : (१) जहाँ आवश्यक एवं सम्भव हो वहाँ मान्यता-गुणक (*Validity Co-efficients*) प्राप्त किये जाने चाहिएँ, (२) परीक्षा के अन्तिम रूप अथवा रूपों के लिये परीक्षा की विश्वसनीयता स्थापित की जानी चाहिए, (३) सामान्यकों की विश्वसनीयता, अर्थात्, सामान्यकों की सर्वव्याप्ति स्थापित की जानी चाहिए। अन्य शब्दों में, अन्तिम परीक्षण-प्रक्रम पर परीक्षा की मान्यता एवं विश्वसनीयता, तथा सामान्यकों की विश्वसनीयता-विषयक अन्तिम साक्ष्य (*Evidence*) का अन्तिम परीक्षण किया जाना चाहिए।

(१४) परीक्षा का मुद्रण

समस्त प्रमापीकृत परीक्षाओं का मुद्रित होना आवश्यक नहीं है। उदाहरणार्थ, विश्व-विख्यात "बिने साइमन बुद्धि-परीक्षा" मुद्रित नहीं है। प्रमापीकृत परीक्षाओं का मुद्रण एक अत्यन्त उत्तरदायित्व का कार्य होता है क्योंकि उनके रूप अथवा विषयवस्तु में अन्तर पड़ते ही उनके परिणामों में अन्तर हो जाता है। अतः एक प्रमापीकृत परीक्षा को मुद्रित कराते समय चार बातों का विशेष रूप से ध्यान रखा जाना चाहिए : (१) परीक्षा के मुख-पृष्ठ के ऊपर अभिज्ञान-चिह्न (*Identification Marks*)—छात्र का नाम, उसकी पाठशाला का नाम, उसकी श्रेणी, उसकी आयु, उसकी उपश्रेणी, इत्यादि—मुद्रित होने चाहिएँ, (२) एक प्रमापीकृत परीक्षा के मुद्रण चाहे जितनी बार हों, परन्तु पृष्ठों के विन्यास, पृष्ठों के परिमाण, मुद्रों (*Types*) के परिमाण, इत्यादि में

अन्तर नहीं पड़ना चाहिए, (३) परीक्षा-पत्रों के ऊपर समय, प्रत्युत्तर, इत्यादि के बारे में विशिष्ट निदेश दिये जाने चाहिएँ, तथा (४) समस्त परीक्षा-पत्रों पर पदों के उत्तरों के लिये पर्याप्त रिक्त स्थान होने चाहिएँ।

६–प्रमापीकृत परीक्षाओं के मानदण्ड : विशेषताएँ

आर० ऐम० थौमस के मतानुसार प्रमापीकृत परीक्षाओं का चुनाव करते समय आठ मानदण्डों (*Criteria*) पर विचार किया जाना चाहिए। अन्य शब्दों में, एक प्रमापीकृत परीक्षा की आठ विशेषताएँ अथवा मानदण्ड होते हैं जो निम्नलिखित हैं卐 :—

(१) परीक्षा का नाम

प्रत्येक प्रमापीकृत परीक्षा का एक विशिष्ट नाम होता है जो यह मार्गप्रदर्शन करता है कि उसका प्रयोग किस प्रकार किया जाना चाहिए। कभी कभी कुछ स्थितियों में परीक्षाओं के नाम उपयोगकर्ताओं को भ्रम में भी डाल देते हैं क्योंकि वे वास्तव में उस-वस्तु को ठीक ठीक नहीं मापतीं जिसे उनके शीर्षक कहते हैं।

(२) प्रकाशक

सामान्यतः बड़े बड़े परीक्षालयों, विख्यात प्रकाशकों, तथा विश्वविद्यालयों द्वारा प्रकाशित प्रमापीकृत परीक्षाएँ अधिक विश्वसनीय होती है।

卐 प्रमापीकृत तथा वैषयिक परीक्षाओं की अनेक विशेषताएँ सामान्य होती हैं। अतः यहाँ उनका वर्णन संक्षिप्त रूप में ही किया गया है। विस्तृत विवरण के लिये वाचकों को पृष्ठ ९८ से ९९ तक अध्ययन करना चाहिए।

(३) *विश्वसनीयता*

एक प्रमापीकृत परीक्षा की एक विशेषता यह भी है कि वह सङ्गत परिणाम प्रदान करती है।

(४) *मान्यता*

प्रत्येक प्रमापीकृत परीक्षा में मान्यता होती है। अन्य शब्दों में, वह श्रेणी के उद्देश्यों को उच्च मात्रा तक ठीक ठीक मापती है।

(५) *समय*

विभिन्न प्रमापीकृत परीक्षाओं की लम्बाई पृथक् पृथक् होती है। कुछ परीक्षाएँ केवल १५ मिनिट में ही पूर्ण हो जाती हैं जबकि कुछ की पूर्ति के लिये सप्ताह के बृहत् भाग की आवश्यकता होती है। अतः एक प्रमापीकृत परीक्षा का चुनाव करते समय अध्यापक को छात्रों के ध्यान-विस्तार (*Attention Span*) तथा पाठशाला के कार्यक्रम की दृष्टि से माध्य समय पर विचार करना चाहिए।

(६) *प्रशासनात्मकता एवं अङ्कनता*

एक प्रमापीकृत परीक्षा का चुनाव करते समय प्रबन्धन तथा अङ्कन की दृष्टि से निदेशों पर विचार किया जाना चाहिए। निदेश स्पष्ट हों, उनकी भाषा सरल हो; वे परीक्षा-प्रश्नों के उत्तरों के बारे में छात्रों के समस्त प्रश्नों के उत्तर देते हों। अन्य शब्दों में, वे छात्रों को यह बतलाते हों कि उन्हें विभिन्न प्रश्नों के उत्तर कहाँ और किस प्रकार लिखने हैं। एक प्रमापीकृत परीक्षा को निर्धारित रीति में ही दिया जाना चाहिए।

(७) *मूल्य*

प्रमापीकृत परीक्षाएँ सशुल्क होती हैं। अतः कुछ समालोचकों का मत है कि यदि विभन्न श्रेणियों के लिये सर्वथा

उन्हीं का प्रयोग किया जाए तो पाठशाला में परीक्षाओं पर किया जाने वाला वार्षिक व्यय अत्यधिक बढ़ जाएगा। परन्तु अन्य समालोचकों का मत है कि यदि हमें अपने छात्रों की प्रगति का ठीक ठीक मूल्याङ्कन करना है तो परीक्षाओं की लागत पर इस दृष्टि से विचार करना ठीक नहीं है क्योंकि ऐसी मितव्ययिता मूर्खतापूर्ण मितव्ययिता होगी।

(८) *सामान्यक (Norms)*

प्रमापीकृत परीक्षाओं की सर्वोत्तम विशेषता यह है कि उनके लिये सामान्यक प्राप्य होते हैं। यहाँ सामान्यकों के विभिन्न पक्षों पर विस्तारपूर्वक विचार किया जाएगा।

(क) सामान्यक का अर्थ—एनसाइक्लोपीडिआ ऑफ मौडर्न ऐड्यूकेशन में सामान्यक की परिभाषा इन शब्दों में दी गयी है : "वे माध्य अङ्क, सामान्यतः मध्य (*Medians*), जो उन बच्चों की बृहत् संख्याओं द्वारा बनाये गये हैं जिन पर एक प्रमापीकृत परीक्षा प्रशासित की गयी है तथा जो उन छात्रों की प्राप्ति की व्याख्या करने के लिये आधार के रूप में प्रयुक्त किये जाते हैं जिन पर परीक्षा प्रशासित की जा चुकी है अथवा प्रशासित की जाएगी।"卐 पी० ई० वरनन के मतानुसार "परीक्षा-सामान्यक बच्चों अथवा प्रौढ़ों के बृहत् समूहों के अङ्कों की सारणियाँ होते हैं जिनके निर्देश द्वारा किसी भी उस

卐 *"The average scores, usually the medians, which have been made by large numbers of children to whom a standardized test has been administered and which are used as the basis for interpreting the achievement of students to whom the test has been or will be administered."*

–Book No. 4, P. 545.

व्यक्ति, अथवा व्यक्तियों के समूह द्वारा प्राप्त अङ्क के महत्व की व्याख्या करना शक्य होता है जिस पर परीक्षा का प्रयोग किया गया है।‡" ग्रीन तथा जॉर्जेन्सन के शब्दों में "व्यक्तियों की बृहत् संख्याओं के परीक्षण द्वारा निर्धारित, भिन्न अवस्थाओं अथवा श्रेणियों के प्रजाजनों का मध्य, अथवा माध्य-पालन (*Performance*)।

(ख) सामान्यक तथा प्रमाप (*Standards*)—सामान्यतः सामान्यक तथा प्रमाप शब्दों का प्रयोग अन्तर्निमेय रूप में किया जाता है, परन्तु उनमें अन्तर होता है। प्रमाप शब्द से एक "उद्देश्य" का ध्वनन होता है, परन्तु सामान्यक शब्द से मध्य (*Median*) अथवा माध्य (*Average*) का। प्रमाप प्राप्ति के वे स्तर होते हैं जिन तक पहुँचने के लिये यत्न किया जाता है; सामान्यक प्राप्ति के वे स्तर होते जिन्हें छात्र वास्तव में प्राप्त करते हैं। हो सकता है कि एक व्यक्ति सामान्यकों तक कभी न पहुँच सके। समस्त प्रमापीकृत परीक्षाएँ सामान्यक रखती हैं, परन्तु प्रमाप केवल कुछ प्रमापीकृत परीक्षाएँ ही रखती हैं।

(ग) सामान्यकों के कार्य अथवा उपयोग—सामान्यकों का

---

‡ *"Test norms are tables of the scores of large groups of children or adults by reference to which it is possible to interpret the significance of the score obtained by any person, or group of persons, to whom the test is applied."*
—*Book No. 7, P. 79*

† *"The median or average performance of subjects of different ages or grades, as determined by the testing of arge numbers of cases,"* —*Book No. 10, P. 381*

सामान्य कार्य परीक्षा के अङ्कों की व्याख्या के लिये एक आधार प्रदान करना है, परन्तु उनके विशिष्ट उपयोग अथवा कार्य अनेक होते हैं। ग्रीन तथा जौर्जेन्सन के मतानुसार सामान्यकों के छः विशिष्ट उपयोग होते हैं जो निम्नलिखित हैं:-

(१) सामान्यक परीक्षा के अङ्कों को अर्थ प्रदान करते हैं।

(२) वे शिक्षण के अर्हापण के लिये आधार प्रदान करते हैं।

(३) वे प्राप्ति के उद्देश्य प्रदान करते हैं जो छात्रों का प्रोत्साहन करने के लिये मूल्यवान् साधन होते हैं।

(४) वे वैयक्तिक कठिनाइयों तथा दुर्बलताओं को प्रकट करने के लिये वैयक्तिक छात्र के परीक्षा के अङ्कों के विश्लेषण के लिये आधार प्रदान करते हैं।

(५) वे यह निर्धारित करने के लिये आधार प्रदान करते हैं कि एक छात्र योग्यता के उस स्तर तक कार्य कर रहा है अथवा नहीं जिसकी उससे अपेक्षा की जाती है।

(६) वे छात्रों के अधिक परिशुद्ध तथा व्यक्तिनिरपेक्ष वर्गीकरण तथा क्रमस्थापन के लिये आवश्यक सूचना प्रदान करते हैं।

(घ) सामान्यकों के प्ररूप (*Types*)—सामान्यकों के तीन मुख्य प्ररूप होते हैं: (१) आयु सामान्यक (*Age Norms*), (२) श्रेणी सामान्यक (*Grade Norms*), तथा (३) प्रतिशतक सामान्यक (*Percentile Norms*)।

आयु सामान्यक उन छात्र-समूहों द्वारा प्राप्त माध्य अङ्कों के द्योतक होते हैं जो आयु के अनुसार वर्गीकृत किये जाते हैं। आयु सामान्यकों के प्रयोग में तीन परिसीमाएँ (*Limitations*) होती हैं: (१) आयु सामान्यकों के लिये

प्रारम्भिक पाठशाला आयु से नीचे तथा कनिष्ठ उच्च पाठशाला (*Junior High School*) से ऊपर प्रमापीकरण-समूह प्राप्त करना बड़ा कठिन होता है, (२) अत्यन्त उच्च तथा अत्यन्त निम्न अङ्कों के लिये आयु सामान्यक बनाना बड़ा कठिन होता है, तथा (३) उस छात्र के पालन (*Performance*) की, जो अपनी आयु से ऊपर अथवा नीचे अङ्क प्राप्त करता है, उस छात्र के पालन से तुलना की जाती है जो आयु में या तो उससे अधिक होता है अथवा कम। आयु सामान्यकों का मुख्य लाभ यह है कि वे समझने में सुगम होते हैं। आयु सामान्यक विशेष रूप से उच्च श्रेणियों में उपयोगी नहीं होते क्योंकि वहाँ आयु के अतिरिक्त अन्य अनेक कारक (*Factors*) भी प्राप्ति को प्रभावित करते हैं।

श्रेणी सामान्यक उन छात्र-समूहों द्वारा प्राप्त माध्य अङ्कों के द्योतक होते हैं जो पाठशाला श्रेणी के आधार पर वर्गीकृत किये जाते हैं। श्रेणी सामान्यकों के गुण-दोष आयु सामान्यकों के गुण-दोषों के ही समान होते हैं। देश भर में पाठशाला पद्धतियों की एकरूपता के अभाव के कारण श्रेणी सामान्यकों में एक और परिसीमा का विकास हो जाता है।

प्रतिशतक सामान्यक एक दिये हुए आयु अथवा श्रेणी-स्तर के उन छात्रों के प्रति शत को बतलाते हैं जो दिये हुए छात्र द्वारा समकृत (*Equalled*) अथवा अतिशयित (*Excelled*) होते हैं। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति की तुलना उस आयु अथवा श्रेणी-समूह के अन्य व्यक्तियों के साथ की जाती है जिसका वह एक सदस्य होता है।

(ङ) सामान्यकों के मानदण्ड (*Creteria*)—मैकौल

(*McCall*) के मतानुसार सामान्यकों के छः मानदण्ड होते हैं जो निम्नलिखित हैं।

(१) सामान्यक उस समय अधिक उपयोगी होते हैं जब वे उस समूह का प्रतिनिधित्व करते हैं जिसके साथ तुलना करना अत्यन्त वाञ्छनीय होता है।

(२) सामान्यक तब अधिक उपयोगी होते हैं जब वे स्थायी होते हैं।

(३) सामान्यक तब अधिक उपयोगी होते हैं जब उन्हें प्राप्त करने की रीति स्पष्टतः वर्णित होती है।

(४) सामान्यक तब अधिक उपयोगी होते हैं जब वे पूर्णतः सूचित किये होते हैं।

(५) सामान्यक तब अधिक उपयोगी होते हैं जब वे सार्वत्रिक तथा स्थानीय दोनों होते हैं।

(६) अन्ततः, सामान्यक तब अधिक उपयोगी होते हैं जब वे आयु तथा श्रेणी दोनों के लिये सूचित किये होते हैं।

६—प्रमापीकृत परीक्षाओं के लाभ, उपयोग, अथवा कार्य

(१) शिक्षण-उपयोग (Instructional Uses)

(क) श्रेणी का विश्लेषण तथा निदान—सत्र के आरम्भ में प्रत्येक अध्यापक अपनी श्रेणी के छात्रों की उस पृष्ठभूमि (उनकी दुर्बलताओं एवं शक्तियों) को जानना चाहता है जिस पर आगामी वर्ष का कार्य निर्भर रहेगा। अनेक प्रमापीकृत परीक्षाओं का प्रयोग इस प्रयोजन की पूर्ति के लिये किया जाता है।

(ख) वैयक्तिक छात्र का विश्लेषण—वैयक्तिक छात्र की

कठिनाइयों एवं विशेषताओं को समझना उतना ही महत्वपूर्ण है जितना सम्पूर्णतः एक श्रेणी के छात्रों की दुर्बलताओं एवं शक्तियों को समझना। अध्यापक प्रत्येक छात्र की दुर्बलताओं एवं शक्तियों को जितना अधिक समझेगा, उसे अध्यापन में उतनी ही सफलता प्राप्त होगी। अतः प्रत्येक छात्र की वैयक्तिक प्राप्तियों तथा कठिनाइयों के प्रकाश में प्रमापीकृत परीक्षाओं के परिणामों का अध्ययन किया जाना चाहिए।

(२) *प्रशासनात्मक उपयोग (Administrative Uses)*

(क) छात्रों का क्रमस्थापन तथा स्थापन—शिक्षण के लिये ऐसे समस्त छात्रों को एक श्रेणी में स्थापित करना अत्यन्त आवश्यक है जो अपनी आनुतिथ आयु (*Chronological Age*) अपनी प्राप्ति, तथा अपने दैहिक, मानसिक, सामाजिक, एवं नैतिक विकास में समान हों। विश्वसनीय श्रेणी तथा आयु सामान्यकों (*Norms*) का विकास करके इस महत्वपूर्ण प्रयोजन के लिये एक मूल्यवान् साधन प्राप्त किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त एक समूहा (*Battery*) की विभिन्न परीक्षाओं के परिणाम एक बिन्दुरेखीय-अभिलेख (*Graphic Record*) में संयोजित करके छात्रों के लिये प्रयुक्त किये जा सकते हैं।

(ख) समूह-तुलना—स्वभावतः प्रत्येक अध्यापक यह जानना चाहता है कि उसकी एक श्रेणी अथवा समूह के छात्रों की प्राप्ति की तुलना अन्य समान श्रेणी अथवा समूह के छात्रों की प्राप्ति के साथ किस प्रकार की जा सकती है। प्रमापीकृत परीक्षाएँ इस समस्या का समाधान करती हैं। आजकल प्रमापीकृत परीक्षाओं की सहायता से एक विषय तथा श्रेणी के लिये स्थापित सामान्यकों के साथ एक श्रेणी के परिणामों

की तुलना सुगमतापूर्वक की जा सकती है, उसी अथवा भिन्न अध्यापकों की एक श्रेणी की उसी पाठशाला की अन्य श्रेणियों के साथ अथवा श्रेणियों की विभिन्न उपश्रेणियों के बीच तुलना की जा सकती है, तथा एक श्रेणी के छात्रों की सत्र के आरम्भ तथा अन्त की प्राप्तियों के बीच तुलना की सकती है।

(ग) सीखने की क्षमता का माप—प्रमापीकृत परीक्षाओं की सहायता से अध्यापन की रीतियों का अर्हापण सुगमतापूर्वक किया जा सकता है। पाठचर्या के भीतर शिक्षण-एककों (*Instructional Units*) को भी अर्हापित किया जाना चाहिए।

(३) मार्गप्रदर्शन उपयोग (Guidance Uses)

प्रमापीकृत परीक्षाओं द्वारा छात्रों की सामान्य तथा विशिष्ट क्षमताओं को सुगमतापूर्वक पहिचाना जा सकता है। इस प्रयोजन की पूर्त्ति के लिये पाठशालाओं में मार्गप्रदर्शन केन्द्रों की स्थापना की जाती है। आधुनिक पाठशाला-पद्धति में मार्गप्रदर्शन केन्द्र एक परीक्षणालय (*Testing Bureau*) के रूप में भी सेवा करता है। प्रमापीकृत परीक्षाएँ शैक्षणिक विश्लेषण में, छात्रों के एक अभिरोचन (*Motivation*) के रूप में, अथवा अङ्क देने के एक साधन के रूप में अध्यापक के लिये उपयोगी हो सकती हैं।

७—प्रमापीकृत परीक्षाओं के दोष : परिसीमाएँ

सी० डब्ल्यू० औडिल के मतानुसार प्रमापीकृत परीक्षाओं के छः मुख्य दोष होते हैं जो निम्नलिखित हैं :

(१) स्थानीय प्रयोग का अभाव : परम एकरूपता

अधिकांश प्रमापीकृत परीक्षाएँ सार्वत्रिक प्रयोग के

लिये निर्मित की जाती हैं। अतः उनमें पाठ्यक्रम तथा पाठचर्या की विषयवस्तु के स्थानीय भेदों तथा स्थानीय परिवर्तनों का समावेश नहीं किया जाता। फलतः अध्यापकों को वैषयिक परीक्षाओं द्वारा प्रमापीकृत परीक्षाओं को अनुपूरित करना पड़ता है। प्रमापीकृत परीक्षाएँ स्थानीय पाठचर्या के अतिरिक्त, वैयक्तिक अध्यापकों के बल-बिन्दुओं (*Points of Emphasis*), सामान्य व्यवहार से पृथक् अन्य विचरणों (*Variations*), तथा विशेष आवश्यकताओं के लिये भी प्रयुक्त नहीं की जा सकतीं।

(२) समस्त विषयों के लिये प्रमापीकृत परीक्षाओं का अभाव

अभी तक समस्त विषयों के लिये पर्याप्त प्रमापीकृत परीक्षाएँ प्राप्य नहीं हैं। समस्त विषयों के विभागों अथवा अवस्थाओं (*Phases*) के लिये तो उनका अभाव और भी अधिक हो जाता है।

(३) रूप-विभेद का अभाव

अधिकांश प्रमापीकृत परीक्षाएँ केवल एक रूप रखती हैं तथा बहुत थोड़ी प्रमापीकृत परीक्षाएँ दो अथवा तीन से अधिक रूपों की होती हैं। फलतः उनका प्रयोग बारंबार नहीं किया जा सकता।

(४) अङ्कन तथा निर्वचन में कठिनता

प्रमापीकृत परीक्षाओं से अधिकतम मूल्य प्राप्त करने के लिये उन्हें निदेशों के अनुसार अत्यन्त सूक्ष्मतापूर्वक तथा यथार्थतः अङ्कित किया जाता है। कुछ परीक्षाओं की स्थिति में इन निदेशों के कारण अङ्कन करने में बड़ी कठिनाई होती है। ऐसी प्रमापीकृत परीक्षाओं का प्रयोग करने से पूर्व अध्यापकों को इनके

प्रयोग में प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार, प्राप्त परिणामों की व्याख्या करना भी एक अत्यन्त कठिन कार्य होता है।

(५) *परीक्षाओं का अग्रिम निर्धारण*

सामान्यतः प्रयुक्त होने वाली प्रमापीकृत परीक्षाओं को पहिले से ही निर्धारित करना पड़ता है क्योंकि उन्हें प्राप्त करने के लिये प्रयत्न करना होता है। परन्तु ऐसा करना सदैव सुविधाजनक नहीं होता।

(६) *लागत (Cost)*

यदि समस्त परीक्षण प्रमापीकृत परीक्षाओं की सहायता से किया जाए तो उस पर इतना अधिक व्यय करना पड़ेगा कि किसी भी पाठशाला के लिये पर्याप्त परीक्षण-कार्यक्रम चालू रखना शक्य न होगा।

८–उपसंहार

निस्सन्देह शिक्षण के अर्हापण में प्रमापीकृत परीक्षाओं का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होता है, परन्तु अन्य परीक्षाओं की उपयोगिता उनसे किसी प्रकार कम नहीं होती।卐 वास्तव में विभिन्न कार्यों के लिये प्रयुक्त की जाने वाली परीक्षाएँ भिन्न होती हैं। उदाहरणार्थ, आपरीक्षण परीक्षाएँ (*Survey Tests*) प्रशासनात्मक प्रयोजन के लिये अधिक उपयोगी होती हैं तो नैदानिक (*Diagnostic*) अथवा अभ्यास परीक्षाएँ शैक्षणिक प्रयोजनों के लिये।

卐 *"Standardized tests are not panaceas for all educational inadequacies but unquestionably they are useful in the evaluation of instruction."* *—Book No. 10, P. 13*

षष्ठ अध्याय

निष्पन्न-परीक्षा

१—प्रस्तावना

आधार-भिन्नता के कारण आधुनिक परीक्षाएँ इतनी विभिन्न होती हैं कि उन्हें स्पष्टतः वर्गीकृत करना एक अत्यन्त कठिन कार्य है। आधुनिक परीक्षाओं के वर्गीकरण के चार मुख्य आधार होते हैं : (१) रूप, (२) उत्पत्ति, (३) कार्य, तथा (४) विषय। कार्य के आधार पर समस्त परीक्षाओं के तीन प्ररूप होते हैं : (१) शैक्षणिक, शिक्षा, अथवा शिक्षण परीक्षाएँ, (२) बुद्धि परीक्षाएँ, तथा (३) व्यक्तित्व परीक्षाएँ। शिक्षण-परीक्षाओं का मुख्य कार्य शिक्षण तथा सीखने के परिणामों अथवा प्रभावों को मापना होता है। एफ० एन० फ्रीमैन के शब्दों में "शिक्षण परीक्षाएँ प्रशिक्षण के उत्पादनों को मापना तथा अप्रत्यक्षतः प्रशिक्षण की उस दक्षता को निर्धारित करना चाहती हैं जिसे व्यक्ति ने प्राप्त किया है।"卐 शिक्षा परीक्षाओं में उन समस्त साधनों एवं प्रविधियों (*Techniques*) का समावेश होता है जिनका निर्माण उस गुण को मापने के लिये किया जाता है जिसे व्यक्ति पाठशाला में तथा पाठशाला के बाहर सीखता है। शिक्षण परीक्षाओं को दो भागों में विभाजित किया जा सकता

卐 *"......the educational tests seek to measure the products of training, and indirectly to determine the efficiency of the training which the individual has received, ...".*
—Book No. 18, P. 18

है : (१) निष्पन्न अथवा योग्यताप्राप्ति (*Achievement or Attainment*) परीक्षाएँ, तथा (२) नैदानिक एवं शिक्षण (*Diagnostic or Instructional*) परीक्षाएँ। ये दोनों प्रमापीकृत परीक्षाएँ होती हैं।❀ प्रस्तुत अध्याय में निष्पन्न अथवा योग्यताप्राप्ति परीक्षाओं के विभिन्न पक्षों पर विचार किया जाएगा।

२–निष्पन्न-परीक्षा का अर्थ

सामान्यतः शिक्षण (*Education, Educational or Scholastic*) तथा निष्पन्न अथवा योग्यताप्राप्ति परीक्षाओं में कोई अन्तर नहीं किया जाता, और उनका प्रयोग पर्यायवाची शब्दों के रूप में किया जा सकता है। डिक्शनरी ऑफ ऐड्यूकेशन में निष्पन्न-परीक्षा की परिभाषा इस प्रकार की गयी है : "पाठशाला में पढ़ाये गये एक दिये हुए क्षेत्र में, एक व्यक्ति के ज्ञानों, कौशलों, अवबोधों, इत्यादि को मापने के लिये निर्मित एक परीक्षा, उदाहरणार्थ, एक गणित परीक्षा अथवा एक आङ्गल परीक्षा।"卐 सी० सी० रौस के मतानुसार "निष्पन्न-परीक्षाएँ शब्द का अर्थ होता है विद्या-प्राप्ति की परीक्षाएँ, यथा अङ्कगणित अथवा

❀ *"Standardized tests may be divided into two types : (1) Achievement Tests and (2) Diagonstic Tests."*

--Book No 19, P. 543.

卐 "TEST, ACHIEVEMENT : *a test designed to measure a person's knowledges, skills, understandings, etc., in a given field taught in school, for example, a mathematics test or an English test".* *--Book No. 2, P. 414*

बीजगणित।"† रौबर्ट ऐच० थाउलैस के शब्दों में "ये (निष्पन्न परीक्षाएँ) बुद्धि परीक्षाएँ नहीं हैं अपितु पाठशाला-प्राप्तियों को मापने के उद्देश्य के लिये समूह-बुद्धि-परीक्षण की प्रविधियों के अनुकूलन हैं।"❀ रौबर्ट ऐम० डब्ल्यू० ट्रैवर्स के मतानुसार प्राप्ति शब्द अध्यापक के लिये एक बहुत विस्तृत अर्थ रखता है, तथा अभिरुचियों, अभिवृत्तियों, अधिमूल्यनों, एवं सामाजिक समायोजनों के सीखने और तथ्यों के सीखने को निर्दिष्ट करता है।"卐

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि प्राप्ति अथवा निष्पन्न (*Achievement*) शब्द के दो अर्थ होते हैं, सङ्कीर्ण तथा विस्तृत। निष्पन्न-परीक्षाओं की विभिन्न परिभाषाएँ इन्हीं दो अर्थों पर आधारित हैं। यही कारण है कि कुछ विचारकों के मतानुसार निष्पन्न-परीक्षाएँ विद्या-प्राप्ति अथवा पाठशाला-प्राप्तियों के माप तक ही सीमित हैं, उदाहरणार्थ, डिक्शनरी ऑफ ऐड्यूकेशन, सी०सी० रौस, तथा रौबर्ट ऐच० थाउलैस की परिभाषाएँ और कुछ विचारकों की परिभाषाओं के अनुसार निष्पन्न-परीक्षाओं का क्षेत्र अत्यन्त

---

† *"By the term achievement tests is meant tests of academic achievement, such as arithmetic or algebra".*

--Book No. 9, P. 24

❀ *"These are not intelligence tests but adaptations of the technique of group intelligence testing to the aim of measuring school achievements".* *--Book No. 20, P. 362*

卐 *"However, the term achievement has a much broader meaning to the teacher, and refers to the learning of interests, attitudes, appreciations, and social adjustments as well as to the learning of facts".* *--Book No. 21, P 2*

व्यापक होता है और उसमें छात्रों द्वारा पाठशाला के बाहर की गयी अनेक क्रियाओं का भी समावेश होता है, उदाहरणार्थ, रौबर्ट ऐम० डब्ल्यू० ट्रैवर्स की परिभाषा।

३—निष्पन्न-परीक्षाओं की उत्पत्ति एवं विकास

शिक्षण के परिणामों के माप की उत्पत्ति का प्रश्न शिक्षण की उत्पत्ति के प्रश्न के साथ जुड़ा हुआ है, क्योंकि निष्पन्न परीक्षाओं की उत्पत्ति एवं विकास का इतिहास परीक्षण की उत्पत्ति एवं विकास के इतिहास से पृथक् नहीं है। अतः यहाँ उसे संक्षेपतः प्रस्तुत किया जाएगा। अनौपचारिक शिक्षण-काल में निष्पन्न-परीक्षाएँ अनौपचारिक होती थीं तथा औपचारिक शिक्षण-काल में औपचारिक। शिक्षण तथा परीक्षण की उत्पत्ति साथ साथ हुई है और समय समय पर दोनों के रूप में परिवर्तन एवं सुधार होते रहे हैं। पाश्चात्य दृष्टिकोण से निष्पन्न-परीक्षाओं के विकास में निम्नलिखित सीमाचिह्न (*Landmarks*) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं :

(१) आदि काल में परीक्षा का रूप

शिक्षण के परिणामों को मापने के लिये प्रयुक्त की जाने वाली प्रारम्भिक परीक्षाएँ आजकल प्रयुक्त होने वाली करण-परीक्षाओं (*Performance Tests*) के समान होती थीं और वे पत्र-एवं-अङ्कनी परीक्षाएँ (*Paper-and-Pencil Tests*) न थीं। विभिन्न आद्य वनजातियों (*Primitive Tribes*) में, जिनमें तरुण व्यक्तियों को आखेटन, मत्स्य-ग्रहण, तथा लड़ना सिखलाया जाता था, उन्हें प्रौढ़ पुरुषों की पंक्ति में प्रवेशित करने के लिये सूत्रपात-समारोहों का आयोजन किया जाता था और उनकी वनजाति-रीतियों के ज्ञान, सहनशक्ति,

वीरता, तथा अन्य कौशलों एवं योग्यताओं की परीक्षा ली जाती थी।

(२) *स्पार्टा में परीक्षा का रूप*

प्राचीन स्पार्टा में तरुण व्यक्तियों के शिक्षण-पाठ्यक्रम में शारीरिक विकास को अत्यन्त महत्व दिया जाता था। वहाँ ५०० ईसा पूर्व में परीक्षाएँ विद्यमान थीं।

(३) *ऐथैन्स में परीक्षा का रूप*

प्राचीन ऐथैन्स में व्यायामिक तथा सौन्दर्य-विकास को विशेष महत्व दिया जाता था और क्रीड़ाओं तथा पठन, लेखन, एवं गायन-योग्यता में प्रतियोगिताओं द्वारा तरुण व्यक्तियों की परीक्षा ली जाती थी।

(४) *पाठशाला में प्रथम परीक्षा*

मध्यकाल में विश्वविद्यालयों में मौखिक परीक्षाओं का प्रयोग किया जाता था। १२१९ में बोलोग्ना (*Bologna*) विश्वविद्यालय में तथा तेरहवीं शताब्दी के अन्त में पेरिस विवविद्यालय में उपाधि-छात्रों को मौखिक रूप में अपने अन्वेषप्रबन्धों का समर्थन करना पड़ता था। लिखित शिक्षण परीक्षा की उत्पत्ति सर्वप्रथम १७०२ में कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में हुई थी।

(५) *वैषयिक मापन की उत्पत्ति*

प्राप्ति के सर्व प्रथम वैषयिक मापन-साधनों के निर्माण का श्रेयस् एक आङ्गल अध्यापक ज्यौर्ज फिशर को है। १८६४ में फिशर की श्रेणी पुस्तकें (*Scale Books*) ग्रीनविच हॉस्पिटल स्कूल में छात्रों की प्राप्तियों को मापने के लिये प्रयुक्त की जाती थीं।

(६) *मापन पर प्रथम पुस्तक*

मानसिक एवं शैक्षणिक मापन पर सर्व प्रथम पुस्तक का प्रकाशन १९०४ में हुआ था। पुस्तक के लेखक मि० थौर्नडाइक थे। पुस्तक का नाम था "*Theory of Mental and Social Measurement.*"

(७) *प्रथम प्रमापीकृत परीक्षा*

प्रथम प्रमापीकृत परीक्षा का प्रकाशन थौर्नडाइक के शिष्य स्टोन (*Stone*) ने १९०८ में कराया था। वह एक गणित तर्क परीक्षा थी।

(८) *अध्यापक निर्मित, वैषयिक परीक्षा*

अनौपचारिक वैषयिक परीक्षा का विचार सर्व प्रथम १९२० में मैकौल द्वारा सार्वजनिक रूप से व्यक्त किया गया था।

४—निष्पन्न-परीक्षाओं का निर्माण

अधिकांश प्रकाशित निष्पन्न-परीक्षाएँ प्रमापीकृत परीक्षाएँ होती हैं। एक निष्पन्न-परीक्षा या तो एक एकल विषय में छात्र की योग्यता को मापने के लिये एक एकल परीक्षा (*Single Test*) हो सकती है अथवा परीक्षाओं की एक समूहा (*Battery*), अर्थात्, सामान्यतः एक इकाई के रूप में प्रशासित परन्तु विभिन्न विषयों में प्राप्ति को मापने के लिये निर्मित परीक्षाओं की एक संख्या। सामान्यतः निष्पन्न-परीक्षाओं में अनेक वैषयिक-प्ररूप प्रश्नों का समावेश होता है। निष्पन्न-परीक्षाओं के अङ्कों को उनके सामान्यकों (*Norms*) के शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है। वाल्टर डब्ल्यू० कुक (*Walter W. Cook*) के मतानुसार निष्पन्न-परीक्षाओं के निर्माण की पाँच केन्द्रीय समस्याएँ होती हैं: (१) एक माप्य गुण की विशेषताएँ, (२) प्राप्ति अथवा निष्पन्न की प्रकृति तथा इसके मापन का अर्थ,

(३) एक अस्थायी मापन-साधन का निर्माण करने के लिये परीक्षा के प्रश्नों अथवा अभ्यासों का संविन्यसन (*Formulation*), चुनाव, तथा विन्यास (*Arrangement*), (४) अस्थायी साधन का मूल्याङ्कन, तथा (५) परीक्षा का अङ्कन करने के लिये प्रक्रिया का निर्धारण।

(१) एक माप्य गुण की विशेषताएँ अथवा दशाएँ

एक माप्य गुण की पाँच विशेषताएँ होती हैं: (१) गुण को स्पष्ट रूप से परिभाषित किया जाना चाहिए, (२) गुण अधिक अथवा कम मात्रा के रूप में वर्ण्य किया जाना चाहिए, (३) गुण ऐसा हो कि उसे न्यादर्शित किया जासके, (४) गुण ऐसा हो कि छात्र के पालन (*Performance*) को स्वतः अङ्क देने के लिये एक साधन का निर्माण किया जा सके, तथा (५) गुण ऐसा हो कि इसकी इकाइयाँ स्थापित की जा सकें। यदि एक दिये हुए गुण के विभिन्न परिणामों को अङ्क दिये जाने हैं तो इन पाँच दशाओं का होना अत्यन्त आवश्यक है।

(२) प्राप्ति की प्रकृति तथा उसके मापन का अर्थ

मापन के क्षेत्र में प्राप्ति अथवा निष्पन्न का प्रयोग सामान्यतः करने की अर्जित योग्यता, करने की अर्जित क्षमता अथवा करने की अर्जित प्रवृत्ति के अर्थ में किया जाता है। अर्जित योग्यताएँ, क्षमताएँ तथा प्रवृत्तियाँ परिवर्तनशील होती हैं तथा एक व्यक्ति का पालन अथवा व्यवहार उपस्थायी परिस्थितियों द्वारा प्रभावित होता है। अतः प्राप्ति की एक अधिक पूर्ण परिभाषा में परिस्थिति-सापेक्ष विवरण का भी समावेश होगा। प्राप्ति की अनेक प्रकारें होती हैं, यथा प्रेरक कौशल (*Motor Skills*), मानसिक विधाएँ (यथा समस्या-समाधान), अभिवृत्तियाँ, इत्यादि। यही शिक्षा के उद्देश्य भी हैं।

(३) परीक्षा के अभ्यासों का संविन्यसन, चुनाव तथा विन्यास

परीक्षा के अभ्यासों का संविन्यसन करते समय यह विचार करना आवश्यक है कि किस प्राप्ति को मापा जाना है तथा इसकी प्रकृति क्या है। प्राप्ति के पदों की पहिचान करने की एक रीति उस क्षेत्र में पाठ्यपुस्तकों का विश्लेषण करना है। ज्ञान, कौशलों, अभिवृत्तियों योग्यताओं, इत्यादि को निर्धारित करने के लिये पाठ्यक्रम के अन्वेषण में अनेक मानदण्डों का प्रयोग किया जाता है अर्थात्, सीखने की एक इकाई की सापेक्ष उपयोगिता को निर्धारित करने के लिये कई मानदण्ड प्रयोग में लाये जा सकते हैं, यथा (१) इसके प्रयोग की गति, (२) उन परिस्थितियों की निर्णायकता जिनमें इसकी आवश्यकता होती है, (३) वह मात्रा जिस तक ऊंचे व्यक्ति इसका प्रयोग करते हैं, (४) भिन्न व्यवसायों में आवश्यकता की व्याप्ति, (५) भिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में आवश्यकता की व्याप्ति, (६) भिन्न समयावधियों में आवश्यकता की व्याप्ति, (७) सीखने की कठिनता, (८) भूल की गति, तथा (९) एक विशिष्ट व्यवसाय में प्रयोग की गति। मापित होने वाले गुण (उद्देश्य) को निर्धारित करने के पश्चात् परीक्षा के अभ्यासों का निर्णय किया जाता है। निष्पन्न के परीक्षण में लगभग पचास भिन्न वैषयिक-परीक्षण प्रविधियों का प्रयोग किया गया है, परन्तु उनके पाँच मुख्य प्ररूप होते हैं : (१) एकान्तर-प्रत्युत्तर पद, (२) बहु-वरण पद, (३) समरूप पद, (४) मुक्त-प्रत्युत्तर (*Free-Response*) पद, तथा (५) पूर्ति पद। (इन पदों का विस्तृत वर्णन पृष्ठ ७५–८८ पर देखिए)।

(४) *परीक्षा का मूल्याङ्कन*

निर्माण के पश्चात् मान्यता एवं विश्वसनीयता (देखिए पृष्ठ ४८-६२) के सम्बन्ध में परीक्षा का मूल्याङ्कन किया जाता है।

(५) *परीक्षा का अङ्कन*

एक परीक्षा का प्राकृत अङ्क (*Raw Score*) छात्र के उस पालन (*Performance*) का संख्यात्मक वर्णन होता है जिसे एक योग्यता के साक्ष्य के रूप में स्वीकार किया जाता है। इसके सम्बन्ध में अङ्कन का एक ऐसा साधन निर्मित करने की समस्या होती है जो समय की दृष्टि से मितव्यय हो तथा जो परिणामी अङ्क को उस योग्यता का अनुकूलतम देशना (*Optimum Index*) बनाता हो जिसे मापा जा रहा है। प्राकृत अङ्कों का सङ्गणन करते समय मुख्य समस्याएँ तीन विषयों से सम्बद्ध होती हैं: (१) दैव (*Chance*)-साफल्य के लिये शोधन, (२) मान्यता के सम्बन्ध में परीक्षा-पदों का तोलन, तथा (३) एक परीक्षा अथवा एक समूहा (*Battery*) में विभिन्न परीक्षाओं के विभिन्न अनुभागों का तोलन।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि निष्पन्न-परीक्षाओं के निर्माण की विधा में उन सब प्रक्रमों एवं पदों का समावेश होता है जिनका वैषयिक (देखिए पृष्ठ ८९-९७) अथवा प्रमापीकृत (देखिए पृष्ठ १०८-११८) परीक्षाओं के निर्माण की विधा में। परन्तु अध्यापकों को अधिमूल्यन-प्रक्रिया के किसी विशेष रूप से बद्ध नहीं होना चाहिए और शिक्षण के परिणामों की प्राप्ति के साक्ष्य को वहाँ ढूंढा जाना चाहिए जहाँ कहीं भी यह प्राप्त किया जा सकता है।

५—निष्पन्न-परीक्षाओं के प्ररूप अथवा भेद

एक निष्पन्न-परीक्षा का निर्माण यह मापने के लिये किया जाता है कि एक व्यक्ति एक विशेष कौशल अथवा ज्ञान के क्षेत्र में कितनी अच्छी प्रकार प्रशिक्षित किया गया है। मुख्यतः निष्पन्न-परीक्षाओं में छः प्ररूपों का समावेश होता है : (१) वाचन-परीक्षाएँ (मौखिक तथा मूक), (२) अङ्कगणित परीक्षाएँ, (३) सामाजिक-विज्ञान परीक्षाएँ, (४) विज्ञान परीक्षाएँ, (५) भाषा परीक्षाएँ, तथा (६) निष्पन्न-समूहाएँ (*Achievement Batteries*)। इनमें से किसी भी प्ररूप के लिये निष्पन्न-परीक्षा का निर्माण करते समय उन समस्त प्रक्रमों (*Stages*) तथा पदों (*Steps*) का अनुसरण किया जाता है जिसका अनुसरण वैषयिक (पृष्ठ ८९-९७) अथवा प्रमापीकृत (१०८-११८) परीक्षाओं का निर्माण करते समय किया जाता है।

६—निष्पन्न-परीक्षाओं की विशेषताएँ, लाभ तथा दोष

निष्पन्न-परीक्षाओं के निर्माण की केवल विधा ही प्रमापीकृत परीक्षाओं के निर्माण की विधा से नहीं मिलती, अपितु उनकी विशेषताएँ (पृष्ठ ११८–१२४), लाभ (पृष्ठ १२४-१२६) चुनाव के लिये मानदण्ड (पृष्ठ ११८-१२४), तथा दोष (१२६-१२८) भी समान होते हैं।※ यहाँ उनकी पुनरावृत्ति करना उचित न होगा।

७—प्रयोग के सम्बन्ध में व्यावहारिक सुझाव

सर सिरिल बर्ट (*Sir Cyril Burt*) ने शिक्षण-परीक्षाओं

※ *"The advantages and limitations of standardized achievement tests are similar to those of standardized tests".* *Book No. 4, P. 7.*

के प्रयोग के सम्बन्ध में आठ सुझाव दिये हैं जो निम्न-लिखित हैं :

(१) मापश्रेणी की प्रकृति, अर्थात् परिणाम, अस्थायी होती है। उनका मूल्य सीमित होता है; उनकी परिशुद्धता कम होती है। अतः यदि एक छात्र, जिसे अब तक सामान्य समझा जाता रहा है, किसी परीक्षा में स्तर से नीचे रहता है, तो उसे शीघ्रतापूर्वक पिछड़ा हुआ घोषित कर देना उचित न होगा।

(२) यद्यपि अभी तक अधिक मान्य मापश्रेणियों का निर्माण किया जाना शेष है, तथापि वर्तमान मापश्रेणियाँ अपने व्यावहारिक उपयोग रखती है। वे समय बचाती हैं।

(३) प्रत्येक अध्यापक को उसकी अपनी परीक्षाओं तथा सामान्यकों (*Norms*) की मापश्रेणियों का निर्माण करना चाहिए। उसे सदैव अन्य व्यक्तियों द्वारा निर्मित परीक्षाओं का प्रयोग करने में हिचकिचाना चाहिए।

(४) अप्रत्यक्षतः एवं परिसीमाओं के भीतर, ये परीक्षाएँ शिक्षण-पाठ्यक्रम के सङ्कलन तथा समालोचना में सहायक हो हो सकती हैं। अतः इस प्रयोजन के लिये भी उनका प्रयोग किया जाना चाहिए।

(५) प्राप्ति अथवा निष्पन्न के प्रमाप (*Standards*) केवल सांख्यिकीय अर्थ में ही सामान्यक (*Norms*) होते हैं। वे वास्तविक माध्यों (*Averages*) तथा वास्तविक मध्यों (*Medians*) का प्रतिनिधित्व करते हैं, आदर्शों का नहीं। इस महत्वपूर्ण तथ्य को ध्यान में रखा जाना चाहिए।

(६) शिक्षण-परीक्षाओं का प्रयोग करते समय परीक्षक को सदैव उन बच्चों के, जो अधिकांश विषयों में पिछड़े हुए

हैं तथा उन बच्चों के बीच विभेद करना चाहिए जो केवल एक ही विषय में अथवा विषयों के एक सीमित समूह में पिछड़े हुए हैं।

(७) किसी विशेष विषय में केवल पिछड़ेपन के तथ्य का निदान करना ही पर्याप्त नहीं है। अध्यापक को उस विषय के अन्तर्गत उन विशेष तत्वों अथवा पक्षों का भी विश्लेषण करना चाहिए जिनमें बालक विशेष रूप से दुर्बल है। अन्य शब्दों में, पिछड़ेपन के मनोवैज्ञानिक कारणों का भी विश्लेषण किया जाना चाहिए।

(८) केवल नियतकालिक परीक्षण ही महत्वपूर्ण नहीं है, अपितु अभिलेखों का परिरक्षण तथा ज्यों ज्यों छात्र एक श्रेणी से दूसरी श्रेणी को जाता है त्यों त्यों उनको एक अध्यापक से दूसरे अध्यापक को हस्तान्तरण भी आवश्यक है।

८—उपसंहार

वास्तव में, निष्पन्न तथा प्रमापीकृत परीक्षाओं का उद्देश्य छात्रों की प्राप्तियों (*Achievements*) को मापना है, और उनके परीक्षा-पदों, निर्माण-विधाओं, गुण-दोषों तथा अन्य पक्षों में इतनी समानता होती है कि निष्पन्न-परीक्षाओं पर विचार करने के लिये एक स्वतन्त्र अध्याय की आवश्यकता न थी। वैषयिक तथा प्रमापीकृत परीक्षाओं का अध्ययन करने के पश्चात् निष्पन्न-परीक्षाओं को समझना कठिन नहीं है। यही कारण है कि इस अध्याय में निष्पन परीक्षाओं पर संक्षेप में विचार किया गया है।

सप्तम अध्याय
नैदानिक-परीक्षा

१—प्रस्तावना

समस्त शिक्षा-परीक्षाओं को दो प्ररूपों में विभाजित किया जा सकता है: (१) निष्पन्न-परीक्षाएँ (*Achievement Tests*), तथा (२) नैदानिक-परीक्षाएँ (*Diagnostic Tests*) जिन्हें वैश्लेषिक-परीक्षाएँ (*Analytic Tests*) भी कहा जाता है। निष्पन्न-परीक्षा का वर्णन षष्ठ अध्याय में किया जा चुका है। प्रस्तुत अध्याय का उद्देश्य नैदानिक अथवा वैश्लेषिक-परीक्षाओं के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डालना है।

२—नैदानिक-परीक्षा का अर्थ

"नैदानिक" शब्द एक विशेषण है जिसका संज्ञा शब्द "निदान" (*Diagonsis*) है। नैदानिक शब्द के अर्थ को स्पष्टतः समझने के लिये निदान शब्द के अर्थ को समझना अत्यन्त आवश्यक है। चैम्बर्स ट्वैन्टिअथ सैन्चुरी डिक्शनरी में निदान (*Diagonsis*) शब्द की परिभाषा इन शब्दों में की गई है: "एक रोग की इसके लक्षणों के द्वारा पहिचान।" शिक्षा ने "निदान" शब्द आयुर्विज्ञान से उधार लिया है।❀ नैदानिक परीक्षाओं पर विचार करते समय हमें "रोग" शब्द से

❀ *"Education borrowed the term "diagnosis" from medicine where its fundamental character has been long recognized."* —*Book No 9, P. 364*

भयभीत होने की आवश्यकता नहीं। वस्तुतः, आयुर्विज्ञान के क्षेत्र में रोग शब्द का प्रयोग व्यक्तियों के शारीरिक अथवा मानसिक विकार के लिये किया जाता है और शिक्षा के क्षेत्र में बच्चों की शैक्षणिक दुर्बलताओं के लिये। इस प्रकार सामान्य शब्दों में नैदानिक-परीक्षा उस परीक्षा को कहा जाता है जिसका प्रयोग पाठशाला के विषयों में बच्चों की कठिनाइयों को प्रकट करने के लिये किया जाता है। पाठशाला के विभिन्न विषयों में बच्चों की कठिनाइयों को दो प्रकार से ज्ञात किया जा सकता है : (१) बच्चों की उस मानसिक विधा (*Mental process*) के एक विश्लेषण द्वारा जो एक विषय को सीखने में संनिहित होती है, तथा (२) विषय के मूलनियमों के लिये अपेक्षित सामग्री के विश्लेषण के द्वारा। ऐनसाइक्लोपीडिआ ऑफ मौडर्न एड्यूकेशन में शैक्षणिक निदान की परिभाषा इन शब्दों में की गयी है : शैक्षणिक निदान "सीखने की आधारभूत तथा सामान्य कठिनाइयों की प्रकृति एवं कारणों को निर्धारित करने की प्रक्रिया" होती है।卐 डिक्शनरी ऑफ एड्यूकेशन के अनुसार नैदानिक-परीक्षा वह परीक्षा होती है "जिसके परिणाम छात्र की दुर्बलताओं एवं शक्तियों के एक स्थूल, सामान्य निदान की अनुज्ञा देते हैं।"❀

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि नैदानिक-परीक्षाएँ

"卐 *Educational diagnosis is the "procedure of determining the nature and causes of basic and general learning difficulties".* *–Book No, 4, P. 234*

❀ "TEST, DIAGONSTIC :......*(2) an examination the results of which permit a broad, general diagonsis of pupil weaknesses and strengths".* *–Book No. 2, P. 416*

एक विशेष विषय अथवा सीखने के क्षेत्र के एक निर्दिष्ट भाग में छात्रों की दुर्बलताओं अथवा शक्तियों को प्रकट करने वाली परीक्षाएँ होती हैं और वैयक्तिक छात्रों की विशिष्ट दुर्बलताओं से संबद्ध होती हैं। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं होता है कि नैदानिक-परीक्षाओं का मुख्य प्रयोजन केवल छात्रों की दुर्बलताओं एवं शक्तियों को प्रकट करना ही होता है। वस्तुतः उनका एक मुख्य प्रयोजन छात्रों की दुर्बलताओं के कारणों तथा उनकी प्रकृति को निर्धारित करना और प्रभावशाली प्रत्युपाय प्रक्रियाओं (*Remedial Procedures*) के लिये एक आधार प्रदान करना भी होता है।† इस प्रकार सारांशतः

† *"(1) They are designed to identify particular strengths and weaknesses on the part of the individual child, and within reasonable limits to reveal the underlying causes".*

–Book No. 14 P. 48

(2) "The function of diagnosis is to guide corrective measures" *--Book No. 23, P. 88*

(3) "The ultimate purpose of diagnosis is to affford a basis for effective remedial procedures".

--Book No. 9, P. 378

(4) "Diagnosis in teaching is concerned with two major problems (a) determination of the extent to which desirable educationa, objectives are being achieved; (b) identification of factors that may be interfering with the optimum growth of the individual. The correction and elimination of the weaknesses through a constructive attack on their causes constitute an essential complementary process closely related to diagnosis."

--Book No. 1, P. 314

नैदानिकपरीक्षाओं के तीन मुख्य प्रयोजन अथवा कार्य होते हैं : (१) छात्रों की दुर्बलताओं अथवा शक्तियों को ज्ञात करना, (२) उन दुर्बलताओं के कारणों एवं कारणों की प्रकृति को निर्धारित करना, तथा (३) प्रभावशाली प्रत्युपाय प्रक्रियाएँ प्रदान करना।

३—नैदानिक-परीक्षाओं की प्रकृति

"नैदानिक" शब्द, जिस रूप में वह परीक्षाओं के लिये प्रयुक्त किया जाता है, अनेक अशुद्ध धारणाओं में परिणत हो गया है। मूल रूप से, समस्त परीक्षाओं को नैदानिक समझा जा सकता है, क्योंकि वे छात्र की प्राप्ति अथवा निष्पन्न के बारे में विशिष्ट सूचना प्रदान करती हैं। तथापि, अनेक परीक्षाओं से प्राप्त निदान इतना सामान्य होता है कि उन्हें नैदानिक परीक्षाएँ कहना समुचित नहीं कहा जा सकता। विशिष्ट निदान के अतिरिक्त नैदानिक-परीक्षाएँ प्रत्युपाय (*Remedial*), शोधक (*Corrective*) अथवा निवारक (*Preventive*) गुण भी रखती हैं। नैदानिक-परीक्षाओं में, प्रायः सम्पूर्ण विषय में सफलता के लिये आवश्यक विशेष प्रविधिओं (*Techniques*), कौशलों, तथा सूचना के रूपों सहित योग्यताओं, अभिरुचियों, एवं पालनों (P*erformances*) की एक बृहत् संख्या को मापने के लिये निर्मित साधनों का समावेश होता है। सामान्यतः नैदानिक तथा निष्पन्न (*Achievement*) परीक्षाओं में अन्तर नहीं किया जा सकता।卐 परन्तु अनेक

卐 *"There is, however, no clear line of division between achievement and diagnostic tests. Some achievement tests are diagnostic to some extent":* *—Book No 19, P. 544*

विचारक क्षेत्र के आधार पर दोनों में अन्तर करते हैं। ऐसे विचारकों के मतानुसार नैदानिक-परीक्षाएँ एक विषय के एक आयन्त्रित (*Restricted*) भाग को आवृत करती हैं, परन्तु उन भूलों को प्रकट करने के लिये उस भाग को पूर्णतया आवृत करती हैं जो की जा सकती हैं। सामान्य निष्पन्न-परीक्षाएँ एक सम्पूर्ण विषय को आवृत कर सकती हैं, परन्तु उनमें केवल थोड़े-से पदों का ही समावेश हो सकता है क्योंकि उनका क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत होता है।

४–अच्छी नैदानिक-परीक्षा की विशेषताएँ

सामान्यतः एक अच्छी नैदानिक-परीक्षा में वे समस्त गुण होने चाहिएँ जो एक प्रमापीकृत-परीक्षा में होते हैं, क्योंकि नैदानिक परीक्षाएँ भी प्रमापीकृत होती हैं। ग्रीन तथा जौर्जेन्सन के मतानुसार एक अच्छी नैदानिक-परीक्षा में निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं :

(१) मान्यता

यदि एक परीक्षा को सचमुच नैदानिक होना है तो उसे मान्य होना चाहिए, अर्थात्, इसे उन समस्त कौशलों को आवृत करना चाहिए जो अत्यन्त महत्वपूर्ण हों तथा जो पाठ-चर्या के उद्देश्यों के अनुसार पर्याप्त बल प्राप्त कर चुके हों।

(२) विश्वसनीयता

एक अच्छी नैदानिक परीक्षा को विश्वसनीय होना चाहिए, अर्थात्, पृथक् कौशलों में से प्रत्येक कौशल को परिशुद्धतया इस प्रकार मापा जाना चाहिए कि वह अकेला खड़ा हो सके।

(३) विस्तृत न्यादर्शन (Sampling)

नैदानिक-परीक्षा के प्रत्येक कौशल को विस्तृत रूप से

न्यादर्शित किया जाना चाहिए जिससे उसके परिणाम बच्चे की योग्यता, शक्तियों तथा दुर्बलताओं का एक परिशुद्ध चित्र प्रदान कर सकें।

(४) *प्रत्युपाय एवं शोधक गुण*

एक अच्छी नैदानिक-परीक्षा को केवल निदान ही नहीं करना चाहिए अपितु उसमें विशिष्ट प्रत्युपाय (*Remedial*) एवं शोधक (*Corrective*) गुण भी होने चाहिएँ, अर्थात्, वह परीक्षण के परिणामों के आधार पर प्रकटित छात्रों की दुर्बलताओं को हटाने के लिये विशिष्ट प्रत्युपाय एवं शोधक सामग्री का निर्देशन करती हो। तभी वह एक वास्तविक शैक्षणिक महत्व की परीक्षा होगी।

५—नैदानिक-परीक्षाओं की उत्पत्ति एवं विकास

अपने छात्रों द्वारा सीखने में अनुभूत कठिनाइयों को दूर करने के लिये दक्ष अध्यापक सदैव नैदानिक प्रक्रियाओं का प्रयोग करते रहे हैं, यद्यपि उनका रूप अपरिष्कृत होता था। परन्तु न्यूनाधिक वैज्ञानिक प्रकृति के शैक्षणिक-निदान की उत्पत्ति उन्नीसवीं शताब्दी के द्वितीय अर्धभाग में यूरोप की मनोवैज्ञानिक प्रयोगशालाओं में हुई थी। बीसवीं शताब्दी में, अमेरिका में आपरीक्षण-आन्दोलन (*Survey Movement*) द्वारा अर्हात्मक-प्रक्रियाओं के विकास को बड़ा प्रोत्साहन मिला। शैक्षणिक उत्पादन की विशेषताओं का अधिमूल्यन करने के लिये अनेक रीतियों एवं युक्तियों का निर्माण किया गया है तथा उनका प्रयोग किया गया है। क्रमबद्ध रूप से निर्मित तथा प्रमापीकृत नैदानिक-परीक्षाओं एवं प्रक्रियाओं का शिक्षण के व्यवहारों एवं सामग्रियों पर बड़ा प्रभाव पड़ा है। आजकल

शैक्षणिक-निदान शिक्षण को वैयक्तिक भेदों के अनुसार अनुकूल बनाने के लिये प्रयुक्त योजनाओं का एक अभिन्न अङ्ग बन गया है। शैक्षणिक निदान के द्वारा प्रकटित सीखने की कठिनाइयों एवं न्यूनताओं को सुधारने के लिये प्रत्युपाय एवं शोधक-प्रक्रियाओं का विकास भी नैदानिक प्रक्रियाओं के विकास के साथ साथ हुआ है। इस सम्बन्ध में सीखने के मनोविज्ञान के अध्ययन विशेषतः सहायक हुए हैं।

६—निदान की विधा (*Process of diagnosis*)

सी० सी० रौस के मतानुसार निदान की विधा में पाँच पदों का समावेश होता है : (१) निदाण्य व्यक्तियों का निश्चयन, (२) कठिनता की प्रकृति का निश्चयन, (३) भूलों के कारणों का निश्चयन, (४) प्रत्युपाय-प्रक्रियाएँ (*Remedial Procedures*), तथा (५) निवारक-निदान (*Preventive Diagnosis*)। प्रतीकात्मक भाषा में इन प्रक्रमों को क्रमशः कौन, कहाँ, क्यों, क्या, तथा किस प्रकार शब्दों के द्वारा व्यक्त किया जा सकता है जिनसे क्रमशः, निदाण्य कौन ?, कठिनता कहाँ ?, कठिनता क्यों ?, प्रत्युपाय क्या ? निवारण किस प्रकार ? का बोध होता है। निदान की विधा अथवा शैक्षणिक-निदान का आरम्भ परीक्षाओं का अङ्कन करने के पश्चात् होता है।

(१) निदाण्य व्यक्तियों का निश्चयन : निदान की रीतियाँ

नैदानिक-कार्यक्रम के प्रथम प्रकम पर यह ज्ञात किया जाता है कि वे छात्र कौन कौन से हैं जिनकी ओर नैदानिक-ध्यान देने की आवश्यकता है। सामान्यतः नैदानिक-ध्यान की आवश्यकता उन व्यक्तियों को होती है जो अपने प्रयत्नों में असामान्य रूप से विफल रहते हैं। यह विफलता छात्रों द्वारा

अनुभूत कुछ कठिनाइयों का परिणाम होती है और उन कठिनाइयों के विशेष कारण होते हैं। अतः निदाण्य व्यक्तियों का निश्चयन छात्रों की कठिनाइयों एवं उनके कारणों को ज्ञात करके किया जा सकता है। छात्रों की कठिनाइयों एवं उनके कारणों को ज्ञात करने की अनेक रीतियाँ हैं। मैकौल ने निदाण्य व्यक्तियों का निश्चयन करने के लिये सात रीतियों का वर्णन किया है जो निम्नलिखित हैं :—

(क) अन्तर्दृष्टि (*Introspection*)—कहने की आवश्यकता नहीं कि प्रत्येक छात्र अपनी कठिनता की केवल स्थिति ही नहीं अपितु उस कठिनता के कारण से भी परिचित होता है। अतः जहाँ छात्र स्वयं अपनी कठिनताओं एवं उनके कारणों को जानते हों वहाँ जटिल रीतियों का प्रयोग करके अध्यापकों को अपना समय तथा शक्ति नष्ट नहीं करनी चाहिए।

(ख) कार्यावलोकन—व्यक्ति के व्यवहार का अवलोकन करके उसकी कठिनता का अनुमान सुगमतापूर्वक लगाया जा सकता है। उदाहरणार्थ, वाचन में कठिनता का अनुभव करने वाले छात्र का वाचन करते समय अवलोकन करके उसकी कठिनता को ज्ञात किया जा सकता है।

(ग) मौखिक-अनुरेखण (*Oral Tracing*)—कुछ कठिनाइयाँ ऐसी भी होती हैं जिनके कारण अन्तर्दृष्टि अथवा कार्यावलोकन रीति से प्रकाश में नहीं आ पाते। ऐसी स्थिति में छात्र को एक ऐसा सुप्रकाश-कार्य (*Overt Act*) करने के लिये प्रोत्साहित किया जाना चाहिए जो उसके दृश्य दोष के अदृश्य कारणों को प्रकट कर देगा।

(घ) परीक्षा-परिणामों का विश्लेषण—परीक्षा-परिणामों

का विश्लेषण करके निदाण्य व्यक्तियों का निश्चयन अत्यन्त सुगमता से किया जा सकता है। ऐसे व्यक्ति दो प्रकार के छात्र हो सकते हैं: (१) वे छात्र, जो श्रेणी के नीचे इकट्ठे होते हैं, तथा (२) वे छात्र, जो अपनी प्राप्ति की शक्यताओं से अत्यन्त नीचे होते हैं। उत्तरपत्रों के चट्टे में से ऐसे दो अथवा तीन छात्रों के उत्तरपत्रों को पृथक् कर लेना चाहिए जिन्होंने कम से कम अङ्क प्राप्त किये हैं। तत्पश्चात् उनका पूर्ण विश्लेषण किया जाना चाहिए। इन उत्तरपत्रों की सहायता से अध्यापक को व्यक्तिशः उन प्रश्नों को निकालना चाहिए जिनके अशुद्ध उत्तर दिये गये हों, परन्तु सामान्यतः समस्त श्रेणी द्वारा नहीं; केवल उन्हीं दो-तीन छात्रों द्वारा। ये प्रश्न छात्र के अङ्कों तथा प्रश्न-कठिनता की सारणी के बीच तुलना के द्वारा निर्धारित किये जा सकते हैं। वे छात्रों की कठिनाइयों के कारणों को अवश्यमेव प्रकट कर देंगे।

(ङ) विकास-इतिहास—जिस प्रकार एक चिकित्सक एक अस्पष्ट रोग का कारण ज्ञात करने के लिये रोगी के अतीत के बारे में पूछताछ करता है, उसी प्रकार शैक्षणिक दोषों के कारणों को ज्ञात करने के लिये एक दक्ष अध्यापक को छात्र के जन्मपूर्व-पर्यावरण तथा उसके जनक तथा महा-जनक के जीवन के बारे में पूछताछ करनी चाहिए। अनेक कारणों की जड़ें अतीत में होती हैं और वर्षों से अनवलोकित चली आती हैं। ब्रूकनर ने इस रीति को समक्षकार रीति (*Interview Method*) कहा है।

(च) विपरीत-व्यतिरेक (*Contrasts of Opposites*)—यह रीति अननुभवी अध्यापकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है।

वे श्रेणी के सर्वोत्तम तथा दरिद्रतम छात्रों में व्यतिरेक कर सकते हैं अथवा एक श्रेणी तथा एक अन्य निम्न अथवा उच्च श्रेणी के छात्रों में।

(छ) योग्यता का पूर्ण विश्लेषण--एक दी हुई योग्यता में संनिहित संवेदी (*Sensory*), मानसिक, तथा गामक (*Motor*) प्रक्रियाओं का एक पूर्ण विश्लेषण शैक्षणिक-निदान की अन्तिम रीति होती है। यदि यह रीति विफल हो जाए तो अध्यापक आगे कुछ नहीं कर सकते। योग्यता के पूर्ण विश्लेषण के लिये ऊपर वर्णित समस्त रीतियों के संयुक्त प्रयोग की आवश्यकता होती है।

लिओ जे० ब्रूकनर ने निदान की निम्नलिखित रीतियों का वर्णन किया है जो उपर्युक्त रीतियों से पृथक् हैं :—

(ज) वैश्लेषिक परीक्षाओं द्वारा माप--वैश्लेषिक परीक्षाओं द्वारा किया गया माप छात्र की दुर्बलता की मात्रा तथा उसकी ठीक ठीक प्रकृति का निर्धारण करने के लिये अध्यापक अथवा परीक्षक के लिये अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होता है। यह माप बुद्धि-परीक्षाओं, उद्यतता-परीक्षाओं (*Readiness Tests*), पूर्वज्ञापक-परीक्षाओं (*Prognostic Tests*), तथा अन्य मनोवैज्ञानिक परीक्षाओं के द्वारा भी किया जा सकता है।

(झ) प्रयोगशाला अथवा शयनिक (*Clinical*) प्रक्रियाएँ–इन प्रक्रियाओं में उन विशेष युक्तियों, परीक्षाओं, तथा साधित्रों (*Apparatus*) का समावेश होता है जिनका प्रयोग विशेष विशेषताओं—यथा दार्ष्टिक दोष, श्रवण-दोष, ग्रन्थि-हीनता, वाचन में नेत्र-गति की प्रकृति, इत्यादि—का एक यथार्थ वर्णन प्राप्त करने के लिये किया जाता है।

(२) कठिनता की प्रकृति का निश्चयन

शैक्षणिक-निदान के कार्यक्रम का द्वितीय पद, जो कठिनता का अनुभव करने वाले व्यक्तियों के निश्चयन के पश्चात् आता है, प्रत्येक व्यक्ति की कठिनता की सावधानी के साथ जाँच करना है। इस जाँच का उद्देश्य कठिनता की प्रकृति का निश्चयन करना होता है। अन्य शब्दों में, इस जाँच के द्वारा यह ज्ञात किया जाता है कि एक छात्र से भूल कहाँ होती है। यहाँ नैदानिक-परीक्षाएँ बड़े महत्व की होती हैं। इस समय छात्रों की विशेष कठिनाइयों को ज्ञात करने के लिये उन्हें अनेक नैदानिक-परीक्षाएँ दी जाती हैं। प्रत्येक परीक्षा एक संकुचित क्षेत्र का समन्वेषण करने का यत्न करती है। उदाहरणार्थ, एक परीक्षा उन विशेष संख्या-संयोजनों (*Number Combinations*) को ज्ञात करने का यत्न कर सकती है जो समस्त संख्याओं के जोड़ में बाधा डालते हैं, द्वितीय परीक्षा का उद्देश्य तर्क समस्याओं में सदोष पालन के लिये उत्तरदायी कारणों को ज्ञात करना हो सकता है, तथा अन्य परीक्षाओं के द्वारा गणित, वर्णविन्यास (*Spelling*), वाचन, हस्तलेख, एवं भाषा में भूलों का विश्लेषण किया जा सकता है। इन प्रयोजनों के लिये अनौपचारिक नैदानिक-परीक्षाओं की अपेक्षा प्रमापीकृत नैदानिक-परीक्षाएँ अधिक उपयोगी होती हैं क्योंकि विषयवस्तु की दृष्टि से वे एक अधिक सावधान चुनाव का प्रतिनिधित्व करती हैं। परन्तु अब तक प्रकाशित प्रमापीकृत नैदानिक-परीक्षाओं में से अधिकांश मुख्यतः प्रारम्भिक स्तर पर कुछ विषयों तक ही सीमित हैं। वस्तुतः भूलों का निश्चयन प्रमापीकृत एवं अप्रमापीकृत दोनों प्रकार

की नैदानिक-परीक्षाओं द्वारा किया जा सकता है।卐 कुछ विद्वानों का मत है कि वाचन में प्रमापीकृत नैदानिक-परीक्षाओं की अपेक्षा अप्रमापीकृत, अनौपचारिक नैदानिक-परीक्षाएँ अधिक महत्त्वपूर्ण होती हैं।

(३) भूलों के कारणों का निश्चयन

नैदानिक-कार्यक्रम के इस तृतीय प्रक्रम पर यह ज्ञात किया जाता है कि भूलें क्यों होती हैं। अन्य शब्दों में, सीखने की विधा को कौन-कौन कारक प्रतिबन्धित करते हैं। सी० सी० रौस द्वारा किया गया भूलों के कारणों का वर्गीकरण निम्नलिखित है :

I—आन्तरिक कारण

(क) *शारीरिक* : संवेदी-सज्जा (*Sensory Equipment*), ग्रन्थि-सन्तुलन, स्वास्थ्य-स्थिति, परिपक्वता-स्तर का प्रक्रम, इत्यादि।

(ख) *बौद्धिक* : सामान्य बुद्धि, विशिष्ट प्रज्ञाएँ (*Talents*) तथा हीनताएँ इत्यादि।

(ग) *आवेगजन्य* (*Emotional*) : अभिवृत्तियाँ, अभिरुचियाँ, चालनाएँ (*Drives*), पूर्वग्रह (*Prejudices*), अपर्याप्तता की भावना, इत्यादि।

(घ) *शैक्षणिक* : पृष्ठभूमि, कार्य-व्यसन, (*Work Habits*); इत्यादि।

II—बाह्य कारण

(क) *पाठशाला-पर्यावरण* : शिक्षण-कार्यक्रम, अध्यापक, सज्जा, सहपाठी, इत्यादि।

卐 *"But any test, whether standardized or not, can be used to reveal the location of errors."-Book No. 9, P. 307*

(ख) पाठशालाबाह्य-पर्यावरण : गृह, समुदाय, उपासनालय (*Chruch*), विनोदात्मक सुविधाएँ, इत्यादि ।

शिक्षा के वर्धमान संबोध (*Concept*) के साथ साथ शैक्षणिक-निदान के क्षेत्र में भी वृद्धि हुई है। प्राचीन काल में शिक्षा-संबोध की भाँति शैक्षणिक-निदान का क्षेत्र भी अत्यन्त सीमित था। आजकल ज्यों ज्यों शिक्षा का क्षेत्र बढ़ता जाता है त्यों त्यों शैक्षणिक-निदान का क्षेत्र भी विस्तृत होता जाता है। जो हो, अध्यापन की सफलता के लिये भूलों के निश्चित कारणों को ज्ञात करना अत्यन्त आवश्यक है। मान लीजिए एक छात्र लेखन में असाधारण रूप से भूलें करता है। स्पष्ट है कि छात्र की शारीरिक हीनताओं के अतिरिक्त अध्यापन की रीतियां भी इन भूलों का कारण हो सकती हैं। उदाहरणार्थ, यदि अध्यापक श्रुतलेख-रीति का प्रयोग करता है तो छात्र की बधिरता उसकी भूलों का कारण हो सकती है। यदि कृष्णपट्ट-रीति का प्रयोग करता है तो छात्र की सदोष दृष्टिशक्ति (*Eyesight*) उसकी भूलों का कारण हो सकती है। कहने का तात्पर्य यह है कि एक विशेष प्रकार की भूल विशेष प्रकार के कारणों द्वारा होती है और उन कारणों को ज्ञात करके ही छात्र का सुधार किया जा सकता है। अनेक अध्यापक छात्र की भूलों को देखते ही क्रोध से भर जाते हैं, उसे धमकाने लगते हैं, उसे शारीरिक यातनाएँ देने लगते हैं। यही नहीं, ज़ोर ज़ोर से चिल्ला कर वे उससे यह भी पूछते जाते हैं : यह सवाल क्यों ग़लत हुआ? पाठ रुक रुक कर क्यों पढ़ा?, श्रुतलेखन में इतनी भूलें क्यों कीं?, पाठ पढ़ते समय अमुक शब्द का अशुद्ध उच्चारण क्यों किया?, इत्यादि। ऐसे अध्यापकों की तुलना उन चिकित्सकों से की जा सकती है जो रोगी को देखते ही आग बबूला हो

जाते हों और उसे औषध देने के स्थान पर धमकियाँ अथवा दण्ड दे कर उससे यह पूछने लगते हों : बतला, तुझे यह रोग क्यों हुआ ? ऐसे चिकित्सक रोगी को ठीक करने के स्थान पर उसकी मृत्यु का ही कारण बन सकते हैं। ऐसे अध्यापक छात्र का हित अथवा सुधार कभी नहीं कर सकते। भूल क्यों हुई ?—इस प्रश्न का उत्तर स्वयं अध्यापक को ज्ञात करना चाहिए। उसे स्वयं छात्र की भूल के कारणों की खोज करनी चाहिए और धमकी अथवा दण्ड के स्थान पर उन कारणों को हटाने का यत्न करना चाहिए जो उस भूल के लिये उत्तरदायी हों।

(४) *प्रत्युपाय-प्रक्रियाएँ (Remedial Procedures) :*
प्रत्युपाय-कार्यक्रम

यह पहले ही कहा जा चुका है कि शैक्षणिक-निदान का अन्तिम उद्देश्य प्रभावशाली प्रत्युपाय-प्रक्रियाओं के लिये एक आधार प्रदान करना है। इस प्रक्रम पर अध्यापक के समक्ष एक ही प्रश्न होता है--छात्र के सुधार के लिये क्या किया जाए ? जब छात्र की भूलों तथा असन्तोषजनक समायोजनों (*Adjustments*) के कारण ज्ञात किये जा चुके हैं तब स्वभावतः उनके शोधन के लिये एक उपयुक्त कार्यक्रम की योजना की जानी चाहिए। सामान्यतः प्रत्येक छात्र के लिये व्यक्तिशः प्रत्युापय-कार्यक्रमों की योजना की जानी चाहिए। परन्तु यदि वही कारण अनेक छात्रों में चालू हों तो समूह-उपायों का प्रयोग किया जाना चाहिए। वाचन, गणित, भाषा, वर्णयोग (*Spelling*), तथा हस्तलेख में छात्रों की सामान्य निर्योग्यताओं के लिये रेखाचित्रों का निर्माण किया जाना

चाहिए जो दोष के प्ररूप, नैदानिक-प्रक्रिया तथा सुझाये गये प्रत्युपाय-उपचार की रूपरेखा देते हों। उदाहरणार्थ, हस्तलेख-रेखाचित्र को ही लीजिए। हस्तलेख के गुण में मुख्यतः नौ पक्षों का समावेश होता है: (१) झुकाव अथवा प्रवण (*Slant*), (२) पंक्तिबन्धन, (३) रेखा-गुण, (४) अक्षर-निर्माण, (५) शब्दान्तर, (६) अक्षरान्तर, (७) लेखन-परिमाण, (८) स्वच्छता, तथा (९) गति। पुनः, प्रत्येक पक्ष के पृथक् पृथक् गुण अथवा दोष होते हैं। उदाहरण के रूप में, गति पक्ष में दो प्रकार के दोषों का समावेश हो सकता है: (१) अत्यधिक मन्द लेखन, तथा (२) अत्यधिक द्रुत लेखन। इन दोषों को हस्तलेख-रेखाचित्र के द्वारा इस प्रकार प्रस्तुत किया जाएगा:

हस्तलेख-रेखाचित्र

दोष का प्ररूप	नैदानिक-प्रक्रिया	प्रत्युपाय-उपचार के लिये सुझाव
....		
....		
(९) गति (क) अत्यधिक मन्द लेखन	एक लेखन-गति-परीक्षा दी गयी तथा प्रति मिनिट लिखे गये अक्षरों की तुलना मापश्रेणी-सामान्यकों (*Norms*) के साथ की गयी।	मन्द गति की आदतों को हटाने के लिये गति-अभ्यास दो तथा इन्हें द्रुत गति से गिनते जाओ। आग्रह करो कि छात्र द्रुत गति से लिखें भले ही इससे उनके अक्षरों के रूप न्यूनाधिक सदोष हो जाएँ।
(ख) अत्यधिक द्रुत लेखन	....	....

(५) *निवारक-निदान*

नैदानिक एवं प्रत्युपाय-कार्यक्रम के पश्चात् पाठशाला के भीतर उन कारणों का आविष्कार किया जाना चाहिए जिनका निवारण किया जा सकता है। स्पष्टतः ये कारण पाठशाला के संघटन, पाठ्यक्रम, शिक्षण-सामग्रियों, अध्यापन की रीतियों से सम्बद्ध होंगे। अतः पाठशाला के इन पक्षों में आवश्यक आपरिवर्तन (*Modifications*) किये जाने चाहिएँ। सामान्यतः छात्रों की भूलों को सुधारने की अपेक्षा उनका निवारण करना अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे वे भविष्य में उन्हें प्रभावित न कर सकेंगी।❀ लिओ जे० ब्रूकनर ने उन छात्रों के विकास एवं शोधक-शिक्षण के कार्यक्रम के विषय में निम्नलिखित सुझाव दिये हैं जिनकी वृद्धि सन्तोषजनक नहीं है :

(१) क्योंकि व्यक्ति के व्यक्तित्व की समस्त प्रावस्थाओं की सर्वतोमुख वृद्धि वाञ्छित उद्देश्य है अतः अध्यापक को व्यक्ति के समस्त व्यक्तित्व के विकास की ओर ध्यान देना चाहिए, किसी विशेष सङ्कीर्ण कौशल के विकास की ओर नहीं।

(२) विकास-कार्यक्रम तथा शोधक-कार्यक्रम सर्वतोमुख होने चाहिएँ। शिक्षण में प्रत्युपाय-अध्यापन (*Remedial Teaching*) को एक महत्वपूर्ण तत्व के रूप में समझा जाना चाहिए। छात्र के उपचार का उत्तरदायित्व सामान्यतः अध्यापक के ऊपर होना चाहिए जिसे एक छात्र का निदान करने के लिये एक विशेषज्ञ की सहायता प्राप्य होनी चाहिए।

(३) विशिष्ट दोषों तथा उनके कारणों पर प्रत्यक्ष रूप से

❀ *"Prevention is the highest level of diagnosis, its ultimate goal."* —*Book No. 9, P· 382*

आक्रमण किया जाना चाहिए। शारीरिक दोषों एवं हीनताओं का शोधन यथाशक्य आरम्भ में ही होना चाहिए। कार्य की सदोष रीतियों एवं असंतोषजनक पर्यावरण-प्रभाव का शोधन किया जाना चाहिए। पाठशाला तथा समस्त अन्य सामाजिक अभिकरणों (*Agencies*) के बीच निकट सम्बन्ध होना चाहिए।

(४) अध्यापक को उन रीतियों एवं शिक्षण-सामग्रियों का ही प्रयोग करने का यत्न करना चाहिए जो वैज्ञानिक अध्ययन के द्वारा मान्य की जा चुकी हैं।

(५) प्रत्युपाय-कार्यक्रम एक अस्थायी आधार पर आगे चलना चाहिए और आवश्यकतानुसार आपरिवर्तित किया जाना चाहिए।

(६) अध्यापक को छात्र की अभिरुचि एवं सहयोग को प्रोत्साहित करना चाहिए। छात्र को इस योग्य बनाया जाना चाहिए कि वह आत्म-निदान के द्वारा अपनी हीनता की प्रकृति में अन्तर्दृष्टि प्राप्त कर सके।

७—निदान-विशेषज्ञों की अर्हताएँ (*Qualifications*) : निदान के लिये पूर्वापेक्षित गुण

नैदानिक-कार्यक्रम में सफलता प्राप्त करने के लिये एक निदान-विशेषज्ञ में कुछ विशेष अर्हताओं (*Qualifications*) का होना अत्यन्त आवश्यक है। मैकौल के मतानुसार एक सफल निदान-विशेषज्ञ में निम्नलिखित गुण होने चाहिएँ :

(१) उसे पाठशाला के द्वारा छात्रों में विकसित विभिन्न योग्यताओं के सामान्य दोषों के कारणों का ज्ञान रखना चाहिए।

(२) वह छात्रों के सूक्ष्म व्यवहार को देखने की क्षमता तथा उसकी व्याख्या करने के लिये प्रशिक्षण अथवा अनुभव रखता हो।

(३) वह एक ऐसी प्रविधि (*Technique*) से परिचित हो जो अदृश्य सङ्केतों को ऊपर तक ला सके।

(४) वह यह जानता हो कि एक दिये हुए निदान के लिये क्या उपचार किया जाना चाहिए।

८—उपसंहार

अन्त में, इस महत्वपूर्ण तथ्य पर एक बार पुनः बल देने की आवश्यकता है कि नैदानिक-परीक्षाओं का क्षेत्र केवल निदान तक ही सीमित नहीं है, अपितु निदान के द्वारा प्रकटित छात्रों की भूलों का शोधन करना तथा उनके कारणों का निवारण करना भी नैदानिक-परीक्षाओं का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य होता है। एक अच्छी नैदानिक-परीक्षा व्यक्ति के विषय में अनेक संबद्ध तथ्यों पर प्रकाश डालती है। अतः उसके परिणामों की व्याख्या अत्यन्त सावधानी के साथ की जानी चाहिए। अब तक नैदानिक-प्रक्रियाओं पर सर्वाधिक कार्य वाचन तथा अङ्कगणित में हुआ है। अतः शिक्षा के अन्य क्षेत्रों में नैदानिक-परीक्षाओं एवं कार्यक्रमों की बड़ी आवश्यकता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि नैदानिक-प्रक्रियाएँ छात्रों को ठीक प्रकार से समझने में अध्यापकों की अत्यधिक सहायता कर सकती हैं। अतः अध्यापकों को नैदानिक-परीक्षाओं के निर्माण की ओर पर्याप्त ध्यान देना चाहिए।

अष्टम अध्याय

सामान्य बुद्धि-परीक्षा

१—प्रस्तावना

कार्य के आधार पर समस्त परीक्षाओं को तीन समूहों में विभाजित किया जा सकता है, (१) शैक्षणिक अथवा निष्पन्न-परीक्षाएँ, (२) बुद्धि-परीक्षाएँ, तथा (३) व्यक्तित्व-परीक्षाएँ। बुद्धि-परीक्षाओं को कई अन्य नामों से भी पुकारा जाता है, यथा मानसिक-परीक्षाएँ (*Mental Tests*), सामान्य बुद्धि-परीक्षाएँ, इत्यादि। प्रस्तुत अध्याय में सामान्य बुद्धि-परीक्षाओं के विभिन्न पक्षों पर विचार किया जाएगा।

२—बुद्धि-परीक्षा का अर्थ

बुद्धि-परीक्षा के अर्थ को समझने से पूर्व स्वयं बुद्धि के अर्थ को समझना अनेक दृष्टियों से आवश्यक है। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि मनोविज्ञान के क्षेत्र में बुद्धि की परिभाषा का कार्य एक अत्यन्त विवादग्रस्त विषय है। बुद्धि की परिभाषा के विषय में विभिन्न विचारकों एवं मनोवैज्ञानिकों के मतों में इतनी भिन्नता होती है कि एक सामान्य व्यक्ति के लिये यह निर्णय करना एक अत्यन्त कठिन कार्य हो जाता है कि अन्ततः बुद्धि है क्या? परीक्षण की दृष्टि से, बुद्धि का सर्वोत्तम अर्थ होता है उन "मानसिक क्षमताओं का मिश्रण" जिन्हें मापा जाता है। बुद्धि-परीक्षाएँ व्यक्ति की इन क्षमताओं को अप्रत्यक्षतः

मापती हैं, प्रत्यक्षतः नहीं। मानसिक-परीक्षाओं के विकास में सर्वाधिक कठिनाई इन मानसिक क्षमताओं अथवा लक्षणों की परिभाषा एवं निर्धारण करने में होती है। यहाँ परीक्षण के दृष्टिकोण से बुद्धि की कुछ महत्वपूर्ण, प्रतिनिधि परिभाषाओं पर विचार किया जाएगा।

(१) **टरमैन** (*Terman*) : "एक व्यक्ति उस अनुपात में बुद्धिमान् होता है जितना वह गुणवाचक (*Abstract*) विचार करने के योग्य होता है।"卐

(२) **कौलविन** (*Colvin*) : "एक व्यक्ति वहाँ तक बुद्धि रखता है जहाँ तक उसने अपने पर्यावरण में अपना समायोजन करना सीखा है अथवा सीख सकता है।"❀

(३) **बिने** (*Binet*) : "विचार की एक निश्चित दिशा लेने तथा बनाये रखने की प्रवृत्ति, वाञ्छित उद्देश्य को अर्जित करने के प्रयोजन के लिये अनुकूलन (*Adaptations*) करने की क्षमता, तथा आत्म-समालोचना की शक्ति।"†

卐 *"An individual is intelligent in proportion as he is able to carry on abstract thinking".*

❀ *"An individual possesses intelligence in so far as he has learned, or can learn to adjust himself to his environment."*

† *"......the tendency of thought to take and maintain a definite direction, the capacity to make adaptations for the purpose of attaining the desired end, and the power of self criticism."*

(४) बर्ट (*Burt*) : '.........अपेक्षया नूतन स्थितियों में पुनर्समायोजन की शक्ति।''‡

(५) स्टौड्डर्ड (*Stoddard*) : "उन क्रियाओं को, जिनके लक्षण (१) कठिनता (२) जटिलता, (३) गुणवाचकता, (४) मितव्ययिता, (५) एक यत्नोद्देश में अनुकूलनता, (६) सामाजिक महत्त्व, तथा (७) मूलों के उन्मज्जन हों, लेने की, और ऐसी क्रियाओं को उन परिस्थितियों में बनाये रखने की योग्यता जो ऊर्जा के एक संकेन्द्रण तथा आवेगजन्य शक्तियों के एक प्रतिरोध की माँग करती हों।''卐

(६) गुड (*Good*) : "बुद्धि :.........(३) जैसीकि सामान्यतः मापन तथा परीक्षण में प्रयुक्त (की जाती है), चुनी हुई परीक्षाओं के एक समूह पर पालन द्वारा निरूपित योग्यता की एक मात्रा, क्योंकि वे (परीक्षाएँ) विद्या-कर्म में तथा किन्हीं व्यवसायों में सफलता की

---

‡ *"......the power of readjustment to relatively novel situations."*

卐 *"... the ability to undertake activities that are characterized by (1) difficulty, (2) Complexity, (3) abstractness, (4) economy, (5) adaptiveness to a goal, (6) social value, and (7) the emergence of originals, and to maintain such activities under conditions that demand a concentration of energy and a resistance to emotional forces."*

भविष्यवाणी में अपना व्यावहारिक महत्व सिद्ध कर चुकी हैं।"❀

(७) ग्रीन तथा जौर्जेन्सन (*Greene and Jorgensen*) "......सीखने की अथवा प्रशिक्षण से लाभ उठाने की शक्ति।"†

(८) रिन्जलैण्ड (*Rinsland*) "....सीखने के लिये क्षमता, धन वे सूचनाएँ, कौशल, तथा अभिवृत्तियाँ जिन्हें अपने पर्यावरण से प्रतिक्रिया करके व्यक्ति ने प्राप्त किया है।"❀

बुद्धि के अर्थ को ठीक ठीक समझने के लिये उपर्युक्त परिभाषाओं को तीन वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है, (१) वे परिभाषाएँ जो मुख्यतः उच्च मानसिक शक्तियों अथवा क्षमताओं पर बल देती हैं, (२) वे परिभाषाएँ जो सीखने की योग्यता पर बल देती हैं, तथा वे परिभाषाएँ जो अनुकूलनता (*Adaptability*) पर बल देती हैं। फ्रीमैन ने बुद्धि के तीन संबोधों को सूचीबद्ध किया है। (१) प्राङ्गारिक (*Organic*),

---

❀ "INTELLIGENCE : ..... *(3) as commonly used in measurement and testing, a degree of ability represented by performance on a group of tests selected because they have proved their practical value in the prediction of success in academic work and in some vocations.*"

† *" .... the power to learn or to profit from learning."*

❀ *".... the capacity for learning, plus the informations skills, and attitudes which the individual has gained from reacting to his environment."*

(२) सामाजिक, तथा (३) मनोवैज्ञानिक अथवा व्यवहारात्मक। फ्रीमैन का मत है कि बुद्धि-परीक्षकों का प्रत्यक्ष विषय बुद्धि का केवल व्यवहारात्मक संबोध होता है। समस्त बुद्धि-परीक्षाओं में प्राप्ति अथवा निष्पन्न के स्तरों अथवा पालन के स्तरों का निर्धारण संनिहित होता है जो आयु-सामान्यकों (*Age Norms*) के शब्दों में व्यक्त किये जाते हैं। बुद्धि को मापने के लिये मानसिक-परीक्षाओं की विषयवस्तु के आधार पर विभिन्न स्थितियों में बुद्धि के विषय में विभिन्न अनुमान किये जाते हैं। उदाहरणार्थ, (१) मौखिक परीक्षाओं की स्थिति में, बुद्धि को शब्द-संग्रह की परीक्षाओं में अंक प्राप्त करने की योग्यता, सामान्य सूचना एवं तय्यारी की सीमा, तथा सम्बन्धों का प्रयोग समझा जा सकता है; (२) अमौखिक परीक्षाओं की स्थिति में, बुद्धि छिद्रों में ईंटों को अन्वायोजित करने, चित्रों को पूर्ण करने, अथवा यह ज्ञात करने की क्षमता समझी जा सकती है कि सदोष चित्रों में क्या दोष है; (३) अभियोग्यता-परीक्षाओं की स्थिति में, बुद्धि का अर्थ प्रहस्तन (*Manipulation*) की शीघ्रता, विवेचन की सूक्ष्मता, तथा सरल कौशलों को अर्जित करने की सुविधा किया जा सकता है।

३—बुद्धि की प्रावस्थाएँ (*Phases*)

बुद्धि के अर्थ को और अधिक स्पष्टतः समझने के लिये बुद्धि की प्रावस्थाओं को समझना आवश्यक है। बुद्धि की दो प्रावस्थाएँ होती हैं। (१) अमूर्त बुद्धि (*Abstract Intelligence*), तथा मूर्त बुद्धि (*Concrete Intelligence*)। अन्य शब्दों में, बुद्धि के आधार पर व्यक्तियों को अमूर्त एवं मूर्त दो प्रारूपों में विभाजित किया जा सकता है। अमूर्त बुद्धि वाले

व्यक्ति अमूर्त उद्दीपकों में सहर्ष प्रतिक्रिया करते हैं और उन मानसिक-परीक्षाओं के आधार पर सामान्य अथवा उत्तम निर्धारित किये जाते हैं जिनमें अमूर्त सामग्री प्रधान होती है। मूर्त बुद्धि वाले व्यक्ति कल्पनाओं (*Abstractions*) की अपेक्षा मूर्त एवं ठोस सामग्री में सहर्ष प्रतिक्रिया करते हैं।

४—बुद्धि के सिद्धान्त : बुद्धि की प्रकृति

बुद्धि के अर्थ को स्पष्ट रूप से समझने के लिये बुद्धि के सिद्धान्तों अथवा प्रकृति को समझना उतना ही आवश्यक है जितना बुद्धि की विभिन्न परिभाषाओं एवं प्रावस्थाओं को समझना। वस्तुतः बुद्धि के सिद्धान्त योग्यताओं अथवा क्षमताओं के ही सिद्धान्त अथवा संबोध होते हैं। बुद्धि के चार मुख्य सिद्धान्त होते हैं : (१) क्षमता-सिद्धान्त (*Faculty Theory*), (२) द्वि-खण्ड सिद्धान्त (*Two-Factor Theory*), (३) त्रि-खण्ड सिद्धान्त तथा (४) बहु-खण्ड सिद्धान्त (*Multi-Factor Theory*)।

(१) क्षमता-सिद्धान्त (Faculty Theory)

क्षमताओं के संघटन के सम्बन्ध में सर्व प्रथम सिद्धान्त क्षमता-सिद्धान्त है। क्षमता-सिद्धान्त के अनुसार मस्तिष्क, बुद्धि अथवा क्षमता की रचना अनेक तत्वों अथवा संघटकों (*Components*) के द्वारा होती है। इनमें से प्रत्येक तत्व प्रत्येक व्यक्ति में न्यूनाधिक मात्रा में रहता है। ये तत्व परस्पर सहसम्बन्धित हो सकते हैं और नहीं भी हो सकते, परन्तु सामान्यतः उन्हें अपेक्षया स्वतन्त्र समझा जाता रहा है। इनमें से कुछ क्षमताएँ—यथा स्मृति, कल्पना, इत्यादि—सामान्य होती हैं तथा कुछ क्षमताएँ—यथा भाषा-क्षमता, संख्या-क्षमता,

इत्यादि—विशिष्ट। कुछ क्षमताओं को—यथा सावधानी, आवेगता (*Impulsiveness*), इत्यादि—क्षमताओं के स्थान पर व्यक्तित्व के लक्षण माना जाता है। ये विभिन्न क्षमताएँ मस्तिष्क (*Brain*) के विशेष क्षेत्रों में स्थिति होती हैं। औपचारिक अनुशासन-सिद्धान्त (*Theory of Formal Discipline*) के अनुसार, जिसे कभी क्षमता-सिद्धान्त से सम्बन्धित माना जाता था, यह कल्पना की जाती थी कि विभिन्न क्षमताओं अथवा मस्तिष्क के क्षेत्रों को अभ्यास के द्वारा विकसित अथवा प्रशिक्षित किया जा सकता है।

(२) *द्वि-खण्ड सिद्धान्त (Two-Factor Theory)*

बुद्धि के द्वि-खण्ड सिद्धान्त की घोषणा सर्व प्रथम स्पीअरमैन (*Spearman*) ने १९०४ में की थी। इस सिद्धान्त के अनुसार बुद्धि के दो खण्ड होते हैं: (१) सामान्य बौद्धिक खण्ड, जिसे स्पीअरमैन ने "*G*" संज्ञा प्रदान की, तथा (२) अनेक विशिष्ट खण्ड, जिन्हें उन्होंने "*S*" अक्षर से सम्बोधित किया। क्षमताओं के प्राङ्गारिक (*Organic*) आधार पर, स्पीअरमैन का विचार है कि "*G*" खण्ड चेता-ऊर्जा (*Neural Energy*) की मात्रा पर आधारित होता है जो बौद्धिक-कार्य चालू रखने के लिये व्यक्ति के अधीन होती है। "*S*" चेता-संहृति (*Nervous System*) के विशेष भागों की संरचना (*Structure*) में प्रतिनिहित होते हैं।

(३) *त्रि-खण्ड सिद्धान्त (Tri-Factor Theory)*

द्वि-खण्ड सिद्धान्त का आविष्कार करने के पश्चात् स्पीअरमैन ने तृतीय खण्ड की कल्पना की जिसे समूह-खण्ड (*Group Factors*) की संज्ञा प्रदान की। ये समूह-खण्ड "*G*"

खण्ड की अपेक्षा कम सामान्य, कम विस्तीर्ण, एवं कम समरूप होते हैं, तथा "*S*" खण्डों की अपेक्षा तो और भी कम। स्पीअरमैन के सिद्धान्त का सामान्य-खण्ड (*G*) मनोविज्ञान के क्षेत्र में एक विवाद का विषय बना हुआ है।

(४) बहु-खण्ड सिद्धान्त (Multi-Factor Theory)

बुद्धि के बहु-खण्ड सिद्धान्त को थर्स्टन (*Thurstone*) ने प्रस्तुत किया है। थर्स्टन के मतानुसार बुद्धि की रचना नौ "प्राथमिक मानसिक क्षमताओं (*Primary Mental Abilities*)" के द्वारा हुई है : (१) दृष्टि-क्षमता, (२) प्रातिबोधिक (*Perceptual*)-क्षमता, (३) संख्यात्मक-क्षमता, (४) तार्किक-क्षमता, (५) शब्दों के साथ संव्यवहार करने में प्रवाह, (६) स्मृति, (७) उद्गामी (*Inductive*)-क्षमता, तथा (८) निगामी (*Deductive*) क्षमता, (९) एक समस्या के समाधान को आयन्त्रित करने की क्षमता। थर्स्टन का विचार है कि किसी विशेष क्रिया से सम्बन्धित क्षमता इन्हीं नौ प्राथमिक मानसिक दक्षताओं के संयोजन पर निर्भर रहती है। कुछ प्राथमिक क्षमताएँ—यथा दृष्टि, संख्यात्मक, उद्गामी—अन्य प्राथमिक क्षमताओं की अपेक्षा अधिक आवश्यक होती हैं और कुछ कौशलों में अधिक विस्तृत रूप से कार्य करती हैं।

यह कहना अत्यन्त कठिन है कि बुद्धि के उपर्युक्त सिद्धान्तों में से अमुक सिद्धान्त उपयोगी है तथा अमुक अनुपयोगी। यही कारण है कि बुद्धि की एक अन्तिम परिभाषा प्रस्तुत करना सर्वथा असम्भव है। तथापि, एक बुद्धि-परीक्षक का काम इस कल्पना से चल सकता है कि बुद्धि का अर्थ होता है "एक अच्छे पालन की क्षमता की वह मात्रा जिसे एक व्यक्ति

विभिन्न बौद्धिक कार्यों में दिखलाता है। बुद्धि-परीक्षक का कार्य विभिन्न परीक्षाओं द्वारा इन्हीं मानसिक क्षमताओं को मापना होता है।

५—बुद्धि-परीक्षाओं की उत्पत्ति एवं विकास

बुद्धि-परीक्षाओं की उत्पत्ति मनोवैज्ञानिक प्रयोगशालाओं में वैयक्तिक भेदों के अध्ययन से अभिनव काल में हुई है। सर्व प्रथम उन्हें उन बालकों को चुनने की अत्यन्त व्यावहारिक आवश्यकता की पूर्ति करने के लिये विकसित किया गया था जिनकी पाठशाला-कार्य में सफलता प्राप्त करने की सम्भावना न थी। तथापि, आजकल उन्हें विशेष शिक्षण के लिये अत्यन्त प्रतिभाशाली छात्रों को चुनने के लिये भी प्रयुक्त किया जा रहा है। बुद्धि-परीक्षाओं के विकास में निम्नलिखित सीमाचिह्न (*Landmarks*) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं :—

(१) ग्रीनविच ज्यौतिष-वेधशाला में परीक्षण, १७९६

मानसिक क्षमताओं में वैयक्तिक भेदों को दूरेक्ष (*Telescope*) के अधीन सर्वप्रथम १७९६ में इङ्गलैण्ड की ग्रीनविच ज्यौतिष-वेधशाला में लाया गया था।

(२) वैयक्तिक भेदों का वैज्ञानिक अध्ययन, १८६९

१८६९ में गैल्टन (*Galton*) की सुविख्यात पुस्तक *Hereditary Genius* का प्रकाशन हुआ। इस पुस्तक ने वैयक्तिक भेदों के वैज्ञानिक अध्ययन का मार्ग प्रशस्त कर दिया।

(३) मानसिक आयु के संबोध का विकास, १८८७

१८८७ में अमेरिका के चिकित्सक डॉ० ई० एस० चेले (*Dr. E. S. Chaille*) ने तीन वर्ष तक के बालकों के मानसिक

स्तरों का विवेचन करने के लिये प्रमापों (*Standards*) एवं साधारण परीक्षाओं का, तथा मानसिक आयु के संबोध (*Concept*) का विकास किया।

(४) *"मानसिक परीक्षा" शब्द का प्रयोग, १८६०*

"मानसिक परीक्षा" शब्द का प्रयोग सर्व प्रथम कैटिल (*Cattell*) ने १८९० में किया था।

(५) *परीक्षाओं के दस प्ररूपों का वर्णन, १८६५*

१८९५ में बिने तथा हैनरी (*Binet and Henry*) ने परीक्षाओं के दस प्ररूपों का वर्णन किया जिनके विषय में उनका विचार था कि वे मानसिक क्षमताओं का विवेचन करने के लिये सम्भाव्य थे।

(६) *वैयक्तिक बुद्धि-परीक्षा का विकास, १९०५*

१९०५ में बिने तथा साइमन (*Simon*) ने सर्व प्रथम बुद्धि-परीक्षा प्रस्तुत की। इस परीक्षा का उद्देश्य मुख्यतः मानसिक रूप में विमन्दित (*Retarted*) उन बालकों को चुनना था जिनके लिये विशेष शिक्षण की आवश्यकता थी। यह सर्व प्रथम वैयक्तिक बुद्धि-परीक्षा थी। इस परीक्षा का प्रथम संशोधन १९०८ में तथा द्वितीय संशोधन १९११ में किया गया था। १६०८ के संशोधन ने मानसिक आयु के संबोध को प्रस्तुत किया और इसे प्राप्त करने का साधन प्रदान किया। सर्व प्रथम बुद्धि-परीक्षा का निर्माण करने के कारण ऐलफ्रेड बिने को "बुद्धि-परीक्षण का पिता" कहा जाता है। बिने एक फ्रेंच मनोवैज्ञानिक थे। १९०४ में फ्रांस के लोक-शिक्षण-मन्त्री ने सार्वजनिक पाठशालाओं के बालकों में विमन्दन (*Retardation*) के कारणों को ज्ञात करने के लिये

एक समिति की नियुक्ति की। बिने भी इस समिति के एक सदस्य थे। १९०५ में प्रकाशित सर्व प्रथम बुद्धि-परीक्षा बिने के उस कार्य का प्रत्यक्ष परिणाम थी जो उन्होंने उस समिति के सदस्य के रूप में किया था। प्रथम बुद्धि-परीक्षा में तीस प्रश्न संनिहित थे जो कठिनता के क्रम में क्रमबद्ध किये गये थे। अब तक बिने-परीक्षाओं का अनुवाद विश्व की एक द्वादशक (*Dozen*) से अधिक भाषाओं में हो चुका है। यही नहीं, उनके अनेक संशोधन भी प्रकाशित हो चुके हैं।※ बिने प्रथम मनोवैज्ञानिक थे जिन्होंने बुद्धि के विषय में यह कहा कि बुद्धि एक ऐसी एकल (*Single*) सङ्कीर्ण गुण अथवा शक्ति नहीं होती जिसे परीक्षा के एक एकल प्ररूप से मापा जा सके, अपितु वह "क्षमताओं का एक जटिल संघटन" होती है और उसे पालनों (*Performances*) अथवा प्रश्नों के अनेक प्ररूपों द्वारा ही मापा जा सकता है। वैयक्तिक शाब्दिक परीक्षाओं में अनेक प्रकार के पदों का समावेश हो सकता है, यथा (१) परिचित पदार्थों के नाम पूछना, (२) एक नामाङ्कित चित्र की ओर निर्देश करना, (३) भारों (*Weights*) की तुलना करना, (४) चित्रों में लुप्त भागों को ज्ञात करना, (५) चित्रों का वर्णन करना, (६) यह पूछना कि दो वस्तुएँ किस प्रकार समान हैं,

---

※ बिने-परीक्षाओं के मुख्य संशोधन एवं विस्तार निम्नलिखित हैं :

(1) Stanford Revision and Extension of the Binet-Simon Scale (By Terman), 1916.

(2) Revised Stanford-Binet Scale (By Terman & Merrill), 1937.

(3) Kuhlmann Revision, 1912, revised in 1922 and again in 1939.

(७) अङ्कों (*Digits*) की आगे पीछे पुनरावृत्ति करना, (८) अव्यवस्थित शब्दों को वाक्यों में क्रमबद्ध करना, (९) कुछ प्रश्नों का समाधान करना, (१०) दिये हुए शब्दों की परिभाषा करना, (११)एक मिनिट में उतने शब्दों को कहना जो मस्तिष्क में आयें। बिने-प्रारूप बुद्धि परीक्षाएँ वैयक्तिक परीक्षाओं के नाम से भी पुकारी जाती हैं। समूह बुद्धि-परीक्षाओं की अपेक्षा वैयक्तिक बुद्धि-परीक्षाओं को अधिक मान्य एवं विश्वसनीय समझा जाता है, परन्तु उनमें पाँच मुख्य दोष भी होते हैं : (१) वे अधिक व्ययसाध्य होती हैं, (२) उनके लिये अधिक समय की आवश्यकता होती है, (३) उनका प्रबन्धन केवल प्रशिक्षित परीक्षक ही कर सकते हैं, (४) उनके निदेश एवं अङ्कन बड़े जटिल होते हैं, तथा (५) वे महानुमाप (*Large Scale*) परीक्षण-कार्यक्रम के लिये उपयुक्त नहीं होती।

(७) समूह बुद्धि-परीक्षा का विकास, १९१७

वैयक्तिक बुद्धि-परीक्षाओं के दोषों के कारण [(१) वे व्यय-साध्य होती थीं, (२) वे पर्याप्त समय चाहती थीं, (३) तथा उनके प्रबन्धन के लिये प्रशिक्षित परीक्षकों की आवश्यकता होती थी] १९१० के पश्चात् मनोवैज्ञानिकों ने समूह बुद्धि-परीक्षाओं का विकास करने के लिये यत्न करना आरम्भ कर दिया। फलतः १९१७ में सर्व प्रथम प्रमापीकृत समूह बुद्धि-परीक्षा की उत्पत्ति हुई जिसे *Army Alpha Test* के नाम से पुकारा जाता है। यह एक शाब्दिक (*Verbal*) परीक्षा थी। इसके साथ *Army Beta* परीक्षा भी प्रस्तुत की गयी जो एक अ-शाब्दिक (*Non-verbal*) बुद्धि-परीक्षा थी। *Army Alpha Test* का निर्माण अमेरिकन मनोवैज्ञानिकों के एक समूह के द्वारा किया

गया था। प्रथम विश्व युद्ध की अवधि में इसे डेढ़ लाख से अधिक व्यक्तियों पर प्रयुक्त किया जा चुका है। द्वितीय विश्व युद्ध की अवधि में अमेरिकन मनोवैज्ञानिकों ने एक और नवीन परीक्षा का निर्माण किया जिसे "*Army General Classification Test*" के नाम से पुकारा जाता है। इस परीक्षा का प्रयोग सैनिक जीवन में अपेक्षित विभिन्न कर्तव्यों को अपनी सामान्य क्षमता के अनुसार सीखने के लिये व्यक्तियों का वर्गीकरण करने के लिये किया गया था। परीक्षा को चार तुल्य अन्तर्निमेय रूपों में तय्यार किया गया है। प्रत्येक रूप के लिये १ घंटा समय की आवश्यकता होती है। वास्तविक परीक्षा ४० मिनिट में ही दी जा सकती है। परीक्षा में शाब्दिक, संख्यात्मक, तथा स्थान-सम्बन्धी (*Spatial*) कौशल संनिहित हैं जो कठिनता-क्रम में क्रमबद्ध किये गये हैं। यह परीक्षा सशस्त्र बल (*Armed Forces*) के दस लाख से अधिक व्यक्तियों पर प्रयुक्त की जा चुकी है। आजकल इन दोनों परीक्षाओं के मूल रूप असैनिक प्रयोग के लिये प्राप्य हैं। अब इन समूह-परीक्षाओं के अतिरिक्त अन्य अनेक समूह बुद्धि-परीक्षाओं का निर्माण हो चुका है। उदाहरणार्थ, "*Otis Self-Administering Tests of Mental Ability* (*Otis . A. S*) जो प्रौढों के लिये सर्वोत्तम परीक्षा समझी जाती है। *Otis S. A.* के अतिरिक्त निम्नलिखित समूह बुद्धि-परीक्षाएँ ७ से १२ तक श्रेणियों में प्रयुक्त करने के लिये उपयुक्त समझी जाती हैं :—

(1) *Kuhlmann-Anderson Intelligence Tests.*

(2) *Oits Group Intelligence Scale.*

(3) *Terman Group Test of Mental Ability.*

अधिकांश समूह बुद्धि-परीक्षाएँ शाब्दिक परीक्षाएँ हैं। अ-शाब्दिक समूह परीक्षाओं में निदेश शब्दों में ही दिये जाते हैं।

६—बुद्धि-मापन की रीतियाँ : बुद्धि-परीक्षाओं के प्ररूप

सामान्यतः समस्त बुद्धि-परीक्षाओं को दो प्ररूपों में विभाजित किया जा सकता है, (१) वैयक्तिक बुद्धि-परीक्षाएँ, तथा (२) समूह बुद्धि-परीक्षाएँ। परन्तु इन दो प्ररूपों के अन्तर्विभाजनों (*Subdivisions*) का कुछ ऐसा रूप होता है कि उन्हें ठीक ठीक समझने के लिये सुविधा की दृष्टि से बुद्धि-परीक्षाओं के अन्तर्विभाजनों के स्थान पर उनके स्वतन्त्र प्ररूप मानना समुचित होगा। इसी दृष्टिकोण से आर० एम० थौमस ने बुद्धि-परीक्षाओं के प्रकारों को पाँच वर्गों में रखा है जो निम्नलिखित हैं :

(१) बिने-प्ररूप परीक्षाएँ

समस्त बिने-प्ररूप बुद्धि-परीक्षाएँ वैयक्तिक परीक्षाएँ होती हैं। अन्य शब्दों में, बिने-प्ररूप बुद्धि-परीक्षाओं के पदों का प्रबन्धन एक प्रशिक्षित परीक्षक एक समय पर केवल एक ही छात्र पर कर सकता है। एक बिने-प्ररूप परीक्षा उन बालकों की स्थिति में अत्यन्त प्रभावशाली होती है जो उस भाषा को बोल तथा समझ सकते हैं जिसका प्रयोग परीक्षक करता है।

(२) वैयक्तिक करण-परीक्षाएँ (Performance Tests)

बिने-प्ररूप परीक्षाओं का एक मुख्य दोष यह है कि वे कुछ बाधित (*Handicapped*) बालकों—यथा बधिर बालक, गूंगे (*Mute*) बालक, अथवा वे बालक जो केवल एक विदेशी भाषा ही जानते हैं—की क्षमताओं का एक परिशुद्ध माप प्रदान नहीं करतीं। ऐसे बालकों के परीक्षण के लिये मनोवैज्ञानिकों ने

वैयक्तिक करण-परीक्षाओं का आविष्कार किया है। ये परीक्षाएँ मूक अभिनयकर्ता (*Pantomime*) द्वारा प्रबन्धित की जा सकती हैं और इनके पदों के उत्तर देने के लिये छात्र को कुछ क्रियाएँ करनी होती हैं। करण-परीक्षाओं में विशिष्ट पदों का समावेश होता है यथा पट्ट-निर्माण (*Form Boards*), चित्र-पूर्ति पटल (*Picture-Completion Boards*), घन-परीक्षा (*Cube Test*), व्यूह (*Mazes*), इत्यादि।

(३) *समूह शाब्दिक-परीक्षाएँ*

जैसाकि ऊपर कहा जा चुका है वैयक्तिक बुद्धि-परीक्षाएँ व्ययसाध्य होती हैं, वे अधिक समय की माँग करती हैं, तथा उनके प्रबन्धन के लिये प्रशिक्षित परीक्षकों की आवश्यकता होती है, १९१० से मनोवैज्ञानिक समूह बुद्धि-परीक्षाओं का निर्माण करने के लिये यत्न करते रहे हैं। फलतः *Army Alpha Test* के रूप में सर्व प्रथम समूह शाब्दिक-परीक्षा का विकास हुआ जो एक पत्र-तथा-अङ्कनी परीक्षा (*Paper-and-Pencil Test*) है।

(४) *समूह अ-शाब्दिक एवं अ-भाषा परीक्षाएँ*

समूह-शाब्दिक परीक्षाएँ पत्र-तथा-अङ्कनी-परीक्षाएँ होती अर्थात्, उनके पदों के उत्तर देने के लिये वाचन-योग्यता की आवश्यकता होती है, और एक प्रभावशाली रूप में उनका प्रयोग उन व्यक्तियों के साथ नहीं किया जा सकता जो पढ़ना नहीं जानते अथवा भाषा को नहीं समझते। इस अभाव की पूर्ति के लिये अ-भाषा एवं अ-शाब्दिक परीक्षाएँ विकसित की गयी हैं। इन परीक्षाओं के पदों में केवल चित्रों एवं आकृतियों का समावेश होता है। ये परीक्षाएँ भिन्न भाषाएँ बोलने वाले

व्यक्तियों को दी जाती हैं और उन बालकों का परीक्षण करने के लिये अत्यन्त उपयोगी होती हैं जो विदेशी होते हैं अथवा कम सुनते हैं। अ-भाषा परीक्षाओं की भांति अ-शाब्दिक परीक्षाएँ भी सर्वथा चित्रमय होती हैं और उनके पदों के उत्तर देने के लिये छात्रों में पढ़ने तथा लिखने की योग्यता का होना आवश्यक नहीं होता। तथापि, इन परीक्षाओं में निदेश भाषा में ही दिये जाते हैं। प्राथमिक श्रेणियों के बालकों के लिये समूह-परीक्षाएँ मुख्यतः अ-शाब्दिक होती हैं। अ-शाब्दिक एवं अ-भाषा समूह-परीक्षाओं में विशिष्ट पदों का समावेश होता है यथा (१) निदेशों का अनुसरण करना, (२) रूपाङ्कों (*Designs*) को पूर्ण करना, (३) रूपाङ्कों की प्रतिलिपि करना, (४) चित्रों की तुलना करना, (५) लुप्त भागों को खींचना, (६) वस्तुओं की विशेषताओं की पहिचान करना, (७) कहानियों को समाप्त करना, (८) प्रतीकाङ्क-संयोजनों (*symbol Digit Combinations*) को पहिचानना, (९) घनों (*Cubes*) को गिनना, तथा (१०) प्रतीकात्मक सादृश्यों (*Symbolic Analogies*) को पहिचानना।

(५) संयोजन (combination) समूह-परीक्षाएँ

अनेक समूह-परीक्षाओं में शाब्दिक तथा अ-शाब्दिक दोनों परीक्षाओं के भागों का समावेश होता है और उन्हें शाब्दिक अथवा अ-शाब्दिक परीक्षाओं के रूप में वर्गीकृत नहीं किया जा सकता। ऐसी परीक्षाओं को संयोजन समूह-परीक्षाओं (*Combination Group Tests*) के नाम से पुकारा जाता है।

७—बुद्धि के माप (*Measures*) अथवा एकक (*Units*)

बुद्धि-परीक्षाओं के गुण अथवा परिणामों को व्यक्त करने

के लिये सामान्यतः दो मापों अथवा एककों का प्रयोग किया जाता है, (१) मानसिक आयु (*Mental Age*), जिसे संक्षिप्त रूप में *M. A.* कहा जाता है, तथा (२) बुद्धि-अङ्क (*Intelligence Quotient*) जिसे संक्षिप्त रूप में *I.Q.* कहा जाता है। इन मापों को प्रत्येक व्यक्ति धारण करता है।

(१) मानसिक आयु

क--मानसिक आयु का अर्थ--एक व्यक्ति द्वारा एक बुद्धि-परीक्षा में प्राप्त अङ्कों (*Scores*) को सार्थक बनाने के लिये एक तुलना-प्रमाप (*Standard of Comparison*) की आवश्यकता होती है। बिने भिन्न अवस्थाओं वाले व्यक्तियों के माध्य-पालनों (*Average Performances*) को तुलना-प्रमाप के रूप में प्रयुक्त किया करते थे। वह पहले तीन, चार, पांच, इत्यादि वर्ष के बालकों के एक प्रतिनिधि-समूह द्वारा प्राप्त माध्य-अङ्क को ज्ञात करते थे। तत्पश्चात् उस अवस्था के शब्दों में एक बालक की प्राप्ति बतला सकते थे जिस पर एक सामान्य बालक उसी अङ्क को प्राप्त करेगा। यही अङ्क 'मानसिक आयु" के नाम से पुकारा जाता है। अन्य शब्दों में, एक बुद्धि-परीक्षा पर एक बालक द्वारा प्राप्त अङ्क उस मानसिक आयु के रूप में व्यक्त किया जाता है जिस तक पहुंचने के लिये वह योग्य होता है। इस प्रकार मानसिक आयु एक व्यक्ति की "सामान्य मानसिक योग्यता अथवा क्षमता की मात्रा" अथवा "मानसिक परिपक्वता के प्रक्रम (*Stage*)" को व्यक्त करती है। मानसिक आयु के संबोध (*Concept*) को सर्व प्रथम बिने ने प्रस्तुत किया था। मानसिक आयु की कुछ प्रतिनिधि-परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं :

(१) ऐनसाइक्लोपीडिआ ऑफ मौडर्न एज्यूकेशन :

"मानसिक आयु मानसिक परिपक्वता के उस प्रक्रम की एक अभिव्यक्त होती है जिस तक व्यक्ति यह ध्यान किये बिना पहुँच चुका है कि उसने इस तक पहुँचने में कितना समय लिया है।"卐

(२) टरमैन : "सामान्य मानसिक योग्यता की वह मात्रा जिसे तत्संवादी तिथि-आयु के सामान्य बालक द्वारा धारित किया जाता है।"❀

(३) गेट्स, इत्यादि—"........मानसिक आयु हमें एक व्यक्ति की सामान्य मानसिक योग्यता (क्षमता) का एक विवरण देती है......।"†

(२) मानसिक आयु का सङ्गणन (*Computation*) अथवा मानसिक आयु को ज्ञात करने की रीति—कल्पना कीजिए कि राम को, जिसकी तिथि-आयु (*Chronological Age*) सात वर्ष है, एक बुद्धि-परीक्षा दी गयी जिसमें तीन प्रकार के प्रश्न थे, (१) कुछ प्रश्न सात वर्ष से कम आयु-स्तर के बालकों के थे, (२) कुछ सात वर्ष के बालकों के आयु-स्तर के और, (३) कुछ सात वर्ष से अधिक आयु-स्तर के बालकों के।

卐 *"The mental age is an expression of the stage of mental maturity that the individual has reached, without regard to how long it has taken him to reach it."--Book No. 4, P. 407*

❀ *"......that degree of general mental ability which is ossessed by the average child of corresponding chronological age."* *Book No. 22, P. 7-8*

† *"The mental age, then, gives us a statement of the general mental ability of a subject..." Book No. 19, P. 220*

यदि राम ने प्रथम तथा द्वितीय प्रकार के समस्त प्रश्नों के उत्तर दिये हैं तो उसकी मानसिक आयु सात होगी; यदि उसने तृतीय प्रकार के भी कुछ प्रश्नों के उत्तर दिये हैं तो उसकी मानसिक आयु उच्च मानी जाएगी। नियमतः तिथि-आयु-स्तर से उच्च स्तर के लिये अपेक्षित प्रत्येक प्रश्न के लिये छात्र को दो मास का श्रेयस् दिया जाता है। मान लिया राम ने तृतीय प्रकार के प्रश्नों में से दो प्रश्नों के शुद्ध उत्तर दिये हैं। तो उसे प्रत्येक अतिरिक्त प्रश्न के लिये दो मास का श्रेयस् और दिया जाएगा और इस प्रकार सात वर्ष के राम की मानसिक आयु "सात वर्ष चार मास" होगी। मानसिक आयु के आधार पर व्यक्तियों को तीन वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है, (१) सामान्य (*Average*) व्यक्ति, जो अपनी तिथि-आयु के लिये अपेक्षित मानसिक आयु प्राप्त करते हैं, (२) प्रकृष्ट (*Superior*) व्यक्ति, जो अपनी तिथि-आयु के लिये अपेक्षित से उच्च मानसिक आयु प्राप्त करते हैं, तथा (३) अवर (*Inferior*) व्यक्ति, जो अपनी तिथि-आयु के लिये अपेक्षित से निम्न मानसिक आयु प्राप्त करते हैं। इस आधार पर राम को एक प्रकृष्ट व्यक्ति कहा जाएगा।

ग—मानसिक आयु की प्रकृति—मानसिक आयु एक बालक की एक विशेष समय पर मानसिक परिपक्वता का एक विवरण होती है। बालक की सामान्य मानसिक योग्यता अथवा क्षमता बढ़ती रहती है अथवा परिपक्व होती रहती है। फलतः एक बालक की मानसिक आयु सदैव समान नहीं रहती। ज्यों ज्यों बालक आयु में बढ़ता जाता है त्यों त्यों उसकी मानसिक आयु में धीरे धीरे वृद्धि होती जाती

है, परन्तु ज्यों ही वह परिपक्वता (*Maturity*) तक पहुँचता है त्यों ही मानसिक आयु की वृद्धि की गति अधिकाधिक मन्द होती जाती है। लगभग सोलह वर्ष की आयु में मानसिक आयु की वृद्धि पूर्णतः रुक जाती है। तत्पश्चात् एक व्यक्ति अधिक ज्ञान, अधिक कौशल, अथवा अधिक बुद्धि अर्जित भले ही कर ले, परन्तु इन वस्तुओं को अर्जित करने की उसकी क्षमता (*Capacity*), अर्थात्, मानसिक आयु, अपनी अन्तिम सीमा तक पहुँच चुकती है और उसमें अग्रिम वृद्धि नहीं होती। अन्य शब्दों में, १६ वर्ष की आयु के पश्चात् बुद्धि की क्षमता में वृद्धि नहीं होती।

घ--मानसिक आयु की विशेषताएँ—टरमैन तथा मैरिल के मतानुसार मानसिक आयु की तीन मुख्य विशेषताएँ होती हैं जो निम्नलिखित हैं :

(i) वास्तविक मानसिक आयु एक बुद्धि-परीक्षा पर मानसिक आयु को निर्दिष्ट करती है। अतः इस अर्थ में एक व्यक्ति की मानसिक आयु उस आयु-अङ्क के साथ मेल नहीं खा सकती जिसे वह सङ्गीत-योग्यता, यान्त्रिक-योग्यता, सामाजिक समायोजन, इत्यादि में प्राप्त करेगा। वस्तुतः एक व्यक्ति की अनेक मानसिक आयु होती हैं।

(ii) मानसिक आयु एकक (*Unit*) की द्वितीय विशेषता यह है कि ज्यों ज्यों मानसिक परिपक्वता आती जाती है त्यों त्यों मानसिक आयु का परिमाण सिकुड़ता जाता है। एक तथा दो वर्ष की बुद्धि में पन्द्रह तथा सोलह वर्ष की बुद्धि से बहुत अधिक अन्तर होता है।

(iii) अन्ततः, हमको यह समझ लेना चाहिए कि पन्द्रह

वर्ष की आयु के बाहर के मानसिक स्तर वास्तविक "मानसिक आयु" नहीं होते, क्योंकि उस समय मानसिक क्षमता का विकास रुक जाता है।

ङ--मानसिक आयु के आधार पर छात्रों का वर्गीकरण—पाठशाला-जीवन के आरम्भ में योग्यता की भिन्न मात्राओं के बालकों को समझने की रीति उन्हें उस समय प्रवेश करने देना है जब वे एक दी हुई मानसिक आयु प्राप्त कर चुके हों। इस प्रक्रिया में अन्तर्निहित कल्पना यह है कि वे बालक, जो मानसिक आयु में समान होते हैं, पाठशाला-कार्य के वैसे ही गुण को करने के योग्य होते हैं। इस प्रक्रिया का प्रथम कार्य छात्रों का वर्गीकरण मानसिक आयु के आधार पर करना होगा। मानसिक आयु के आधार पर वर्गीकृत समूहों को "योग्यता-समूह" (*Ability Groups*) के नाम से पुकारा जाता है। मानसिक आयु के आधार पर किये गये वर्गीकरण को "उदग्र वर्गीकरण" (*Vertical Classification*) भी कहते हैं। ऐफ• ऐन० फ्रीमैन के मतानुसार इस प्रकार के वर्गीकरण में चार व्यावहारिक कठिनाइयाँ होती हैं, जो निम्नलिखित हैं :

(i) वस्तुतः समस्त छात्र समान मानसिक आयु पर पाठशाला में प्रवेश नहीं लेते। वे एक निश्चित तिथि-आयु (*Chronological Age*) पर पाठशाला में प्रविष्ट होते हैं। अतः छात्रों का वर्गीकरण बुद्धि-अङ्क (*Intelligence Quotient or I. Q.*) के आधार पर होना चाहिए। बुद्धि-अङ्क के आधार पर किया गया वर्गीकरण "क्षैतिज वर्गीकरण" (*Horizontal Classification*) के नाम से पुकारा जाता है।

(ii) यदि हम प्रथम श्रेणी में समान मानसिक आयु के

छात्रों से साथ साथ पाठशाला-कार्य का आरम्भ करायें, तो भी वे मानसिक आयु में समान न रहेंगे क्योंकि समस्त बालकों की मानसिक आयु के विकास की गति समान नहीं होती।

(iii) तीसरी आपत्ति यह है कि एक उदग्र वर्गीकरण (जो मानसिक आयु के आधार पर किया जाता है) एक ही समह में ऐसे बालकों को साथ साथ रख देता है जो तिथि-आयु तथा दैहिक एवं सामाजिक विकास के प्रक्रमों में पर्याप्त रूप से विभिन्न होते हैं।

(iv) मानसिक आयु के आधार पर वर्गीकरण करते समय मन्द बालकों का प्रवेश विलम्बित किया जा सकता है। इस प्रकार उन्हें सीखने के लिये अपेक्षया कम समय मिलेगा, जबकि उनके लिये अधिक समय की आवश्यकता होती है।

च--मानसिक आयु के लाभ--मानसिक आयु का मुख्य लाभ यह है कि वह छात्र की प्राप्ति के अङ्कों तथा उसकी तिथि-आयु के साथ तुलना सम्भव बनाती है।

छ--मानसिक आयु की सीमाएँ--सी०सी० रौस के मतानुसार मानसिक आयु की तीन सीमाएँ होती हैं, जो निम्नलिखित हैं:

(i) यह कहा जाता है कि मानसिक आयु की परिभाषा १३ अथवा १४ वर्ष की आयु के पश्चात् तिथि-आयु के लिये सत्य नहीं रहती।

(ii) एक परीक्षा के आयु एकक (*Age Units*) अन्य परीक्षा के आयु-एककों के साथ पूर्णतः तुलनीय नहीं होते।

(iii) आयु एककों में कई तत्वों के साथ साथ होने के कारण वे अनेक महत्वपूर्ण भेदों को अस्पष्ट कर देते हैं।

उदाहरणार्थ, दो समान तिथि-अवस्थाओं के बालक एक आठ वर्ष की मानसिक आयु रखने पर भी पूर्णतः असमान हो सकते हैं। आयु एकक असमानता के कारणों पर प्रकाश नहीं डालते।

(२) बुद्धि-अङ्क (*Intelligence Quotient or I. Q.*)

क—बुद्धि-अङ्क की पृष्ठभूमि—मूलतः बुद्धि-अङ्क का विकास स्टैनफोर्ड-बिने परीक्षा द्वारा प्रतिनिहित प्ररूप की वैयक्तिक बुद्धि-परीक्षा के सम्बन्ध में हुआ था। १९१२ में स्टर्न (*Stern*) ने यह सुझाव प्रस्तुत किया कि बुद्धि तिथि-आयु (*Chronological Age*) के साथ मानसिक आयु के अनुपात की द्योतक होती है। इस संबोध (*Concept*) को स्टर्न ने "मानसिक लब्धि" (*Mental Quotient*) की संज्ञा प्रदान की। आगे चल कर टरमैन ने मानसिक लब्धि के लिये बुद्धि-अङ्क का प्रयोग किया। इस प्रकार बुद्धि-अङ्क का विकास मानसिक आयु के आविष्कार एवं प्रयोग के द्वारा ही सम्भव हुआ है।

ख—बुद्धि-अङ्क का अर्थ—सामान्यतः मापों के परिणामों से प्राप्त समस्त लब्धियाँ व्यक्ति के उस विकास को व्यक्त करती हैं जो उसकी आयु अथवा मानसिक स्तर की माध्य-प्रत्याशा (*Average Expectancy*) से सम्बद्ध होता है। मानसिक परीक्षाओं के अङ्क मानसिक आयु को प्राप्त करने के लिये आधार प्रदान करते हैं। निष्पन्न-परीक्षाओं (*Achievement Tests*) के अङ्क निष्पन्न अथवा विषय आयु के रूप में व्यक्त किये जा सकते हैं। सामान्यतः बुद्धि-अङ्क उस माप को कहते हैं जो एक व्यक्ति की तिथि-आयु तथा उसकी मानसिक आयु के उस सम्बन्ध को दिखलाता है जिसे

एक परीक्षा ने व्यक्त किया हो। बुद्धि-अङ्क की कुछ प्रतिनिधि परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं :

(१) ग्रीन, इत्यादि (*Greene and others*) : "बुद्धि-अङ्क छात्र की सापेक्ष प्रतिभा का एक माप होता है।"卐

(२) गेट्स, इत्यादि (*Gates and others*) : "....बुद्धि-अङ्क श्रेणी के विभिन्न छात्रों की सीखने की सम्भाव्य गतियों का एक स्थूल देशना (*Index*) होता है।"❀

(३) डिक्शनरी ऑफ ऐज्युकेशन : "तिथि-आयु के सम्बन्ध में मानसिक विकास के स्तर को व्यक्त करने के लिये अत्यन्त प्रायः प्रयुक्त युक्ति।"‡

(४) ऐनसाइक्लोपीडिया ऑफ मौडर्न ऐज्युकेशन : "बुद्धि-अङ्क उस गति को व्यक्त करता है जिस पर व्यक्ति, जनसंख्या की सामान्य गति की तुलना में, मानसिक रूप से विकास कर रहा है।"卐卐

卐 *"The intelligence quotient is a measure of the pupil's relative brightness."* —*Book No. 14, P. 259*

❀ *" .... the I. Q. is a rough index of the probable earning rates of the various members of the class."* —*Book No. 19. P, 271*

‡ *"I. Q. : the most commonly used device for expressing level of mental development in relation to chronololical age."* —*Book No. 2, P. 324*

卐卐 *"The intelligence quotient expresses the rate at which the individual is developing mentally as compared with the average rate of the population."* —*Book No. 4, P. 407*

(५) टरमैन तथा मैरिल (*Terman and Merrill*) :
"प्रतिभा का देशना।"†

ग--बुद्धि-अङ्क का सङ्गणन (*Computation*)--बुद्धि-अङ्क मासों में व्यक्त, व्यक्ति की तिथि-आयु द्वारा उसकी मानसिक आयु के भाजन का परिणाम होता है। अन्य शब्दों में, बुद्धि-अङ्क व्यक्ति की मानसिक आयु को उसकी तिथि-आयु से भाजित करके प्राप्त किया जाता है। मानसिक आयु तथा तिथि-आयु दोनों को महीनों में व्यक्त किया जाता है। भाजन के परिणामों को पूर्ण संख्या में व्यक्त करने के लिये १०० से गुणित कर दिया जाता है। इस प्रकार बुद्धि-अङ्क का सङ्गणन निम्न-लिखित सूत्र द्वारा किया जाता है :

$$\frac{\text{मानसिक आयु (मासों में)}}{\text{तिथि-आयु (मासों में)}} \times १०० = \text{बुद्धि-अङ्क}$$

उदाहरणार्थ, मान लीजिये राम की तिथि-आयु १२ वर्ष ४ मास (अर्थात् १४८ मास) है तथा उसकी मानसिक आयु ११ वर्ष ३ मास (अर्थात् १३५ मास) है जिसे उसने एक मानसिक-परीक्षा के आधार पर प्राप्त किया है। तो उसके बुद्धि-अङ्क का सङ्गणन इस प्रकार किया जाएगा :

$$\frac{१३५}{१३८} \times १०० = ६१$$

(घ) बुद्धि-अङ्क की व्याख्या, अर्थात्, बुद्धि-अङ्क के आधार पर व्यक्तियों का वर्गीकरण—टरमैन के मतानुसार बुद्धि-अङ्क के आधार व्यक्तियों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है :

† *"The index of brightness."* --*Book No 23, P. 26*
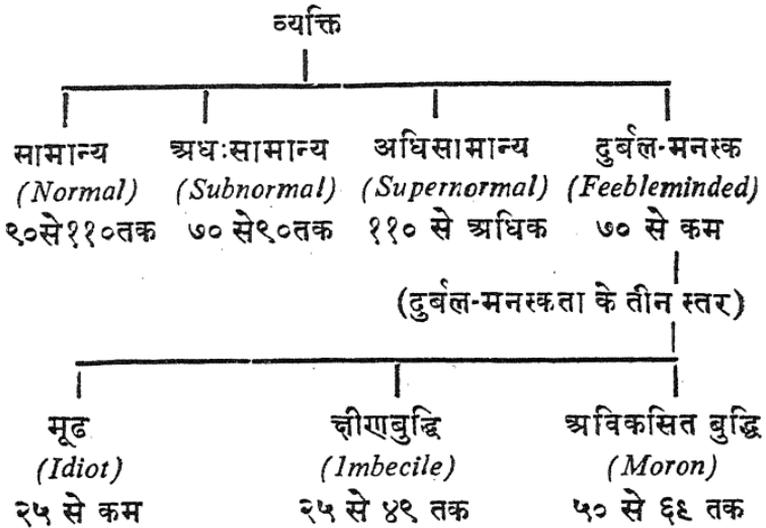
टरमैन का मत है कि सामान्य उच्च पाठशाला में सफलता प्राप्त करने के लिये बालक को कम से कम ९० का बुद्धि-अङ्क अवश्य प्राप्त करना चाहिए। तथापि, अनेक विरुजा-विज्ञों (*Clinicians*) ने टरमैन के वर्गीकरण की समालोचना उसे स्थूल एवं मनमाना कह कर की है। पाठशालाओं में बुद्धि-अङ्क के आधार पर किया गया छात्रों का वर्गीकरण "क्षैतिज वर्गीकरण" (*Horizontal Classification*) के नाम से पुकारा जाता है।

ङ—बुद्धि-अङ्क की प्रकृति—गत वर्षों में बुद्धि-अङ्क की स्थिरता पर मनोवैज्ञानिकों में एक गम्भीर प्रतिवाद होता रहा है। कुछ मनोवैज्ञानिक उसे स्थिर मानते हैं; कुछ अस्थिर। सामान्यतः यह समझा जाता है कि बुद्धि-अङ्क के मापन पर आधुनिक परीक्षाओं जो पूर्णतः विश्वसनीय नहीं होतीं तथा

पर्यावरण के परिवर्तनों का पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। यद्यपि अभी तक इस प्रश्न पर कोई अन्तिम निर्णय नहीं हो सका है, विभिन्न अनुसंधाता बुद्धि-अङ्क की प्रकृति के विषय में निम्न-लिखित परिणामों तक पहुँचे हैं :

(i) ६ वर्ष की आयु के पूर्व बुद्धि-अङ्क में पर्याप्त परिवर्तन होता है।

(ii) कुछ शिशुशालाओं (*Nursery Schools*) में उपस्थित रहने के पश्चात् बालकों के बुद्धि-अङ्क में समूह-लाभ दृष्टिगोचर हुआ, परन्तु कुछ में नहीं हुआ।

(iii) परिदत्त (*Gifted*) बालकों के अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि उनकी बहुसंख्या बुद्धि-अङ्क की उच्च स्थिति बनाये रखती है। प्रतिभाशाली बालक उत्तरोत्तर परीक्षणों पर अपने बुधि-अङ्कों में वृद्धि करते हैं।

(iv) दुर्बल-मनस्क (*Feeble-minded*) बालक ज्यों ज्यों आयु में बढ़ते जाते हैं त्यों त्यों सामान्यतः उनका बुद्धि-अङ्क कम होता जाता है।

(v) ऐसी चार प्रारम्भिक पाठशालाओं में से, जिन्हें उच्च श्रेणी का समझा जाता था, तथा जिनमें छात्र बुद्धि में सामान्य से ऊपर थे, दो पाठशालाओं के छात्रों ने, वर्षों की उपस्थिति के पश्चात् भी, बुद्धि-अङ्क में विश्वसनीय समूह लाभ नहीं दिखलाया। दो पाठशालाओं के छात्रों ने विश्वसनीय समूह लाभ दिखलाया।

(vi) यदि बाल-समूहों को स्वल्प पर्यावरण (*Meagre Environment*) में रहना पड़े, तो उनका मध्यक बुद्धि-अङ्क (*Mean I. Q.*) क्रमशः घटता जाता है। अन्य शब्दों में

पर्यावरण के प्रमुख परिवर्तनों का प्रभाव बुद्धि-अङ्क पर अवश्य पड़ता है।

(vii) बुद्धि-अङ्क जीवन के प्रथम वर्षों अथवा उत्तर-किशोरावस्था की अपेक्षा मध्य शैशव-वर्षों के लिये एक अधिक परिशुद्ध माप होता है।

च—बुद्धि-अङ्क का मानसिक आयु में परिवर्तन—चार्ल्स रसिल के मतानुसार बुद्धि-अङ्क को मानसिक आयु में परिवर्तित करने की प्रक्रिया में दो पदों का समावेश होता है जो निम्नलिखित हैं :

(i) अङ्कों को बुद्धि-अङ्कों में परिवर्तित कीजिए।

(ii) बुद्धि-अङ्कों को छात्रों की तिथि-आयु से गुणित कीजिए। यही मानसिक आयु होगी। सूत्र के रूप में इस प्रक्रिया को इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है :

बुद्धि अङ्क × तिथि आयु = मानसिक आयु

छ—बुद्धि-अङ्क का लाभ—बुद्धि-अङ्क का मुख्य लाभ यह है कि वह छात्रों की प्रतिभा की विभिन्न मात्राओं की पहिचान कराता है। आर० ऐच० थाउलैस के मतानुसार बुद्धि-अङ्क एक व्यक्ति की "शिक्ष्यता (*Educablility*) तथा उसकी सम्भाव्य सफलता का सर्वोत्तम सङ्केत" होता है।

ज—बुद्धि-अङ्क के दोष—परीक्षा के अङ्कों को व्यक्त करने की अन्य समस्त इकाइयों की भांति बुद्धि-अङ्क में भी तीन मुख्य दोष होते हैं जो निम्नलिखित हैं :

(i) शून्य बिन्दु वास्तविक की अपेक्षा आनुमानिक होता है।

(ii) विभिन्न इकाइयां असमान लम्बाई तथा मूल्य की होती हैं।

(iii) अनेक अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि एक परीक्षा के बुद्धि-अङ्क एक अन्य परीक्षा के बुद्धि-अङ्कों के साथ तुलनीय नहीं होते। अतः उन्हें तुलनीय बनाने के लिये विभिन्न परीक्षाओं के बुद्धि-अङ्कों को समानित किया जाना चाहिए।

८—वैयक्तिक तथा समूह बुद्धि-परीक्षाओं की तुलना

पी० ई० वरनन के मतानुसार वैयक्तिक बुद्धि-परीक्षाओं (यथा स्टैनफोर्ड-बिने परीक्षा एवं करण-परीक्षाएँ) तथा समूह परीक्षाओं (यथा शाब्दिक-परीक्षाएँ एवं अ-शाब्दिक-परीक्षाएँ) के गुण एवं दोषों को निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत दोनों की तुलना करके सर्वोत्तम समझा जा सकता है :

(१) *आयु सीमा*

वैयक्तिक बुद्धि-परीक्षाओं का प्रयोग बहुत छोटे बालकों के साथ किया जाता है क्योंकि एक समूह के ध्यान को रोकना अथवा समूह के समस्त सदस्यों से एक ही क्षण पर समान रूप से कार्य कराना व्यवहारतः असम्भव होता है।

(२) *प्रयोग की सुविधा*

वैयक्तिक बुद्धि-परीक्षाओं की अपेक्षा समूह बुद्धि-परीक्षाएँ प्राप्त करने में, प्रयोग करने में, तथा अङ्कित करने में अधिक सुगम होती हैं, और उनकी स्थिति में परीक्षकों को अधिक प्रशिक्षण तथा अनुभव की आवश्यकता नहीं होती।

(३) *समय*

यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि वैयक्तिक बुद्धि-परीक्षाओं के लिये बहुत अधिक समय की आवश्यकता होती है जबकि समूह-परीक्षाएँ परीक्षक के समय को बचाती हैं।

(४) *समय-सीमाएँ*

बिने-परीक्षा के अधिकांश पदों के लिये तथा अनेक वैयक्तिक करण अथवा शैक्षणिक परीक्षाओं के लिये समय-सीमाएँ निर्धारित नहीं की गयी हैं। इसके विपरीत अधिकांश समूह बुद्धि-परीक्षाओं को अधिकतम गति पर किया जाता है।

(५) *वैषयिकता*

वैयक्तिक बुद्धि-परीक्षाओं की अपेक्षा समूह बुद्धि-परीक्षाओं के प्रयोग तथा अङ्कन की दशाएँ अधिक अच्छे रूप में प्रमापीकृत होती हैं। इस प्रकार समूह बुद्धि-परीक्षाओं की स्थिति में परीक्षक के वैयक्तिक निर्णय के लिये बहुत कम स्थान रह जाता है

(६) *स्वास्थ्य एवं भाव (Mood) पर आश्रय*

समूह तथा वैयक्तिक दोनों बुद्धि-परीक्षाएँ व्यक्ति के स्वास्थ्य एवं भाव से बहुत कम प्रभावित होती हैं। तथापि, समूह बुद्धि-परीक्षाओं की अपेक्षा वैयक्तिक बुद्धि-परीक्षाओं की स्थिति में एक लाभ यह होता है कि वैयक्तिक-परीक्षाओं में परीक्षक असामान्य दशाओं के प्रभाव पर नियन्त्रण कर सकता है। कोई बुद्धि-परीक्षा (न तो वैयक्तिक, न समूह) पूर्ण विश्वसनीयता नहीं रखती। सम्भवतः ये दशाएँ इसके लिये अंशतः उत्तरदायी हो सकती हैं।

(७) *अर्जित प्रभावों पर आश्रय*

अतीत में स्टैनफोर्ड-बिने परीक्षा की समालोचना इसलिए भी की गयी है कि उसमें सूचना की ऐसी परीक्षाओं का समावेश है जो शिक्षण, सामाजिक पृष्ठभूमि, इत्यादि पर आश्रित रह सकती हैं। अन्य शब्दों में, वैयक्तिक बुद्धि-परीक्षाएँ अर्जित प्रभावों पर आश्रित होती हैं।

(८) *अभ्यास अथवा शिक्षण पर आश्रय*

अधिकांश बुद्धि-परीक्षाएँ (वैयक्तिक तथा समूह दोनों) प्रकाशित होती हैं, अतः उन्हें कोई भी प्राप्त कर सकता है और उनके समाधान का अभ्यास करके अपने अङ्कों में वृद्धि कर सकता है।

(६) *मान्यता*

विने-परीक्षा क्षमताओं की एक अविश्लिष्ट (*Unanalysed*) खिचड़ी को मापती है। परन्तु एक सुनिर्मित समूह बुद्धि-परीक्षा "*G*" का एक लगभग शुद्ध माप प्रदान करती है। समूह-परीक्षाओं के पद प्रायः आयन्त्रित एवं कृत्रिम होते हैं। इस प्रकार समूह बुद्धि-परीक्षाओं की स्थिति में, बालक पर एक कम स्वाभाविक साधन के द्वारा अपनी बुद्धि को व्यक्त करने के लिये बलप्रयोग किया जाता है।

६—बुद्धि-परीक्षाओं के व्यावहारिक लाभ

एफ० एन० वरनन के मतानुसार मानसिक-परीक्षाओं के छः व्यावहारिक लाभ होते हैं जो निम्नलिखित हैं :

(१) पाठशाला-प्रवेश के लिये ठीक समय का निर्धारण;
(२) छात्रों का योग्यता-समूहों में वर्गीकरण;
(३) छात्रों का विशेष श्रेणियों के लिये चुनाव;
(४) छात्रों का शैक्षणिक मार्गप्रदर्शन;
(५) एक छात्र के कार्य-समायोजन का संधारण;
(६) प्रार्थियों का महाविद्यालयों अथवा व्यावसायिक विद्यालयों के लिये चुनाव;

गेट्स, इत्यादि के मतानुसार बुद्धि-परीक्षाएँ निम्नलिखित प्रयोजनों के लिये भी उपयोगी होती हैं :

(७) किसी भी वैयक्तिक छात्र के लिये कार्य के अनुकूलतम स्तर अथवा कठिनता को निर्धारण;

(८) ऐसी विशेष निर्योग्यताओं (*Disabilities*) तथा कठिनताओं का निदान, जैसे "वाचन-निर्योग्यता;

(९) ऐसे छात्रों का पता लगाना जिनके बुद्धि-अङ्क अत्यन्त उच्च हों अथवा जो असाधारण यान्त्रिक अन्तर्दृष्टि रखते हों,

(१०) एक दी हुई श्रेणी अथवा पाठशाला में विद्याभियोग्यता (*Scholastic Aptitude*) की सीमा तथा स्तर का प्राक्कलन;

(११) भावी शैक्षणिक तथा व्यावसायिक शक्यता (*Possibility*) की भविष्यवाणी।

१०—उपसंहार

पूर्वगत पंक्तियों में सामान्य बुद्धि-परीक्षाओं का वर्णन किया गया है जिनका विकास सामान्य बुद्धि को मापने के लिये किया जाता है, अर्थात्, जो एक ही लक्ष्यवेधक (*Shot*) से मानव-क्षमता की सम्पूर्ण सीमा को मापती हैं। अभी तक विशिष्ट बुद्धि-परीक्षाओं का विकास किया जाना शेष है। ये परीक्षाएँ एक सीमित क्षेत्र में क्षमता से संबद्ध होती हैं यथा संगीत-क्षमता, यान्त्रिक-क्षमता, पाठशाला विषय-क्षमता, इत्यादि। इन परीक्षाओं को अभियोग्यता (*Aptitude*) अथवा पूर्वज्ञापक (*Prognostic*) परीक्षाओं के नाम से पुकारा जाता है। बुद्धि एवं बुद्धि-परीक्षाओं को ठीक-ठीक समझने के लिये विशिष्ट बुद्धि-परीक्षाओं की ओर ध्यान दिया जाना अत्यन्त आवश्यक है।

नवम अध्याय

करण-परीक्षा

१—प्रस्तावना

सामान्यतः समस्त बुद्धि-परीक्षाएँ दो वर्गों में वर्गीकृत की जा सकती हैं, (१) वैयक्तिक बुद्धि-परीक्षाएँ, तथा (२) समूह बुद्धि-परीक्षाएँ। वैयक्तिक बुद्धि-परीक्षाओं में मुख्यतः तीन परीक्षा-प्ररूपों का समावेश होता है, (१) बिने-प्ररूप परीक्षाएँ, (२) विविध परीक्षाएँ, तथा (३) करण-परीक्षाएँ (*Performance Tests*)। बिने-प्ररूप तथा विविध बुद्धि-परीक्षाओं का वर्णन अष्टम अध्याय में किया जा चुका है। प्रस्तुत अध्याय में करण-परीक्षाओं का वर्णन किया जाएगा।

२—करण-परीक्षाओं का विकास

आद्य-युग (*Primitive Age*) के इतिहास के अध्ययन से ज्ञात होता है कि आद्य-युग में तरुण व्यक्तियों को प्रौढ़ समाज में प्रविष्ट करते समय एक विशेष समारोह का आयोजन किया जाता था और तरुण व्यक्तियों को अनेक परीक्षाएँ दे कर यह ज्ञात किया जाता था कि उन्होंने अपनी वनजाति (*Tribe*) की रीतियों, परम्पराओं, कलाओं, इत्यादि को सीखने में कहाँ तक सफलता प्राप्त की है। इन परीक्षाओं में अनेक क्रियाओं का समावेश होता था, यथा मल्लयुद्ध, लक्ष्य-वेध, अश्वारोहण, इत्यादि। ये करण-परीक्षाएँ ही थीं। इस प्रकार,

यों तो करण-परीक्षाओं की उत्पत्ति-आद्य-युग में ही हो चुकी थी, परन्तु उन्हें करण-परीक्षाओं के नाम से नहीं पुकारा जाता था। आधुनिक वैषयिक करण-परीक्षाएँ सर्व प्रथम बिने के कार्य में प्रतीत हुई थीं।

३–करण-परीक्षा का उद्देश्य तथा अर्थ

पूर्वगत अध्याय में यह स्पष्ट किया जा चुका है कि बिने-प्ररूप बुद्धि-परीक्षाएँ केवल उन बालकों की स्थिति में प्रभावशाली होती हैं जो परीक्षक द्वारा प्रयुक्त भाषा को बोल तथा समझ सकते हैं। ये परीक्षाएँ बधिर, मूक, इत्यादि बाधित बालकों तथा केवल एक विदेशी भाषा से परिचित बालकों की क्षमताओं को मापने में असमर्थ रहती हैं। ऐसे बालकों की क्षमताओं को मापने के लिये मनोवैज्ञानिकों ने करण-परीक्षाओं का विकास किया है। इस प्रकार करण-परीक्षाएँ, एक प्रकार से, बिने-प्ररूप परीक्षाओं के शब्द-वाद (*Verbatism*) के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया के रूप में अस्तित्व में आयी हैं। करण-परीक्षाएँ आवश्यक रूप से बुद्धि-परीक्षाएँ होती हैं और अन्य वैयक्तिक बुद्धि-परीक्षाओं की भांति इनका भी मुख्य उद्देश्य "किसी सामान्य मानसिक लक्षण अथवा क्षमता, सामान्यतः बुद्धि को मापना" होता है। जे० ऐल० मरसिल के शब्दों में करण-परीक्षाओं का उद्देश्य "अपने में तथा अपने आप प्रहस्तन (*Manipulation*) करने की क्षमता की अपेक्षा *प्रहस्तन में तथा प्रहस्तन के द्वारा सामान्य मनोवृत्ति को मापना*" होता है।卐 इस उद्धरण के

卐 *"Its aim is to measure general mentality in and through manipulation, rather than ability to manipulate in and of itself."* —*Book No. 17, P. 167*

ध्वनितार्थों (*Implications*) को ठीक-ठीक समझने के लिये (१) करण एवं अभियोग्यता-परीक्षाओं, तथा (२) करण एवं अ-शाब्दिक परीक्षाओं के अन्तर पर प्रकाश डालना अत्यन्त आवश्यक है।

(१) करण तथा अभियोग्यता-परीक्षाएँ

प्रायः एक करण-परीक्षा में एक यान्त्रिक अथवा हस्तकला (*Manual*) अभियोग्यता-परीक्षा के समान पदों का समावेश हो सकता है, परन्तु उनके उद्देश्यों में बड़ा अन्तर होता है। करण-परीक्षा का उद्देश्य ' प्रहस्तन में तथा प्रहस्तन के द्वारा सामान्य मनोवृत्ति अथवा बुद्धि को मापना" होता है, जबकि अभियोग्यता-परीक्षाएँ "अपने में तथा अपने आप प्रहस्तन करने की क्षमता को मापती हैं।" एक वास्तविक करण-परीक्षा के पद, प्रत्येक स्थिति में, किसी सामान्य मानसिक लक्षण अथवा बद्धि को प्रकाश में लाते हैं, जबकि एक अभियोग्यता-परीक्षा के पद यान्त्रिक अथवा हस्तकला-अभियोग्यता को प्रकट करते हैं।

(२) करण तथा अ-शाब्दिक परीक्षाएँ

पद-प्ररूपों के आधार पर मनोवैज्ञानिक परीक्षाओं को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है, (१) शाब्दिक-परीक्षाएँ, (२) अ-शाब्दिक (*Nonverbal*) परीक्षाएँ, तथा (३) अ-भाषा (*Nonlanguage*) परीक्षाएँ। शाब्दिक-परीक्षाओं के उत्तर शब्दों में दिये जाते हैं। अ-शाब्दिक परीक्षाएँ यद्यपि पूर्णतः अ-शाब्दिक नहीं होतीं, क्योंकि उनके निदेश शब्दों में ही दिये जाते हैं तथापि उनके उत्तर शब्दों की अपेक्षा क्रियाओं के द्वारा दिये जाते हैं। उपस्थित किये गये चित्रों की व्याख्या अथवा तुलना, ईटों (*Blocks*) की सहायता से निर्दिष्ट

आकल्पों (*Designs*) का निर्माण, पट्टों पर विभिन्न आकार के छिद्रों में तत्स्थानी टुकड़ों का अन्वायोजन, पट्टों के विभिन्न छिद्रों में खूंटियों (*Pegs*) का स्थापन, इत्यादि क्रियाएँ ऐसी ही क्रियाओं के कुछ उदाहरण हैं। परन्तु इन क्रियाओं का प्रयोग केवल अ-शाब्दिक परीक्षाओं में ही नहीं किया जाता; इनका प्रयोग करण-परीक्षाओं में भी किया जाता है। फलतः कभी-कभी समस्त अ-शाब्दिक परीक्षाओं को करण-परीक्षाएँ समझ लिया जाता है जो समुचित नहीं है। करण तथा अ-शाब्दिक परीक्षाओं में प्रयुक्त होने वाले पदों अथवा क्रियाओं में समानता होने पर भी उनके उद्देश्यों में बड़ा अन्तर होता है। जब ये पद अथवा क्रियाएँ बुद्धि को प्रकाशित करती हैं तब वे करण-परीक्षाओं का भाग होती हैं; जब हस्तकला अथवा यान्त्रिक क्षमता को प्रकट करती हैं तब अभियोग्यता-परीक्षाओं का भाग होती हैं। अ-भाषा परीक्षाओं में छात्रों को दिये जाने वाले निर्देश भाषा की अपेक्षा प्रदर्शन (*Demonstration*) के द्वारा दिये जाते हैं और इस प्रकार भाषा के प्रयोग को टालने का प्रयत्न किया जाता है। अ-भाषा परीक्षाओं में भी छात्रों को विशेष क्रियाएँ करनी होती हैं, यथा पदार्थों का प्रहस्तन अथवा तुलना अथवा विन्यास (*Arrangement*) करना, निर्देशों का अनुसरण करना, इत्यादि।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर सारांश के रूप में यह कहा जा सकता है कि करण-परीक्षाएँ वे बुद्धि-परीक्षाएँ हैं जिनमें छात्रों की क्रियाओं के द्वारा उनकी बुद्धि अथवा किसी मानसिक लक्षण का माप किया जाता है। करण-परीक्षाओं की कुछ महत्वपूर्ण, प्रतिनिधि परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं :

(१) सी० वी० गुड : "करण-परीक्षा : (२) स्थूल रूप से, यह ध्यान किये बिना कि प्रत्युत्तर के लिये व्यक्ति को किस प्रकार शिक्षित किया गया है, संभाव्य क्षमता अथवा अभियोग्यता की अपेक्षा वास्तविक प्राप्ति को मापने के लिये अभिप्रेत कोई भी परीक्षा।"卐

(२) जे० ऐल० मरसिल : "वे परीक्षाएँ हैं जिनमें व्यवस्थित कार्य व्यक्ति से एक शाब्दिक प्रत्युत्तर करने की अपेक्षा "कुछ करने की" अपेक्षा करते हैं।"❀

(३) गेट्स इत्यादि : "........परीक्षाएँ जो शाब्दिक प्रश्नों तथा उत्तरों की अपेक्षा एक व्यूह का पता लगाना, एक "आकृति-पट्ट" में आकृतियों का अन्वायोजन करना, अथवा तत्सम क्रियाओं को प्रयुक्त करती है।"†

(४) आर० ऐच० थाउलैस : "........जिनमें शब्दों का प्रयोग अनावश्यक होता था तथा व्यक्ति से केवल

卐 *"Test, Performance :...(2) Broadly, any test intended to measure actual accomplishment rather than potential ability or aptitude, regardless of how the subject is instructed to respond."* *--Book No. 2. P. 419*

❀ *"These are tests in which the tasks set up require the subject to "do something" rather than to make a verval response, ..."* *-Book No. 17, P. 167*

† *"...... test which employ tracing a maze, fitting forms into a formboard", or similar activities rather than verbal problems and answers."* *-Book No. 19, P. 216*

कुछ कार्य करने की अपेक्षा की जाती थी जो प्रायः स्वयंव्याख्यात होता था।"卐

४—करण-परीक्षाओं की प्रकृति

करण-परीक्षाएँ बुद्धि-परीक्षाएँ होती हैं तथा वैयक्तिक-परीक्षाएँ होती हैं। फलतः वे ऐसे प्रावैधिक साधनों के समान होती हैं जिनका प्रयोग केवल सुप्रशिक्षित, अनुभवी, तथा कुशल परीक्षक ही कर सकते हैं। करण-परीक्षाएँ बिने-परीक्षाओं के एक स्थानापन्न के रूप में नहीं अपितु अनुपूर (*Supplement*) के रूप में प्रयुक्त की जा सकती हैं। वे उन क्षमताओं को मापती हैं जिनके लिये भाषा-प्रावीण्य की आवश्यकता नहीं होती। ग्रीन, इत्यादि के मतानुसार करण-परीक्षाओं को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है, (१) वे करण-परीक्षाएँ जिनके लिये एक अङ्कनी (*Pencil*) की आवश्यकता पड़ती है, परन्तु कुछ लिखने के लिये नहीं अपितु चिह्न लगाने के लिये, तथा (२) वे करण-परीक्षाएँ जिनके लिये विभिन्न पदों अथवा परीक्षण-सामग्री का प्रहस्तन (*Manipulation*) करने की आवश्यकता होती है। अन्य शब्दों में, करण-परीक्षाएँ शाब्दिक प्रत्युत्तरों की अपेक्षा प्रेरक (*Motor*) अथवा हस्त-प्रत्युत्तरों की अपेक्षा करती हैं। सामान्यतः प्रत्येक परीक्षा एक करण-परीक्षा होती है। तथापि, तथ्य-ज्ञान की पत्र-एवं-अङ्कनी-परीक्षाएँ (*Paper-and-Pencil Tests*) करण-परीक्षाएँ नहीं समझी जातीं। करण-परीक्षाएँ प्रविधि

卐 "......*in which the use of words was unnecessary and the subject was only required to perform some task which was almost self-explanatory*". -*Book No. 20, P. 359*

(*Technique*) अथवा गति की नहीं अपितु गुण अथवा परिशुद्धता (*Accuracy*) की परीक्षाएँ होती हैं।

५—करण-परीक्षाओं का वर्गीकरण

ग्रीन, इत्यादि के मतानुसार करण-परीक्षाओं को तीन वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है जो निम्नलिखित हैं :

(१) वस्तु-परीक्षाएँ (*Object Tests*)

वस्तु-परीक्षाएँ उन ज्ञानों, संबोधों (*Concepts*), तथा अवबोधों (*Understandings*) को मापतीं हैं जो विशेष कौशलों के क्रियात्मक पालनों के लिये पूर्वापेक्षित होते हैं। कभी-कभी इन्हें अभिज्ञान-परीक्षाएँ (*Identification or Recognition Tests*) भी कहा जाता है, क्योंकि उनके द्वारा व्यक्ति से एक वस्तु, प्रादर्श (*Specimen*), अथवा समक्ष रखे हुए प्रवरण (*Selection*) की पहिचान करने के लिये कहा जाता है।

(२) करण-माप (*Performance Measures*)

करण-मापों में, गुण की स्थिति में परीक्षण-सूचियों (*Check Lists*) का प्रयोग करके तथा समय की स्थिति में समय-युक्तियों (*Timing Devices*) का प्रयोग करके उस विधा (*Process*) का अवलोकन तथा मूल्याङ्कन किया जाता है जिसके द्वारा एक छात्र एक परीक्षण-परिस्थिति में वाञ्छित परिणाम के किसी प्ररूप को प्रस्तुत करता है।

(३) उत्पाद-मूल्याङ्कन (*Product Evaluation*)

एक कौशल-पालन के गुण का मूल्याङ्कन दो प्रकार से किया जा सकता है, (१) पूर्ण किये हुए उत्पादन की विशेषताओं के द्वारा, तथा (२) इसके उत्पादन में प्रयुक्त प्रविधि अथवा प्रक्रिया

की विशेषताओं के द्वारा। उत्पादन की विशेषताओं का मूल्याङ्कन करने के लिये अनेक साधनों का प्रयोग किया जाता है, यथा गुण-श्रेणियाँ, (*Quality Scales*), वर्ग-श्रेणियाँ (*Rating Scales*), अङ्क-पत्रक (*Score Cards*), गणन एवं मापन-प्रविधियाँ, इत्यादि। उत्पादन की विशेषताओं के मूल्याङ्कन की सहायता से उत्पादन में प्रयुक्त प्रविधियों अथवा प्रक्रियाओं की विशेषताओं का मूल्याङ्कन सुगमतापूर्वक किया जा सकता है।

६—करण-परीक्षा के निर्माण के पद

न्यूकिर्क तथा ग्रीन के मतानुसार एक करण-परीक्षा का निर्माण करते समय परीक्षक को दस पदों का अनुसरण करना पड़ता है जो निम्नलिखित हैं :

(१) उन गुणों को निर्धारित करने के लिये, जिनका परीक्षण करना है, पाठचर्या का विश्लेषण;
(२) आवश्यक उपकरणों तथा सामग्रियों का निर्धारण;
(३) परीक्षा-पदों का निर्माण;
(४) प्रक्रिया-कथन का निर्माण, जो छात्रों को ठीक-ठीक यह बतलाये कि उन्हें क्या करना है;
(५) छात्रों के लिये सामान्य निर्देशों का निर्माण;
(६) परीक्षकों के लिये निर्देशों का निर्माण;
(७) परीक्षा की अङ्कन-रीति का निर्धारण;
(८) शोधन की दृष्टि से कुछ छात्रों पर परीक्षा का परीक्षण;
(९) परीक्षा के दो अथवा अधिक रूपों का निर्माण;
(१०) विश्वसनीयता-गुणक, प्रमाप विचलन (*Standard Deviation*), संभाव्य विभ्रम (*Probable Error*),

इत्यादि का सङ्गणन करने के लिये परीक्षा का अन्तिम परीक्षण।

७—करण-परीक्षाओं के पद

करण-परीक्षाओं में अनेक विशिष्ट पदों का समावेश होता है। कुछ प्रमुख पद निम्नलिखित हैं :

(१) आकृति-पट्ट (Form Boards)

लकड़ी के एक पट्टे में विभिन्न आकारों के अनेक छिद्र कर दिये जाते हैं। छात्रों से उन छिद्रों में से प्रत्येक में तत्स्थानी खण्ड को अन्वायोजित करने के लिये कहा जाता है।

(२) *चित्र-पूर्ति पट्ट*

बालक को एक चित्र दिखलाया जाता है जिसमें से एक लघु वर्ग लुप्त कर दिया जाता है। तत्पश्चात् छात्रों के समक्ष कुछ ईटें (*Blocks*) प्रस्तुत की जाती हैं जिनके ऊपर उन चित्रों के भाग होते हैं। छात्रों को उन ईटों का चुनाव करना होता है जो चित्र को ठीक रूप में पूर्ण करें।

(३) घन-परीक्षा (Cube Test)

परीक्षक एक दिये हुए प्रतिरूप (*Pattern*) में चार घनों को चुला (*Tapped*) देता है और उन्हें प्रतिस्थापित करने के लिये छात्रों से कहता है।

(४) *व्यूह (Mazes)*

एक पत्र (*Paper*) पर एक व्यूह मुद्रित करके छात्र के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है और उससे कहा जाता है कि वह एक मुद्रित पंक्ति को काटे बिना अथवा एक "अवसान" (*Dead End*) में जाए बिना व्यूह के आदि से अन्त तक एक रेखा खींचे।

(५) *अश्वा एवं गर्दभ परीक्षा (Mare and Foal Test)*

एक प्रक्षेत्र (*Farmyard*) के चित्र में अन्य वस्तुओं के अतिरिक्त एक घोड़ी तथा गधा भी दिखलाया जाता है जिसमें से ग्यारह टुकड़े काट दिये जाते हैं। छात्र से कहा जाता है कि वह एक निर्धारित समय में उन टुकड़ों को एक चित्र में इकट्ठा करे।

(६) *वामन-परीक्षा (Manikin Test)*

वामन-परीक्षा में एक गुड़िया होती है जो छः टुकड़ों में विभाजित होती है। छात्रों को गुड़िया की भुजाओं, टांगों, इत्यादि को यथा-स्थान अन्वायोजित करना होता है। गुड़िया के शरीर में अन्वायोजन के लिये जो छिद्र होते हैं वे विभिन्न आकारों के होते हैं।

(७) *आकृति पार्श्वचित्र-परीक्षा (Feature Profile Test)*

आकृति पार्श्वचित्र-परीक्षा में छात्रों को आठ टुकड़ों की सहायता से आकृतियों के पार्श्वचित्र (*Profile*) का निर्माण करना होता है।

(८) *प्रतिस्थापन-परीक्षा (Substitution Test)*

प्रतिस्थापन-परीक्षा में रैखिकीय आकृतियों की पंक्तियों का समावेश होता है जिन्हें छात्र एक दी हुई कुञ्जी के अनुसार संख्याओं में अङ्कित करते हैं।

८—कुछ प्रमुख करण-परीक्षाएँ

(१) *पिण्टनर-पैटरसन श्रेणी*卐

यह एक प्रमुख श्रेणी है जो १९१७ में प्रकाशित हुई थी। १९३७ में इस श्रेणी को संक्षिप्त एवं संशोधित किया गया था।

卐(*Pintner-Paterson Scale of Performance Tests*)

पिण्टनर-पैटरसन-श्रेणी वैयक्तिक प्रबन्धन के लिये है तथा इसमें १५ उप-परीक्षाएँ सम्मिलित हैं।

(२) आर्थर पौइण्ट-स्केल卐

पौइण्ट स्केल का निर्माण तथा प्रमापीकरण आर्थर (*Arthur*) ने किया था। आर्थर-श्रेणी भी वैयक्तिक प्रबन्धन के लिये एक साधन है जो छः से ऊपर आयु के बालकों के लिये अभिप्रेत होती है। इस श्रेणी का निर्माण कठिनता में समान दो रूपों में किया गया है। प्रथम रूप को ५ से १५ वर्ष तक के १,१२५ बालकों पर प्रमापीकृत किया गया था।

(३) कौरनैल-कौक्स श्रेणी†

कौरनैल-कौक्स श्रेणी में करण-प्ररूप की छः उपपरीक्षाएँ सम्मिलित हैं। इस श्रेणी को किण्डरगार्टन से अष्टम श्रेणी तक के ३०६ व्यक्तियों पर प्रमापीकृत किया गया है।

(४) चिकैगो अ-शाब्दिक-परीक्षा‡

चिकैगो अ-शाब्दिक परीक्षा ७ वर्ष की आयु से प्रौढावस्था तक के लिये है। सामान्यक (*Norms*) १,८४४ बालकों पर स्थापित किये गये हैं, और १४ वर्ष की आयु तक प्रमाप अङ्क सामान्यक (*Standard Score Norms*) दिये गये हैं।

(५) पिण्टनर सामान्य क्षमता परीक्षाएँ : अ-भाषा माला❀

यह एक समूह (*Battery*) है जो "पिण्टनर सामान्य क्षमता परीक्षाएँ : शाब्दिक माला" के समान्तर है।

卐 *Point Scale of Performance Tests.*

† *Cornell-Coxe performance Ability Scale.*

‡ *Chicago Non-Verbal Examination.*

❀ *Pintner General Ability Tests : Non-Language Series*

(६) *एक मनुष्य का उद्रेखण*卐

इस परीक्षा का निर्माण गुडऐनफ (*Goodenough*) ने किया है। गुडऐनफ का विचार था कि उद्रेखण (*Drawing*) बुद्धि की एक सूचना हो सकती है। इस परीक्षा में यही विचार दिया हुआ है। यह परीक्षा ३½ से १३½ वर्ष तक के बालकों के लिये अभिप्रेत है। मनुष्य की आकृति का चुनाव इसलिए किया गया है कि बालक उससे परिचित होते हैं।

९—करण-परीक्षाओं के गुण

(१) करण-परीक्षाएँ बालकों के लिये आकर्षक होती हैं।

(२) उनमें बालकों की विभिन्न स्वभाव-प्रतिक्रियाओं को बाहर लाने की क्षमता होती है।

(३) वे प्रायः बुद्धि के मापन के लिये प्रमाप-साधनों (*Standard Instruments*) का उपयोगी अनुपूर होती हैं।

(४) उनमें प्रमाप-साधनों में प्रस्तुत बुद्धि की अवधारणा (*Conception*) से भिन्न अवधारणा दी हुई होती है।

(५) वे वेग, प्रहस्तनीय दक्षता (*Manipulative Dexterity*), क्लीब-नियन्त्रण (*Neural Control*), दार्ष्टिक-स्मृति (*Visual Memory*), इत्यादि पर बल देती हैं।

(६) उनकी सहायता से बाधित, विदेशी, तथा अल्पायु बालकों की बुद्धि को सुगमतापूर्वक मापा जा सकता है।

१०—करण-परीक्षाओं के दोष अथवा सीमाएँ

(१) अनेक समालोचकों का विचार है कि एक ऐफ्रीकन बालक की अपेक्षा एक ब्रिटिश अथवा अमेरिकन बालक चित्रों,

---

卐 *Drawing a Man* (*Goodenough*).

ईंटों, इत्यादि के द्वारा कौशल प्राप्त करने के लिये अधिक अवसर रखता है, और उनके द्वारा अपनी बुद्धि को अधिक सुगमता से व्यक्त कर सकता है।

(२) मूर्त अथवा चित्रमय-प्ररूप की परीक्षाएँ केवल उन्हीं बालकों के साथ प्रयुक्त की जा सकती हैं जो शाब्दिक कार्यों में रुचि नहीं रखते अथवा जो बड़े व्यक्तियों की भाँति शाब्दिक विचार के अभ्यस्त नहीं होते।

(३) अ शाब्दिक सामग्री बधितों (बधिर, मूक, इत्यादि) का परीक्षण करने के लिये तथा शाब्दिक परीक्षाओं के अनुपूर के रूप में उपयोगी हो सकती है, परन्तु अ-शाब्दिक परीक्षाओं की अपेक्षा शाब्दिक परीक्षाएँ अधिक उपयोगी होती हैं। इसके दो कारण हैं, (१) बुद्धि-परीक्षाओं का एक महत्वपूर्ण कार्य विद्याभियोग्यता (*Scholastic Aptitude*) की भविष्यवाणी करना है, तथा (२) स्वयं पाठशाला-कार्य प्रधानतः शाब्दिक होता है।

(४) अधिकांश करण-परीक्षाएँ दुर्वाह्य (*Unwieldy*), परिवहण के लिये कठिन, तथा अत्यधिक मूल्यवान होती हैं।

(५) अनेक समालोचकों का मत है कि भिन्न करण-परीक्षाएँ अत्यन्त असङ्गत परिणाम प्रदान करती हैं। अन्य शब्दों में, वे सन्तोषजनक रूप में प्रमापीकृत नहीं होतीं।

(६) करण-परीक्षाओं का प्रयोग व्यक्तिशः किया जाता है। फलतः वे मापन के लिये अनुपयुक्त होती हैं।

(७) अधिकांश करण-परीक्षाओं की विश्वसनीयता दरिद्र होती है, क्योंकि उन्हें उन्हीं परीक्षार्थियों पर पुनः प्रयुक्त नहीं किया जा सकता।

(८) इसमें कोई सन्देह नहीं है कि करण-परीक्षाओं की

मान्यता अत्यन्त संदिग्ध होती है। ये परीक्षाएँ छात्रों की "व्यावहारिक क्षमता" को मापती हैं, परन्तु यह सामान्य बुद्धि की अपेक्षा एक अधिक अस्पष्ट अवधारणा (*Conception*) होती है। अतः यह कहना कठिन है कि करण-परीक्षाएँ दैनिक जीवन में क्षमता के किस प्ररूप को मापती हैं।

(९) अधिकांश करण-परीक्षाएँ आवेगजन्य कुसमायोजन (*Emotional Maladjustment*) से प्रभावित हो जाती हैं।

(१०) करण-परीक्षाएँ प्रायः शायनिक (*Clinical*) महत्व रखती हैं। इस प्रकार वे श्रेणी-अध्यापकों का नहीं, अपितु शैक्षणिक अथवा व्यावसायिक समुपदेष्टाओं (*Counsellors*) का एक साधन होती हैं।

११—उपसंहार

सारांशतः यह कहा जा सकता है कि बुद्धि के दो रूप होते हैं, (१) सामान्य, तथा (२) विशिष्ट। सामान्य बुद्धि को मापने के लिये दो प्रकार की परीक्षाओं का विकास किया गया है, (१) बिने-प्ररूप परीक्षाएँ, जो केवल परीक्षक द्वारा प्रयुक्त भाषा से परिचित बालकों के साथ प्रयोग में लायी जा सकती हैं, तथा (२) करण-प्ररूप परीक्षाएँ, जो अल्पायु, अशिक्षित, विदेशी, बाधित, दुर्बल-मनस्क इत्यादि बालकों की स्थिति में अत्यन्त उपयोगी होती हैं। विशिष्ट बुद्धि का माप अभियोग्यता परीक्षाओं के द्वारा किया जाता है। अध्यापक को बुद्धि-मापन के इन समस्त साधनों से परिचित होना चाहिए।

दशम अध्याय

पूर्वज्ञापक-परीक्षा

१--प्रस्तावना

परीक्षाओं का वर्गीकरण करते समय प्रथम अध्याय में यह स्पष्ट किया जा चुका है कि मनोवैज्ञानिक परीक्षाओं में अनेक परीक्षाओं का समावेश होता है, यथा बुद्धि-परीक्षाएँ, करण-परीक्षाएँ, अभियोग्यता-परीक्षाएँ, पूर्वज्ञापक-परीक्षाएँ (*Prognostic Tests*), इत्यादि। प्रस्तुत अध्याय में पूर्वज्ञापक-परीक्षाओं के प्रश्न पर विचार किया जाएगा।

२—पूर्वज्ञापक-परीक्षाओं का विकास

पूर्वज्ञापक-परीक्षाएँ शिक्षा में एक वैज्ञानिक प्रक्रिया के रूप में एक नवीन वस्तु हो सकती हैं, परन्तु एक भावना के रूप में वे नवीन नहीं हैं और एक भिन्न रूप में वे प्राचीन काल में भी विद्यमान थीं। लिओ ऐफ० केन, इत्यादि के शब्दों में "प्रत्येक पुरुष, स्त्री, लड़का, तथा लड़की एक अथवा अन्य समय पर अपने भविष्य में तथा उनके होनहारत्व में मग्न रूप में हितपरायण होता है जिनसे वह संबद्ध होता है। माता-पिता बारबार अपनी सन्तानों की वृद्धि तथा प्राप्तियों की भविष्यवाणियाँ करते हैं। लड़के तथा लड़कियाँ खेलते समय यह भविष्यवाणी करते हैं कि उनमें से कौन उन्हें उनके खेलों में विजय तक ले जाने के लिये अत्यन्त समुपयुक्त है। प्रारम्भिक-पाठशाला के अध्यापक यह भविष्यवाणी करते हैं कि

उनके छात्रों में से कौन से छात्र आगामी श्रेणी के कार्य को सफलतापूर्वक करेंगे। उच्च-पाठशाला तथा महाविद्यालय के अध्यापक स्थानों (*Positions*) के लिये अथवा उच्च संस्थाओं में प्रवेश के लिये तरुण व्यक्तियों तथा महिलाओं का अभिस्ताव करने में वस्तुतः इन व्यक्तियों के भविष्य की भविष्यवाणी करते हैं। सेवायोजक (*Employers*) कृत्यकों (*Jobs*) के लिये व्यक्तियों को नियत करने में, उन्हें कृत्यक से कृत्यक तक स्थानान्तरित करने में, अथवा उनकी पदोन्नति करने में निरन्तर भविष्यवाणियों के शब्दों में कार्य करते हैं। वास्तव में, भविष्यवाणियाँ जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में की जाती हैं।" प्रस्तुत अध्याय में केवल शिक्षा-क्षेत्र से सम्बन्धित भविष्यवाणियों के विषय में ही विचार किया जाएगा। इस प्रकार की भविष्य-वाणियाँ अतीत में शताब्दियों से की जाती रही हैं। अतः यह कहना सर्वथा समुचित है कि भविष्यवाणियाँ प्राचीन काल से चली आती हैं।

३--पूर्वज्ञापक-परीक्षा का अर्थ

"पूर्वज्ञापक" एक विशेषण शब्द है जिसका आङ्गल समा-नार्थक शब्द "*Prognostic*" है। *Prognostic* का संज्ञा शब्द "*Prognosis*" होता है। चैम्बर्स ट्वैण्टिअथ सैन्चुरी डिक्शनरी के अनुसार *Prognosis* शब्द का अर्थ होता है "*Forecast*" (भविष्यवाणी), तथा *Prognostic* शब्द का अर्थ होता है *Foretelling* (भविष्यवाणी करने वाली)। अतः, सामान्य भाषा में *Prognostic Tests*, (पूर्वज्ञापक-परीक्षाएँ) का अर्थ होता है *Foretelling Tests*, अर्थात्, भविष्यवाणी करने वाली परीक्षाएँ। वस्तुतः पूर्वज्ञापक-परीक्षाएँ वे परीक्षाएँ

होती हैं जो एक व्यक्ति की सफलता तथा अभियोग्यता (*Aptitude*) के विषय में भविष्यवाणी करती हैं। पूर्वज्ञापक-परीक्षाओं के अर्थ को ठीक-ठीक समझने के लिये पूर्वज्ञापक तथा अभियोग्यता-परीक्षाओं के सम्बन्ध को समझना अत्यन्त आवश्यक है। इन दोनों के सम्बन्ध के विषय में विभिन्न विद्वानों को तीन वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है: (१) वे, जो पूर्वज्ञापक तथा अभियोग्यता परीक्षाओं में कोई भेद नहीं मानते, यथा सी० सी० रौस, (२) वे, जो अभियोग्यता-परीक्षाओं को पूर्वज्ञापक-परीक्षाओं का एक प्ररूप (*Type*) मानते हैं, यथा सी० वी० गुड, तथा (३) वे, जो पूर्वज्ञापक परीक्षाओं को अभियोग्यता-परीक्षाओं एक समूह मानते हैं, यथा थौर्नडाइक एवं हैजिन। नीचे इन तीनों दृष्टिकोणों की तीन प्रतिनिधि परिभाषाएँ प्रस्तुत की जा रही हैं:

(१) **सी० सी० रौस :** "विशिष्ट बुद्धि, अथवा एक आयन्त्रित क्षेत्र में, यथा सङ्गीत, अथवा यान्त्रिकी, अथवा एक विशिष्ट पाठशाला-विषय में, यथा बीज-गणित अथवा लैटिन, क्षमता की परीक्षाओं के विकास में भी कुछ क्रिया हुई है।........ये परीक्षाएँ प्रायः अभियोग्यता अथवा पूर्वज्ञापक-परीक्षाएँ पुकारी जाती हैं।"卐

卐"*There has also been some activity in the development of tests of specific intelligence, or capacity in a restricted area, such as music, or mechanics, or in a specific school subject, such as algebra or Latin......, tests often called aptitude or prognostic tests*".

—*Book No. 9. P, 41*

(२) **सी० वी० गुड :** "परीक्षा, पूर्वज्ञापक : जैसा कि वर्तमान पालन से निर्दिष्ट है, प्रयास की एक दी हुई रेखा में एक व्यक्ति की सम्भाव्य सफलता अथवा उसके लिये अभियोग्यता की भविष्यवाणी करने के लिये अभिप्रेत एक परीक्षा; अभियोग्यता-परीक्षा से, जो पूर्वज्ञापक-परीक्षा के अनेक प्ररूपों में से केवल एक है, प्रभेदित होने के लिये।"❀

(३) **थौर्नडाइक एवं हैजिन :**"अभियोग्यता-परीक्षाओं का एक समूह सीखने के लिये उद्यतता अथवा किसी विशिष्ट विषय अथवा शिक्षा के खण्ड में सफलता की सम्भाव्य मात्रा की भविष्यवाणी करने के लिये आकल्पित परीक्षाओं से निर्मित होता है। ये पूर्व-ज्ञापक-परीक्षाएँ पुकारी जाती हैं।"卐

४—पूर्वज्ञापक-परीक्षाओं के उद्देश्य

अनेक दृष्टियों से अत्यन्त निकट होने पर भी उद्देश्य की दृष्टि से पूर्वज्ञापक तथा अभियोग्यता-परीक्षाओं में पर्याप्त भेद

❀ *"Test, prognostic : a test intended to predict a person's probable success in or aptitude for a given line of endeavour, as indicated by present performance; to be distinguished from aptitude test, which is only one of several types of prognostic test".* —*Book No. 2, P. 419*

卐 *"One group of aptitude tests is made up of tests designed to predict readiness to learn or probable degree of success in some specific subject or segment of education. These are called prognostic tests."* —*Book No. 22, P. 260*

होता है। न्यूकिर्क तथा ग्रीन के शब्दों में अभियोग्यता "किसी विशेषता अथवा कौशल के विकास के लिये एक व्यक्ति की क्षमता के रूप में समझी जा सकती है।"卐 ग्रीन, इत्यादि के मतानुसार अभियोग्यता-परीक्षा "विशिष्ट बुद्धि, अर्थात्, बुद्धि जिस रूप में कि यह एक विशेष प्रक्षेत्र अथवा क्षेत्र अथवा पालन में चालू रहती है, की परीक्षा" होती है,❀ परन्तु पूर्वज्ञापक-परीक्षा का सम्बन्ध "विशिष्ट विषयों अथवा क्षेत्रों में भावी सफलता की भविष्यवाणी करने के लिये प्रयुक्त" परीक्षा से होता है।† ऐनसाइक्लोपीडिया ऑफ मौडर्न ऐज्यूकेशन के मतानुसार "अभियोग्यता-परीक्षाएँ उस समय दी जाती हैं जब ऐसी भविष्यवाणी करना आवश्यक होता है।"‡ इस प्रकार पूर्वज्ञापक तथा अभियोग्यता-परीक्षाओं में वही सम्बन्ध होता है जो साध्य तथा साधन में।

५—पूर्वज्ञापन के क्षेत्र : पूर्वज्ञापन के प्ररूप

पूर्वज्ञापन के चार मुख्य क्षेत्र हैं, (१) शिक्षा, (२) व्यवसाय,

---

卐 *"An aptitude may be thought of as the capacity of an individual for the development of some special ability or skill".* —Book No. 16. P. 83

❀ *"A test of specific intelligence i.e., intelligence as it operates in a certain field or area or performance".* —Book No. 14, P, 584

† *"A test used to predict future success in specific subjects or fields".* —Book No. 14, P. 593

‡ *"Aptitude tests are given at the time when it is necessary to make such a prediction".* —Book No. 4, P. 42

(३) अभिरुचियाँ, तथा (४) वैयक्तिक एवं सामाजिक समायोजन (*Adjustment*)। इन क्षेत्रों के आधार पर पूर्वज्ञापन को चार प्ररूपों में विभाजित किया जा सकता है, (१) शैक्षणिक पूर्वज्ञापन, (२) व्यावसायिक पूर्वज्ञापन, (३) व्यावसायिक अभिरुचियों का पूर्वज्ञापन, तथा (४) वैयक्तिक एवं सामाजिक समाजोयन का पूर्वज्ञापन।

शैक्षणिक पूर्वज्ञापन—शैक्षणिक पूर्वज्ञापन में प्रारम्भिक, माध्यमिक एवं महाविद्यालय स्तर पर पूर्वज्ञापन का समावेश होता है।

प्रारम्भिक पाठशालाओं के पूर्वज्ञापन में वाचन-उद्यतता (*Reading Readiness*), वर्गबन्धन एवं वर्गीकरण, बाल-विकास, तथा प्राप्ति के विभिन्न प्ररूपों के लिये अपेक्षित मानसिक परिपक्वता, इत्यादि विषयों का समावेश होता है। प्रारम्भिक पाठशाला के एक विषय में सीखने की उद्यतता चार कारकों (*Factors*) पर निर्भर रहती है, (१) बालक का शारीरिक विकास, (२) मानसिक विकास, (३) भाषा का विकास, तथा (४) वैयक्तिक-सामाजिक एवं भावना-विकास। प्रारम्भिक पाठशालाओं के विभिन्न विषयों में सफलता की भविष्यवाणी करने के लिये अनेक रीतियों का प्रयोग किया जाता है जिनमें से सामान्य मानसिक-क्षमता-परीक्षा, निष्पन्न-परीक्षा, पाठशाला-अङ्क, उद्यतता-परीक्षा (*Readiness Tests*), इत्यादि के नाम विशेषतः उल्लेखनीय हैं। उद्यतता-परीक्षाओं में मुख्यतः वाचन उद्यतता-परीक्षाएँ, वर्णयोग (*Spelling*) उद्यतता-परीक्षाएँ, तथा हस्तलेख उद्यतता-परीक्षाएँ सम्मिलित होती हैं। आजकल प्रारम्भिक पाठशालाओं के बालकों के परीक्षण

में सीखने के विशिष्ट पक्षों में कठिनाइयों के कारणों का निदान करने पर विशेष बल दिया जाता है।

माध्यमिक पाठशालाओं का पूर्वज्ञापन प्रारम्भिक पाठशालाओं के पूर्वज्ञापन से भिन्न होता है। माध्यमिक प्रक्रम पर छात्र विषयों के बारे में कुछ विकल्प रखता है, तथा संपारण (*Promotion*) श्रेणी की अपेक्षा विषय के द्वारा होता है। फलतः माध्यमिक प्रक्रम पर पूर्वज्ञापन के दो रूप हो जाते हैं, (१) सामान्य विद्वत्ता का पूर्वज्ञापन, तथा (२) अध्ययन के विशेष क्षेत्रों में सफलता का पूर्वज्ञापन। सामान्य विद्वत्ता का पूर्वज्ञापन मुख्यतः वाचन-परीक्षाओं, अभिरुचि-तालिकाओं (*Interest Inventories*), सामान्य निष्पन्न-परीक्षाओं, व्यक्तित्व-परीक्षाओं, प्रक्षेपी प्रविधियों (*Projective Techniques*) तथा बुद्धि-परीक्षाओं के द्वारा किया जाता है। विशिष्ट विषयों के पूर्वज्ञापन के लिये बुद्धि-परीक्षाओं के अतिरिक्त अध्यापक के अङ्कों तथा विशेष पूर्वज्ञापक-परीक्षाओं का भी प्रयोग किया जाता है। पूर्वज्ञापक-माप कला एवं सङ्गीत की अपेक्षा अधिक साहित्यिक विषयों में विशेष महत्व रखते हैं। सामान्यतः माध्यमिक प्रक्रम पर पूर्वज्ञापन के लिये उन्हीं प्रविधियों का प्रयोग किया जाता है जिनका प्रयोग प्रारम्भिक स्तर पर पूर्वज्ञापन के लिये किया जाता है।

महाविद्यालय प्रक्रम पर यह महत्वपूर्ण प्रश्न उपस्थित रहता है कि एक छात्र को किस महाविद्यालय में उपस्थित होना चाहिए। विभिन्न महाविद्यालयों की प्रवरण-नीतियाँ पर्याप्त रूप से विभिन्न होती हैं। महाविद्यालय-प्रक्रम पर सामान्य विद्वत्ता के पूर्वज्ञापन के लिये अनेक रीतियों का प्रयोग किया जाता

है, यथा बुद्धि-परीक्षाएँ, विद्वत्ता-अभियोग्यता-परीक्षाएँ, सामान्य निष्पन्न-परीक्षाएँ, अध्यापन के अङ्क, आयु, व्यक्तित्व-कारक, यथा अभिरुचियाँ, अभिवृत्तियाँ (*Attitudes*), प्रभुत्व, अनुवर्तन (*Submission*), विषय प्रतिरूप, अनेक कारकों का संयोजन, इत्यादि। महाविद्यालय-प्रक्रम पर विशिष्ट-विषयों का पूर्वज्ञापन मुख्यतः सामान्य मानसिक-परीक्षाओं, सामान्य निष्पन्न-परीक्षाओं, अभियोग्यता-परीक्षाओं, इत्यादि के द्वारा किया जाता है। अनेक अनुसन्धाता भिन्नक-पूर्वज्ञापन (*Differential Prediction*) अथवा भिन्न विषयों अथवा पाठचर्याओं में सापेक्ष योग्यताप्राप्ति (*Relative Achievement*) के पूर्वज्ञापन को भी बड़ा महत्त्व देते हैं।

(२) *व्यावसायिक-पूर्वज्ञापन*

व्यावसायिक-पूर्वज्ञापन में परीक्षाओं के प्रयोग के दो उद्देश्य होते हैं, प्रथम, एक व्यक्ति को व्यावसायिक मार्ग-प्रदर्शन प्रदान करने के लिये उसकी क्षमताओं का निर्धारण, तथा द्वितीय, एक कृत्यक (*Job*) के लिये एक समूह में से एक अथवा अधिक व्यक्तियों का चुनाव। व्यावसायिक-पूर्वज्ञापन विभिन्न व्यवसायों से संबद्ध होता है, यथा व्यापार, विक्रय, लिपिक-कार्य, औषध, दन्तचिकित्सा, आभियान्त्रिकी (*Engineering*), विधि (*Law*), उपचारण (*Nursing*), अध्यापन, सङ्गीत एवं कला, इत्यादि। व्यावसायिक-मार्गप्रदर्शन प्रदान करने के लिये प्रमापीकृत मनोवैज्ञानिक-परीक्षाओं का प्रयोग किया जाता है, परन्तु प्रत्येक विशिष्ट कृत्यक के लिये व्यक्तियों का चुनाव करते समय वे समस्त प्रविधियाँ उपयोगी सिद्ध हुई हैं जो शैक्षणिक-पूर्वज्ञापन में प्रयुक्त की जाती हैं। गत दस वर्षों में व्यावसायिक पाठशालाओं में छात्रों का चुनाव

करने के लिये अनेक परीक्षाओं का निर्माण किया गया है, जिनमें से कुछ निम्नलिखित हैं :

1. *The Iowa Placement Test.*
2. *The Pre-Engineering Inventory.*
3. *The Moss Medical Aptitude Test.*
4. *The Ferson-Stoddard Law Aptitude Test.*
5. *The Iowa Legal Aptitude Test.*
6. *The Minnesota Vocational Test for Clerical Workers.*
7. *The Scott Company File Clerks' Test.*
8. *O' Rourke's Clerical Aptitude Test.*
9. *Iowa Dental Qualifying Examination.*
10. *The Moss Nursing Aptitude Test.*
11. *Seashore Measures of Musical Talent.*
12. *Kwalwasser-Dykema Tests.*

(३) व्यावसायिक अभिरुचियों का पूर्वज्ञापन

अब तक अभिरुचि का मूल्याङ्कन करने के लिये अनेक युक्तियों का निर्माण किया जा चुका है, जिनमें से "*Strong Vocational Interest Blank*" का नाम विशेषतः उल्लेखनीय है। परन्तु व्यावसायिक तथा विद्वत्ता-सफलता की भविष्यवाणी करने के लिये इन साधनों का महत्व अत्यन्त सीमित होता है।

(४) वैयक्तिक एवं सामाजिक समायोजन का पूर्वज्ञापन

वैयक्तिक एवं सामाजिक समायोजन करने के लिये व्यक्ति की क्षमता का पूर्वज्ञापन करने के लिये अनेक प्रयत्न किये गये

हैं, यथा शारीरिक लक्षणों तथा मनोवैज्ञानिक लक्षणों के सम्बन्धों पर अन्वेषण, व्यक्तित्व का दैहिक एवं जीवरसायनिक माप, तथा पत्र-एवं-अङ्कनी-परीक्षाओं (*Paper-and-Pencil-Tests*), करण-परीक्षाओं, व्यक्तित्व-श्रेणियों, अभिवृत्ति-प्रश्नावलियों, एवं प्रक्षेपी-प्रविधियों (*Projective Techniques*) का निर्माण।

६—पूर्वज्ञापन की प्रविधियाँ (*Techniques*)

पहले ही कहा जा चुका है कि सफलता का पूर्वज्ञापन अतीत से चला आ रहा है। परन्तु शिक्षा के क्षेत्र में वैज्ञानिक आन्दोलन के आगमन से पूर्व इस प्रकार का पूर्वज्ञापन अवलोकन-रीति द्वारा किया जाता था। यहाँ अवलोकन-रीतियों के दो रूप उल्लेखनीय हैं, (१) रूपाकृति (*Physiognomy*), अथवा मुख-लक्षणों के आधार पर भविष्यवाणी करने की कला, तथा (२) शिराकृति (*Phrenology*), अथवा शिर (*Skull*) की आकृति के आधार पर भविष्यवाणी करने की कला। आधुनिक अनुसन्धानों ने यह सिद्ध कर दिया है कि सफलता के सम्बन्ध में अवलोकन-रीति पर आधारित निर्णय सदोष एवं भ्रामक होते हैं। लिओ ऐफ० केन के शब्दों में "शिक्षा में एक वैज्ञानिक प्रक्रिया के रूप में, स्पष्टतः निर्धारित व्यवहार के परिशुद्ध अभिलेखों (*Records*) से व्यक्तियों की तथा समूहों की भावी वृद्धि (सीखने सहित), सफलता, अथवा समायोजन पूर्वज्ञापन के अन्तर्गत होता है। ऐसे पूर्वज्ञापन का प्रधान प्रयोजन वह सूचना प्रदान करना है जो व्यक्तियों के मार्गप्रदर्शन तथा मन्त्रणा में प्रयुक्त की जा सके। सफलता अथवा योग्यताप्राप्ति की भविष्यवाणी करने के लिये

यत्नों को नैदानिक तथा पूर्वज्ञापक दोनों होना चाहिए। सामान्यतः, व्यवहार की सीमा जितनी आयन्त्रित होगी, पूर्वज्ञापन उतना ही परिशुद्ध होगा।" अतः आधुनिक काल में सफलता के पूर्वज्ञापन के लिये निम्नलिखित रीतियों का प्रयोग किया जाता है :

(१) परीक्षाएँ (Examinations)

बासवीं शताब्दी के आरम्भ तक यह माना जाता था कि यह ज्ञात करने के लिये कि भविष्य में एक व्यक्ति किस प्रकार पालन करेगा सर्वोत्तम मानदण्ड यह ज्ञात करना है कि उसने अतीत में किस प्रकार पालन किया है। इस सिद्धान्त के आधार पर. न्यू यौर्क राज्य के विश्वविद्यालय ने १८६४ में रीजैण्ट-परीक्षाओं (*Regent's Examinations*) को प्रवेशित किया, जिनका प्रयोग माध्यमिक शिक्षा के लिये उपयुक्त छात्रों का चुनाव करने के लिये एक युक्ति के रूप में किया जाता था। कालान्तर में, इन परीक्षाओं को माध्यमिक पाठशालाओं में भी प्रवेशित कर दिया गया। वस्तुतः रीजैण्ट-परीक्षाएँ शैक्षणिक अभियोग्यता को मापने का विशिष्ट प्रतिरूप (*Pattern*) ही हैं। यह एक ऐसा प्रतिरूप है जो न्यूनाधिक प्रमाप निष्पन्न-परीक्षा द्वारा मापित अतीत-योग्यताप्राप्ति के आधार पर भावी प्राप्ति की भविष्यवाणी करता है।

(२) वैयक्तिक बुद्धि-परीक्षाएँ

इस रीति का प्रारम्भण एक फ्रैंच चिकित्सक ऐलफ्रेड बिने ने किया था। १९०३ में उसकी सुविख्यात पुस्तक "*Experimental Study of Intelligence*" प्रकाशित हुई। फलतः १९०४ में सार्वजनिक शिक्षण के मन्त्री ने उसे उन बालकों

की पहिचान करने के लिये एक विशेष अध्ययन करने के लिये चुन लिया जो अपनी बुद्धि में अपर्याप्तताओं के कारण पाठशालाओं में प्रदत्त सामान्य शिक्षण से लाभ नहीं उठा सकते थे। वैयक्तिक बिने-प्ररूप बुद्धि-परीक्षाओं की उत्पत्ति इन्हीं प्रयत्नों का परिणाम थी। बुद्धि के विषय में बिने का मत था कि यह वह आधारभूत क्षमता है जिसके द्वारा "निर्णय" किये जाते हैं। अतः उसकी समस्या का आन्तरक (*Core*) बालक की बुद्धि का मूल्याङ्कन करना था। इस प्रकार एक बालक की बुद्धि का मूल्याङ्कन ही उसकी भावी सफलता का आधार था।

(२) अभियोग्यता-परीक्षाएँ

साहित्यिक विषयों में, जिनमें अनेक छात्र असफल रहते हैं, ऐसी परीक्षाओं का विकास करना आवश्यक था जिनकी सहायता से उन बालकों को हटाया जा सके जो अध्ययन के साहित्यिक उद्देश्यों को प्राप्त करने में कठिनाई का अनुभव करते हों। फलतः साहित्यक क्षेत्रों में छात्र की सफलता की भविष्यवाणी करने के लिये ऐसी परीक्षाओं का निर्माण किया गया है जो उसकी सीखने की क्षमता को प्रत्यक्षतः मापती हैं। मुख्यतः बीजगणित तथा विदेशी भाषाओं के क्षेत्र में अनेक अभियोग्यता-परीक्षाओं का निर्माण किया जा चुका है। *The Iowa Foreign Language Aptitude Test* एक ऐसी ही परीक्षा का उदाहरण है। ब्रूकनर तथा मैलबी के शब्दों में, "पूर्वज्ञापक अथवा अभियोग्यता-परीक्षाएँ एक व्यक्ति में संभाव्य अभियोग्यता अथवा क्षमता को मापने के लिये प्रयुक्त की जाती हैं"।卐

卐*"Prognostic or aptitude tests are used to measure potential aptitude or ability in a subject".* --*Book No. 27, P. 78*

ट्रैवर्स के मतानुसार "पूर्वज्ञापन करने के लिये कुछ उन अन्तःस्थ-विचरणों (*Intervening Variables*) को मापने के योग्य होना आवश्यक है, जो यह निर्धारित करते हैं कि एक दी हुई स्थिति में उसका (व्यक्ति का) प्रत्युत्तर क्या होगा।" अन्तःस्थ-विचरण को ठीक प्रकार से समझने के लिये उसका एक उदाहरण नीचे दिया जाता है :

उद्दीपक	अन्तःस्थ विचरण	प्रत्युत्तर
श्रेणी की स्थिति	एक विदेशी भाषा	किसी प्रत्युत्तर अथवा पालन में प्रदर्शित योग्यताप्राप्ति

अभियोग्यता-परीक्षाएँ इन अन्तःस्थ-विचरणों को मापने का यत्न करती हैं।卐

(४) *मार्गप्रदर्शन-समूहा (Guidance Battery)*

पूर्वज्ञापन करने तथा अपने भविष्य के सम्बन्ध में निर्णय करने के लिये व्यक्ति की सहायता करने की दृष्टि से एक एकल परीक्षा (*Single Test*) का प्रबन्धन आजकल पर्याप्त नहीं समझा जाता। फलतः वर्तमान प्रवृत्ति क्षमता-परीक्षाओं की समूहाओं का विकास करने की ओर है। भिन्नक अभियोग्यता-परीक्षाएँ (*Differential Aptitude Tests*) एक ऐसी ही एकल अभियोग्यता-समूहा का उदाहरण हैं। इस समूहा की परीक्षा-माला में सात परीक्षाएँ सम्मिलित हैं जो असाधारण पूर्वज्ञापक महत्व रखती हैं, (१) मौखिक तर्क, (२) अमूर्त (*Abstract*) तर्क, (३) यान्त्रिक तर्क, (४) संख्यात्मक क्षमता,

卐 *"Tests of aptitude are attempts to measure some of the intervening variables which relate the learning situation to the responses in that situation."–Book No. 25, P. 330*

(५) स्थान-सम्बन्ध, (६) लिपिक गति एवं परिशुद्धता, तथा (७) भाषा-प्रथा : I—वर्णयोग (*Spelling*), II—वाक्य।

(५) जीवनी-अभिलेख अथवा सूचना

शैक्षणिक पूर्वज्ञापन करने के लिये व्यक्ति के विद्वत्ता-अभिलेख (*Scholastic Record*) का प्रयोग मुख्य जीवनी-सामग्री के रूप में किया जाता है। यह पहले ही कहा जा चुका है कि इसका सर्वोत्तम साक्ष्य (*Evidence*) कि एक व्यक्ति विशिष्ट स्थितियों में भविष्य में किस प्रकार का व्यवहार करेगा, यह ज्ञात करना है कि उसने तत्सम स्थितियों में अतीत में किस प्रकार का व्यवहार किया था। पूर्व शैक्षणिक स्थिति भावी शैक्षणिक स्थिति के जितना समान होगी, किया जाने वाला पूर्वज्ञापन उतना ही परिशुद्ध होगा।

(६) अ-बौद्धिक (Non-Intellectual) कार्यों का माप

अनुसंधाताओं ने यह सिद्ध कर दिया है कि बुद्धि-परीक्षाएँ योग्यताप्राप्ति में छात्रों के भेदों के केवल लगभग ५० प्रतिशत को ही मापती हैं, परन्तु वास्तव में, अन्य अनेक कारण भी उन भेदों के लिये उत्तरदायी होते हैं, यथा (१) उस स्थिति में परिवर्तन जिसमें पूर्वज्ञापन किये जाते हैं, अथवा (२) अमापित व्यक्तित्व-विचरणों (*Variables*) का प्रभाव। अतः स्वभावतः अ-बौद्धिक कार्यों की परीक्षाओं से योग्यताप्राप्ति का पूर्वज्ञापन करने की प्रत्याशा की जा सकती है। परन्तु अभी अ-बौद्धिक कार्यों की परीक्षाएँ सु-स्थापित नहीं हैं।

७—पूर्वज्ञापक-परीक्षाओं के उपयोग

(१) पूर्वज्ञापक-परीक्षाओं के अङ्क छात्रों का वर्गीकरण करने के लिये एक आधार के रूप में प्रयुक्त किये जा सकते हैं।

(२) पूर्वज्ञापक-परीक्षाएँ शिक्षण को प्रभावशाली बनाती हैं, क्योंकि वे अध्यापक को छात्र की दुर्बलताओं का निदान तथा समुचित प्रत्युपाय-कार्य (*Remedial Work*) की योजना करने के लिये अवसर प्रदान करती हैं।

(३) पूर्वज्ञापक-परीक्षाएँ पाठशाला में होने वाली विफलता के क्षय को कम करने के लिये एक अत्यन्त उपयोगी युक्ति होती हैं।

(४) गेट्स, इत्यादि के शब्दों में "एक पूर्वज्ञापक-परीक्षा का महत्व इसकी एक बुद्धि-परीक्षा की अपेक्षा अधिक विश्वसनीयता के साथ एक पाठशाला-विषय में सफलता का पूर्वज्ञापन करने, अथवा यदि बुद्धि-परीक्षा के साथ संयोजित कर दिया जाए तो एक पर्याप्त उच्च पूर्वज्ञापन देने की क्षमता में रहता है।"

(५) ऐनसाइक्लोपीडिआ ऑफ मॉडर्न एड्यूकेशन के मतानुसार "वे (पूर्वज्ञापक-परीक्षाएँ) छात्रों के मार्गप्रदर्शन तथा स्थापन (*Placement*) में मूल्यवान होती हैं।"

८—पूर्वज्ञापक-परीक्षाओं के दोष

(१) पूर्वज्ञापक-परीक्षाओं का एक मुख्य दोष यह है कि उनके द्वारा किया जाने वाला पूर्वज्ञापन संभाविताओं (*Probabilities*) के शब्दों में किया जाता है, निश्चितियों (*Certainties*) के शब्दों में नहीं।卐 इसके दो कारण हैं, (१) प्राप्य सफलता के मापों में भूलें तथा (२) पूर्वज्ञापन के लिये प्रयुक्त साधनों में अभाव।

卐 *"Prognosis is always in terms of probabilities, never in terms of certainties."* —*Book No. 4, P. 600*

(२) द्वितीयतः, पूर्वज्ञापक-परीक्षाएँ छात्र के अध्ययन-व्यसन के गुण, अथवा पाठशाला-सफलता के लिये उसके अभिरोचन (*Motivation*) की शक्ति को नहीं मापतीं। अतः यह कहा जा सकता है कि केवल पूर्वज्ञापक-परीक्षाएँ एक दिये हुए विषय में भावी सफलता का पूर्वज्ञापन पूर्णतः नहीं कर सकतीं।

६–उपसंहार

पूर्वगत पंक्तियों में पूर्वज्ञापक-परीक्षा के शैक्षणिक पक्ष पर विचार किया गया है। पूर्वज्ञापक-परीक्षाएँ यह भविष्यवाणी करती हैं कि एक विशिष्ट विषय को सीखने के लिये छात्र कितनी क्षमता रखता है।卐 कहने की आवश्यकता नहीं कि यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य है। यदि शैक्षणिक दृष्टि से छात्रों का समुचित मार्गप्रदर्शन किया जाना है; यदि छात्रों की दृष्टि से शैक्षणिक-कार्यक्रमों का मितव्ययन किया जाना है तो प्रत्येक अध्यापक को पूर्वज्ञापक-परीक्षाओं के विकास में सहयोग देना चाहिए। भारत में पूर्वज्ञापक-परीक्षाओं के विकास की अत्यन्त आवश्यकता है।

卐 *"A prognostic test is one designed to predict the pupil's ability to learn a specific school subject.*

--Book No. 4, P. 610

एकादश अध्याय
सञ्चयी-अभिलेख

१--प्रस्तावना

पाठशाला में छात्रों का लेखा करने के लिये अनेक अभिलेखों का प्रयोग किया जाता है, जिन्हें विभिन्न वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है; उदाहरणार्थ, पाठशाला-अधिकारियों के आधार पर छात्राभिलेखों के चार वर्ग किये जा सकते हैं, (१) अध्यापक की पञ्जी (*Register*) अथवा श्रेणी-पुस्तक (*Classbook*), (२) प्राचार्य का कार्यालय-अभिलेख, (३) पाठशाला-जनगणना, तथा (४) छात्र का सञ्चयी-अभिलेख (*Cumulative Record*); कार्य के आधार पर छात्राभिलेखों को तीन भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है, (१) मार्गप्रदर्शन के लिये प्रयुक्त अभिलेख, (२) छात्र के स्वास्थ्य-कार्यक्रम में प्रयुक्त अभिलेख, तथा (३) बालक के मनोवैज्ञानिक अध्ययन में प्रयुक्त अभिलेख; अभिलिखित सामग्री के आधार पर छात्राभिलेखों के छः भाग किये जा सकते हैं, (१) विद्वत्ता-अभिलेख, (२) प्रमाप-परीक्षा-अभिलेख, (३) स्वास्थ-अभिलेख, (४) दन्त-अभिलेख, (५) सामाजिक-अभिलेख, तथा (६) कार्य-अभिलेख। प्रस्तुत अध्याय में छात्र के सञ्चयी-अभिलेख का वर्णन किया जाएगा जो पाठशाला-अधिकारियों के आधार पर किये गये छात्राभिलेखों के चार भेदों में से एक होता है।

२—सञ्चयी-अभिलेख का विकास

छात्र के सञ्चयी-अभिलेख का विकास १९०८ में लैम्प्रे (*Lamprey*) ने अपने प्रशिक्षण महाविद्यालय में प्रयोग के लिये किया था। लैम्प्रे बौस्टन (*Boston*) में निदर्शन-पाठशाला (*Model School*) का प्राचार्य था। बौस्टन की अभिजन-पाठशालाओं (*Public Schools*) ने लैम्प्रे के अभिलेख-रूप को तुरन्त स्वीकार कर लिया था।

३—सञ्चयी-अभिलेख का अर्थ

सामान्य भाषा में छात्र के सञ्चयी-अभिलेख का अर्थ होता है "पाठशाला द्वारा सञ्चित छात्र का लेखा।" पारिभाषिक भाषा में सञ्चयी-अभिलेख की कुछ प्रतिनिधि परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं :

(१) **आर० एम० थौमस :** एक सञ्चयी-अभिलेख समय की एक अवधि से ऊपर, सामान्यतः कई वर्ष, एक बालक के विषय में सूचना का एक संग्रहण होता है।"卐

(२) **सी० वी० गुड :** "छात्र का सञ्चयी-अभिलेख : एक वैयक्तिक अभिलेख, सामान्यतः स्थायी, जो एक अध्यापक अथवा पाठशाला द्वारा लगातार रूप से अद्यावधिक रखा जाता है तथा जो छात्र की पाठशाला-योग्यताप्राप्ति, अध्ययन की हुई पाठचर्याओं, उपस्थिति,

---

卐 "*A cumulative record is a collection of information about a child over a period of time, usually several years.*"

–Book No 13, P. 273

स्वास्थ्य, एवं तत्सम सङ्गत सामग्री के विषय में पर्याप्ततः पूर्ण सूचना धारण करते हुये एक शैक्षणिक इतिहास होता है।"❀

४—सञ्चयी-अभिलेख के उद्देश्य

ऐफ० ऐम० अर्ल (*F. M. Earle*) के मतानुसार छात्र के सञ्चयी-अभिलेख के दो उद्देश्य होते हैं, (१) छात्र की प्रगति की गति में परिवर्तनों को प्रदर्शित करना, जिससे अनावश्यक विलम्ब के बिना समायोजन विहित किया जा सके, तथा (२) शैक्षणिक पर्यावरण के भिन्न पक्षों में सीखने की गति एवं दक्षता के सम्बन्ध में सूचना देना, जिसकी सहायता से छात्र की स्वाभाविक अभियोग्यता का मूल्याङ्कन किया जा सके।

५—सञ्चयी-अभिलेख की प्रणालियां

(१) सञ्चयी-अभिलेख-पत्रक (Cumulative Record Card)

सी० एम० फ्लैमिङ्ग के शब्दों में "सञ्चयी-अभिलेख-पत्रक एक व्यक्ति के अध्ययन का संघनन होता है।"卐 सामान्यतः प्रत्येक छात्राभिलेख-पत्रक स्थायी रूप से सधृत किया जाता है और उसे अद्यावधिक (*Up to date*) बनाये

❀ CUMULATIVE RECORD, PUPIL'S : *an individual record, usually permanent, that is kept continually up to date by a teacher or the school and that is an educational history containing fairly complete information about the pupil's school achievement, courses studied, attendance, health, and similar pertinent data." –Book No. 2, P. 113*

卐 *"A cumulative record-card is a condensation of a case-study." –Book No. 26, P. 9.*

रखने के लिये निरन्तर उसमें सामग्री जोड़ी जाती रहती है। ए० ओ० हैक (*A. O. Heck*) के मतानुसार "इसका अर्थ होता है एक अभिलेख-पत्रक जो केवल पाठशाला से पाठशाला तक ही नहीं, अपितु अध्यापक से अध्यापक तक, छात्र के पीछे चलता है।"❀ प्रत्येक नवीन अध्यापक, जो छात्र के सम्पर्क में आता है, पत्रक में कुछ न कुछ जोड़ता जाता है। सी० एम० फ्लैमिङ्ग के मतानुसार "अभिलेख-पत्रक गुप्त होते हैं। उनकी विषयवस्तुएँ निदान के लिये एवं उपचार के लिये एक सहायता के रूप में अभिप्रेत होती हैं, तथा आवश्यकता के कारण कुछ पारिभाषिक शब्दों में अभिलिखित की जाती हैं। वे चिकित्सक की रोगि-पुस्तकों के समान होते हैं, तथा उनके समान वे अपने निर्वचन के लिये विशेषज्ञ के दक्ष निर्णय की अपेक्षा करते हैं।"卐 १९१२ में अमेरिका के नैशनल ऐज्यूकेशन ऐसोसिएशन ने एक समिति की नियुक्ति की, जिसने यह अभिस्ताव किया था कि अभिलेख-पत्रक का परिमाण ४″ × ६″ होना चाहिये। अनेक पाठशालाओं ने एक विशिष्ट अभिलेख-पत्रक स्वीकार किया है, जिसका परिमाण १२″ × १२″ होता है। अभिलेख-पत्रकों के

❀ *"......it means a record card that follows the pupil, not only from school to school, but from teacher to teacher."* *-Book No. 4, p. 666.*

卐 *Record-cards are confidential. Their contents are intended as an aid to diagnosis and to treatment, and are of necessity recorded in samewhat technical terms They are like the case-books of the physician, and like them they require for their interpretation the skilled judgment of the expert."* *Book No. 26, P. 7*

रूप तथा विषयवस्तु में बड़ा अन्तर पाया जाता है।❀ अभिलेख-पत्रक बालक का एक चित्र उपस्थित करता है। वाचकों को अभिलेख-पत्रक का सम्यक् ज्ञान कराने के लिये नीचे एक आदर्श (*Specimen*) अभिलेख-पत्रक प्रस्तुत किया जा रहा है :

गुप्त अभिलेख-पत्रक : प्राथमिक पाठशाला

(इस पत्रक के ब्यौरे पाठशाला-प्राधिकारियों की सूचना के लिये हैं तथा उनके धारण में रखे जाने चाहिएँ)

नाम .... जन्म तिथि ....

पता ....

	१९५४-५५	५५-५६	५६-५७	५७-५८	५८-५९
१. शैक्षणिक इतिहास					
(१) उपस्थिति					
पाठशाला (२) प्रवेश तिथि					
....	....	....	....	....	....
....	....	......	....	....	....
....	....	....	....	....	....
(३) प्रिय पाठशाला विषय	....	....	....	....	....
(४) न्यूनतम चाहा हुआ विषय	....	....	....	....	....
२. योग्यताप्राप्ति का अध्यापक द्वारा किया गया निर्धारण					
(१) मौखिक वाचन	....	....	....	....	....
(२) मौखिक शब्द-भण्डार तथा मुहावरा	....	....	....	....	....

❀ *"The actual form and content of record-cards differ widely from school to school, from district to district and from country to country."* –*Book No. 26, P. 9*

	१९५४-५५	५५-५६	५६-५७	५७-५८	५८-५९
(३) लिखित निबन्ध	....	......	....	....	....
(४) हस्त-कौशल	....	....	....	....	....
३. वैयक्तिक गुणोंका अध्यापक द्वारा किया गया निर्धारण					
(१) चिरलग्नता (*Persistence*)	....	....	....	....	....
(२) संघचरता (*Sociability*)	....	....	....	....	....
(३) संकेन्द्रण (*Concentration*)	....	....	....	....	....
(४) सूत्रपात (*Initiative*)	....	....	....	....	....
(५) श्रेणी में प्रत्युत्तर	....	....	....	....	....
४. वैषयिक-परीक्षाओं द्वारा प्रदर्शित स्थिति					
(१) मालाओं (*Series*) का शीर्षक	....	....	....	....	....
(२) वाचन	....	....	....	....	....
(३) अङ्कगणित	....	....	....	....	....
(४) वर्णयोग (*Spelling*)	....	....	....	....	....
(५) बुद्धि	....	....	....	....	....
५. गृह-जीवन के विवरण।					
(१) कोई विशेष गृह-परिस्थिति	....	....	....	....	....
(२) प्रिय अवकाश-वृत्तियाँ	....	....	....	....	....
(३) सेवायोजन (यदि कोई हो)	....	....	....	....	....
(४) कोई शारीरिक निर्योग्यता	....	....	....	....	....
(५) विशेष रुचियों, इत्यादि के सम्बन्धमें कोई अन्य सुसंगत सूचना	....	....	....	....	....
(६) परिवार में स्थिति	में से	....	ज्येष्ठ	कनिष्ठ	तिथि
....	....	....	....	....	....

उपर्युक्त अभिलेख-पत्रक की प्रविष्टियों (*Entries*) की व्याख्या के लिये व्याख्यात्मक टिप्पण भी पत्रक के लिये दिये जा सकते हैं। यह सुझाव दिया जाता है कि योग्यताप्राप्ति का निर्धारण पञ्च-पद-श्रेणी (*Five-Point Scale*) के अनुसार होना चाहिए तथा प्रत्येक प्रवर्ग के लिये अङ्क निश्चित होने चाहिएँ। वैयक्तिक गुणों का निर्धारण भी पञ्च-पद श्रेणी के अनुसार किया जा सकता है। क्षमता का माप "प्रमाप-अङ्क" अथवा "प्रतिशतक-पंक्ति" (*Percentile Rank*) तथा (*Form*) में अभिलिखित किया जा सकता है। माध्यमिक स्तर पर छात्र के अभिलेख-पत्रक में अनेक विषयों, व्यावसायिक-अधिमानों (*Preferences*), तथा प्रमुख महत्वाकांक्षाओं एवं अभिलाषाओं को स्थान दिया जाना चाहिए। इसी प्रकार प्रौढ़ावस्था के अभिलेख-पत्रक में अभियोग्यताओं, दृष्टिकोणों, मूल्यों तथा सामाजिक परिपक्वता, उत्साह, उद्योग एवं विश्रम (*Confidence*) पर विशेष बल रखा जाना चाहिए।

(२) *अभिलेख-भञ्ज* (*Record Folders*)

अभिलेख-भञ्ज के अनेक प्ररूप होते हैं, जिनमें से प्रमुख प्ररूप निम्नलिखित हैं :—

क—अभिलेख-पत्र—अभिलेख-पत्र की कल्पना मौलमैन (*Moehlman*) ने अपनी कार्यात्मक पहुँच के आधार पर की थी। यह एक ऐसा लम्बा पत्र (*Sheet*) होता है जो दो बार मोड़ने पर ५"×८" परिमाण का भञ्ज बन जाता है। इस प्रकार मोड़ने पर पत्र छः भागों में विभाजित हो जाता है, जिनमें से प्रत्येक भाग भिन्न प्रकार की सामग्री का अभिलेखन करने के लिये प्रयुक्त किया जाता है।

ख—संवेष्ट-अभिलेख-प्रणाली (*Packet Record Sytem*)—संवेष्ट-अभिलेख-प्रणाली की कल्पना स्टैनक्विस्ट "(*Stenquist*) ने की थी। संवेष्ट (*Packet*) एक ४″ × ६″ परिमाण का भञ्ज (*Folder*) होता है जो दो छोरों पर खुलता है। संवेष्ट इस प्रकार से विन्यस्त किया गया था कि एक से छः अथवा अधिक पत्रक (*Cards*) धारण कर सकता था।

ग—सञ्चयी-प्रपत्र (*Cumulative Form*)—सञ्चयी-प्रपत्र का अभिस्ताव नैशनल ऐड्यूकेशन ऐसोसिएशन (अमेरिका) की १९२७ के समिति-प्रतिवेदन (*Committee Report*) ने किया था।

घ—प्रपञ्जी-पत्र (*Ledger Sheet*)—हैक तथा रीडर (*Heck and Reader*) ने सञ्चयी-अभिलेख के लिये एक बृहत् प्रपञ्जी की व्यवस्था की है। इसे एक अबद्ध-पत्र प्रपञ्जी (*Loose-leaf Ledger*) में रखा जाता है।

ङ—वुड (*Wood*) ने १२″ × ९$\frac{५}{६}$″ परिमाण का एक ऐसा भञ्ज (*Folder*) तय्यार किया है जो किसी भी प्रमाप पत्र-नस्तीयन-प्रणाली (*Standard Letter Filing System*) में अन्वायोजित हो सकता है।

६-संक्षिप्त-पार्श्वचित्र (*Summary Profile*)

एक उस पाठशाला में, जहाँ अध्यापक विभिन्न श्रेणी-स्तरों पर अभिलेख रखते हैं, एक छात्र के विषय में, ज्यों ही वह षष्ठ अथवा सप्तम श्रेणी में पहुँचता है, पर्याप्त सूचना एकत्र हो जाती है। यदि संग्रही-भञ्ज (*Cumulative Folder*) में समस्त व्यक्ति-कथाओं (*Anecdotes*), वर्ग-श्रेणियों (*Rating Scales*), तथा छात्र-कार्य के न्यादर्शों (*Samples*)

का समावेश किया जाए, तो वह संग्रही-भञ्ज को अतिभारी बना देगा। अतः, ऐसी स्थिति में, अध्यापकों को वर्ष के अन्त में एक छात्र द्वारा वर्ष भर में की गयी प्रगति के विषय में एक संक्षिप्त-पार्श्वचित्र लिखना चाहिए। इससे सामग्री का भार कम हो जाएगा तथा अभिलेख एक संक्षिप्त-रूप में संघटित किये जा सकेंगे।

७—सञ्चयी-अभिलेख की विषयवस्तु

इसी अध्याय में अन्यत्र एक आदर्श सञ्चयी-अभिलेख-पत्रक (देखिये पृष्ठ २२५) प्रस्तुत किया जा चुका है। उससे एक सञ्चयी-अभिलेख-पत्रक की विषयवस्तु के विषय में पर्याप्त ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है, परन्तु उसे अन्तिम अथवा पूर्ण नहीं कहा जा सकता। सलामता उल्लाह के मतानुसार एक अच्छे सञ्चयी-अभिलेख-पत्र की सूचना में निम्नलिखित पदों का समावेश होना चाहिए :

(१) नाम, लिङ्ग, जन्म-तिथि, पितृ-नाम, पता।
(२) ऊंचाई, भार, भाचित्र (*Photograph*)।
(३) प्राप्त की हुई पाठशाला-श्रेणी, उपस्थिति-पाठशाला-श्रेणी, उपस्थिति-पाठशाला।
(४) उपस्थिति तथा अनुपस्थितियों का अभिलेख, अनुपस्थितियों के कारण।
(५) तिथि-आयु, मानसिक-आयु, बुद्धि-अङ्क।
(६) निष्पन्न-परीक्षाओं के अङ्क, पाठशाला-अङ्क, शिक्षा-अङ्क।
(७) मानसिक, आवेगजन्य, तथा शारीरिक अनुभव।

(८) पाठ्यबाह्य-क्रियाएँ, व्यायामिक तथा अ-व्यायामिक; गोष्ठीगृह तथा कार्यालय।

(९) अनुशासन।

(१०) असामान्य अनुभव।

(११) व्यावसायिक अनुभव, व्यावसायिक एवं वृत्तिक अधिमान (*Preferences*), शैक्षणिक योजनाएँ।

(१२) प्रतिवेदित अभिरुचियाँ।

(१३) विशेष दोष।

(१४) स्वास्थ्य, मनःस्वास्थ्य, सामाजिक-समायोजन।

(१५) गृह-दशाएँ।

(१६) व्यक्तित्व-वर्गक्रम (*Ratings*)।

८—एक अच्छे सञ्चयी-अभिलेख की विशेषताएँ

आई० ऐल० कैण्डिल के मतानुसार एक अच्छे सञ्चयी-अभिलेख की दस विशेषताएँ अथवा मानदण्ड होते हैं, जो निम्नलिखित हैं :

(१) इसे छात्र की क्षमताओं एवं अभिरुचियों के विकास की प्रवृत्तियों को प्रदर्शित करना चाहिए।

(२) इसे परिशुद्ध माप तथा वास्तविक अवलोकन प्रदान करने चाहिए।

(३) इसे तुलनीय एवं सार्थ शब्दों में मापों एवं अवलोकनों का अभिलेखन करने के लिये एक साधन प्रदान करना चाहिए।

(४) सामग्री इस प्रकार उपस्थित होनी चाहिए कि वह एकरूप एवं क्रम में हो तथा उनके अन्तर्सम्बन्धों को प्रदर्शित करने एवं व्यक्ति का एक समनुगत (*Coherent*) एवं एकीकृत चित्र उपस्थित करने की क्षमता रखती हो।

(५) इसे शीघ्र वाचन के योग्य होना चाहिए, अतः इसे यथाशक्य बिन्दुरेखीय-रूप (*Graphic Form*) में होना चाहिए।

(६) इसे पर्याप्त रूप से पूर्ण होना चाहिए।

(७) इसे मितव्ययिता, परिशुद्धता, तथा शीघ्रता के साथ उद्धृत करने योग्य (*Reproducible*) होना चाहिए।

(८) एक सावधानी से लिखी गयी तथा पर्याप्त रूप से निदर्शित निदेश-नियमावलि इसके साथ रहनी चाहिए।

(९) इसे प्रबन्ध की दृष्टि से सुविधाजनक होना चाहिए।

(१०) जहाँ तक स्थायी महत्व की सूचना से सम्बन्ध है, प्राचार्य के अभिलेख तथा अध्यापक के अभिलेख को प्रतिलिपियाँ होना चाहिए।

ए० ओ० हैक ने दो अन्य विशेषताओं का उल्लेख किया है जो निम्नलिखित हैं :

(११) पाठशाला-अभिलेखों एवं प्रतिवेदनों (*Reports*) को विशिष्ट प्रयोजनों के रूप में विकसित किया जाना चाहिए।

(१२) इन अभिलेखों को संतत एवं सञ्चयी होना चाहिए।

९—सञ्चयी-अभिलेखों का स्थान (*Location*)

सञ्चयी-अभिलेखों के स्थान के सम्बन्ध में तीन प्रश्न उठते हैं, (१) वे श्रेणी में अध्यापक के अधिकार में रखे जाएँ, (२) वे मुख्य कार्यालय में रखे जाएँ, अथवा (३) वे मार्गप्रदर्शन-संचालक के अधिकार में रखे जाएँ? वस्तुतः इन प्रश्नों का एक अन्तिम उत्तर नहीं हो सकता, क्योंकि सुविधा एवं साधन सम्पन्नता की दृष्टि से कोई पाठशाला इनमें से किसी भी प्रणाली को स्वीकार कर सकती है। थौर्नडाइक एवं हैजिन के शब्दों

में "अभिलेखों का अस्तित्व मुख्यतः प्रयुक्त होने के लिये होता है। अभिलेख वहाँ रखे जाने चाहिएँ जहाँ वे समस्त व्यक्ति उन तक सुविधायुक्त प्रवेश रख सकें, जो उनका प्रयोग करने के लिये यथार्थ अवसर रखते हों। साथ ही, अभिलेख अप्राधिकृत व्यक्तियों द्वारा परीक्षण से रक्षित किये जाने चाहिएँ।"

१०—अभिलेखों तथा प्रतिवेदनों (*Report*) में अन्तर

सामान्यतः अभिलेखों तथा प्रतिवेदनों में एक घनिष्ठ सम्बन्ध होता है, क्योंकि वे छात्रों, अध्यापकों, अन्य सेवि-वर्ग, पाठशाला-सम्पत्ति, अथवा पाठशाला-वित्त से सम्बन्धित होते हैं। तथापि, दोनों में चार मुख्य अन्तर भी होते हैं, (१) सामान्यतः प्रतिवेदन अभिलेख में अन्तर्विष्ट सूचना को ले जाने के लिये एक साधन होता है, (२) अभिलेख स्थायी होते हैं, प्रतिवेदन अस्थायी, (३) अभिलेख एक व्यक्ति के द्वारा अथवा एक कार्यालय के द्वारा उसके अपने प्रयोग के लिये बनाये जाते हैं; प्रतिवेदन किसी अन्य व्यक्ति अथवा कार्यालय के प्रयोग के लिये बनाये जाते हैं, (४) सेवि-वर्ग से सम्बन्धित अभिलेख वैयक्तिक होते हैं; प्रतिवेदन, सामान्यतः व्यक्ति-समूहों के विषय में संक्षिप्त कथनों का प्रतिनिधित्व करते हैं। परन्तु ये अन्तर सदैव सुस्पष्ट नहीं होते। उदाहरणार्थ, माता-पिता को दिया जाने वाला प्रतिवेदन वैयक्तिक होता है।

११—सञ्चयी-अभिलेख के लाभ

ए० ओ० हैक के मतानुसार सञ्चयी-अभिलेख के दस लाभ होते हैं जो निम्नलिखित हैं :

(१) प्राचार्यों, अधीक्षकों, तथा राज्य एवं केन्द्रीय-कार्यालयों

को दिये जाने वाले प्रतिवेदन सञ्चयी-अभिलेखों में अन्तर्विष्ट सामग्री के आधार पर बनाये जाते हैं।

(२) यदि एक पाठशाला-प्रणाली प्रभावशाली ढङ्ग से छात्रों की सेवा करना चाहती है तो उसे अभिलेखों की व्यवस्था अवश्य करना चाहिए।

(३) जब तक अभिलेख न रखे जाएँ तब तक एक पाठशाला के प्रशासी अधिकारी पाठशाला में होने वाले कार्यों का एक स्पष्ट चित्र प्राप्त नहीं कर सकते।

(४) अभिलेख छात्रों की क्षमताओं, अभिरुचियों, तथा दृष्टिकोणों को जानने के लिये एकमात्र रीति होते हैं।

(५) अभिलेख एक छात्र की वर्ष से वर्ष तक योग्यताप्राप्ति की तुलना करने के लिये एक अवसर प्रदान करते हैं।

(६) वे छात्रों, अध्यापकों, तथा अन्य सेवि-वर्ग की वृद्धि का आलेखन करते हैं।

(७) वे वर्ष में किसी भी दी गयी तिथि पर पाठशाला के विषय में परिशुद्ध सामग्री प्रदान करते हैं।

(८) वे प्रत्येक छात्र के अतीत के अनुभव का एक समस्त चित्र प्रस्तुत करते हैं।

(९) वे अपवाद रूप से योग्य तथा अपवाद रूप से बाधित छात्रों के अध्ययन को सुगम बनाते हैं।

(१०) वे मन्त्रणादाताओं को सामग्री प्रदान करते हैं।

१२—उपसंहार

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि सञ्चयी-अभिलेख एक बालक के छात्र-जीवन का इतिहास होता है। वह छात्र की प्रगति का ज्ञान कराने के लिये सर्वोत्तम साधन होता है।

राष्ट्रिय दृष्टिकोण से सञ्चयी-अभिलेख का महत्व असाधारण होता है। छात्र-जीवन के पश्चात् यदि कोई व्यक्ति समाज-विरोधी कार्य करता है तो उसे सुधारने के लिये कार्यक्रम निर्धारित करते समय सञ्चयी-अभिलेख की सहायता ली जा सकती है। सञ्चयी-अभिलेख उन कारणों पर पर्याप्त प्रकाश डालेगा, जो उसे समाजद्रोही बनाने के लिये उत्तरदायी होंगे। अतः यह आवश्यक है कि प्रत्येक पाठशाला सञ्चयी-अभिलेख-प्रणाली को स्वीकार करे तथा अभिलेखों को अद्यावधिक बनाये रखने के लिये प्रयत्नशील रहे। आज भारतीय छात्रों का अनतुशासन भारतीय-जीवन का एक कठिन प्रश्न बना हुआ है। यदि भारतीय पाठशालाएँ सञ्चयी-अभिलेख-प्रणाली को व्यवहार में लाना आरम्भ करदें, तो एक बड़ी मात्रा तक इस प्रश्न का समाधान अपने आप हो जाएगा, क्योंकि सञ्चयी-अभिलेख में अभिलिखित होने के भय से छात्र असामाजिक कार्य करने से हिचकिचाने लगेंगे। यह सत्य है कि इसके लिये पर्याप्त समय, श्रम तथा धन की आवश्यकता होगी, परन्तु शिक्षा का पुनरुद्धार एवं राष्ट्र का पुनर्निर्माण करने के लिये त्याग तो करना ही होगा।

देशना (Index)